गंगा-पुस्तकमाला का छिहत्तरवाँ पुष्प

# भारत में बाइबिल

[ द्वितीय भाग ]

मतगाम

# भारत में बाइबिल

[ द्वितीय भाग ]

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
( सुधा-संपादक )

गंगा-पुस्तकमाला का छिहत्तरवाँ पुष्प

# भारत में बाइबिल

[ द्वितीय भाग ]

अनुवादक

संतराम बी० ए०

हिंदू-धर्म ही इबरानी और ईसाई धर्मों का मूल स्रोत है

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २) ] सं० १९८९ वि० [ सादी १।।)

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

# विषय-सूची

तीसरा खंड

चौथा खंड

तीसरा खंड

# पहला अध्याय

## हिंदू-मत के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति—कुमारी देवांगी ( Devanaguy ) और जेज़ीउस कृष्ण ( Jezeus Christna )

ज़ीउस और ब्रह्मा—विश्वोत्पत्ति-संबंधी धार्मिक विश्वास

जिन लोगों ने पहलेपहल हिंदुओं और उनके धर्म-नियमों के विषय में लेखनी चलाई है, वे उस देश की भाषा को न जानने, पहले ही से बने-बनाए विचार रखने और बुरा उपदेश मिलने के कारण, केवल मूढ़ विश्वासों और विधियों की, जो उन्हें हास्यजनक प्रतीत होती थीं, क़लई खोलने में ही लगे रहे हैं। उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि धर्म-बुद्धि को किसी हद तक अलग रखकर पूजन के रूप, लोगों के चरित्र और कल्पना के अनुसार, भिन्न-भिन्न होते हैं।

उन्होंने यह नहीं देखा कि हम एक ऐसे जर्जरीभूत देश में हैं, जिसका अधःपात पहले ही तीन या चार सहस्र वर्षों से हो चुका है, प्राथमिक युगों के विशुद्ध विश्वासों का स्थान असंख्य काव्यमय आख्यायिकाओं और पुराण-कथाओं ने ले लिया है, और भूतकाल की शोभा तथा वर्तमान के पतन को समझने के लिये मंदिरों के भीतरी भागों में घुसने, ऐतिह्य को खोजने, विद्वान् ब्राह्मणों से परामर्श करने और लेखों से उनके मर्मों को निकालने का प्रयोजन है।

उनके पीछे वे अश्रांत अन्वेषक [ हमारे युग की प्रतिष्ठा, जैसा कि स्ट्रेंज, कोलब्रुक, वीवर, श्लीगल ( Schlegel ), बर्नोफ़ ( Bu-

rnouf), डसग्रंगस (Desgranges) और दूसरे] आए, जिन्होंने विस्मित जगत् के सामने वह प्राचीन भाषा रखकर उसे चकाचौंध कर दिया, जिससे प्राचान और आधुनिक भाषा-पद्धतियाँ निकली हैं।

हम इस प्राचीन देश के विषय में जो गौर जाति का जन्म-स्थान था, सचाई का अनुभव करने लगे; किंतु उस समय तक हम केवल उन अनेक दार्शनिक ग्रंथों और उज्ज्वल कविताओं के खंडों का अनुवाद करने में ही लगे हुए थे, जो भारत ने हमें दिए थे; दार्शनिक विद्या और कविता की धार्मिक पुराण-कथाओं को जन्म देनेवाली प्राथमिक कल्पना को पहचानने का हमने कुछ भी यत्न नहीं किया था।

प्राचीन हिंदू-धर्म केवल एक ही परमेश्वर को मानता है, और वेद उसका लक्षण इस प्रकार करता है—"वह स्वयंभू है, और सबमें है; क्योंकि सब कुछ उसमें है।"

वेद पर टीका करते हुए मनु कहता है—

"वह स्वयं प्रकट हुआ है, उसे केवल आत्मा ही ग्रहण कर सकता है, वह इंद्रियों के ज्ञान से परे है, वह सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन, सब भूतों का आत्मा और अचिन्त्य है।"

महाभारत भी निम्न-लिखित लक्षण देता है—

"परमात्मा एक, शाश्वत, निराकार, निरवयव, अनंत, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है; उसने अनंत शून्य से द्युलोक और पृथ्वीलोक उत्पन्न किए, और उन्हें असीम अंतरिक्ष में ढकेल दिया; वह दिव्य प्रवर्तक, उत्पन्न करनेवाला परम आत्मा, सबका निमित्त और समवायि कारण है।"

अब वेद का कथन सुनिए, जो अपनी काव्यमयी कड़क में कहता है—

"गंगा जो बहती है—यह परमात्मा है; सागर जो डकारता है—यह परमात्मा है; पवन जो चलता है—यह वही है; बादल जो गरजता

है और बिजली जो चमकती है—यह वही है। जिस प्रकार अनादि काल से यह विश्व ब्रह्मरूप आत्मा में स्थित था, उसी प्रकार आज जो कुछ है, वह उसका रूप ( तद्भूत ) है।"

मैं नहीं समझता कि अनेक युगों के बीत जाने पर भी, जिसको हम लोकाचार से मानव-मन का विकास कहते हैं, इन लक्षणों में कोई नई बात बढ़ाई जा सका है।

हिंदू-धर्म-पंडित परमेश्वर को दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में मानते हैं—

पहली में वह ज़ीउस ( द्युम् ) अर्थात् अव्यक्त है, और उसकी शक्ति कार्योन्मुख नहीं।

उसी के विषय में पुराण पवित्र पुस्तकों पर अपनी टीकाओं में कहते हैं—

"हे अव्यक्त आत्मा! अनंत शक्ति! अपरिमेय बल! सृष्टि काल के पहले तेरी शक्ति, तेरा बल और तेरा जीवन कैसे व्यक्त होता था?

'क्या तू बुझे हुए सूर्य के सदृश छिन्न-भिन्न होनेवाली प्रकृति में सोता था? क्या वह विश्लेष तुझमें था, या तूने इसका विधान किया था? क्या तू भून-प्रलय था? क्या तू जीवन था, और वे सब जीवन तेरे अंतर्गत थे, जो विनाशक तत्त्वों के कलह को छोड़ गए थे? यदि तू जीवन था, तो तू विनाश भी था; क्योंकि विनाश कर्म से उत्पन्न होता है, और कर्म का अस्तित्व तेरे बिना न था।

"क्या तूने परमाणु-रूप लोकों को शुद्ध और विद्रावण से उन्हें पुनः उत्पन्न करने के लिये आग की भट्टी में डाला था; जिस प्रकार नष्ट होनेवाला पेड़ अपने बीज से फिर उत्पन्न होता है, और इस बीज का अंकुर सड़ाँद (rottenness) के हृदय में विकसित होता है?

"क्या तेरी आत्मा पानी पर तैरा करती थी; क्योंकि तू नारायण कहलाता है?"

यह नारायण नाम बाइबिल के साथ शब्द-रचना के विलक्षण साम्य का एक और उदाहरण—उस पुस्तक की हिंदू-उत्पत्ति के शेष सारे प्रमाणों में जोड़ने के लिये एक और प्रमाण—उपस्थित करता है।

पहले हम इस शब्द की व्याख्या करते हैं; किंतु देखिए मनुजी ( पहला अध्याय ) क्या कहते हैं—

"जलों का नाम नारा है; क्योंकि वे नर (संस्कृत में दिव्य आत्मा) से उत्पन्न हुए हैं, ये जल नर के चलने ( संस्कृत में अयन ) का पहला स्थल थे। इसी से उस ( ब्रह्म ) का नाम नारायण, अर्थात् वह जो जलों पर चलता है, हुआ।"

बाइबिल, उत्पत्ति, अध्याय १—

"Terra autem erat inanis et vacua

"Et spiritus Dei ferebatur super aquas."

"पृथ्वी अनिर्मित और नंगी थी।

"और परमेश्वर की आत्मा पानियों के ऊपर चलती थी।"

नर=दिव्य आत्मा; अयन=जो अपने को ( जलों पर ) चलाता है; Spiritus Dei=दिव्य आत्मा; Ferabatur super aquas=पानियों के ऊपर उठाया हुआ था।

क्या यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट और पर्याप्त रूप से प्रत्यक्ष नहीं है? क्या पुस्तक अथवा बाइबिल नक़ल करती हुई इससे अधिक स्पष्ट रीति से पकड़ी जा सकती है?

बचाव की केवल एक ही रीति रह जाती है, वह यह कि संस्कृत से इनकार किया जाय। कोई भी बात असंभव नहीं, परंतु हम देखेंगे।

दूसरी अवस्था में ज़ीउस ( Zeus ) ब्रह्म, अर्थात् व्यक्त, जागरित और सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर हो जाता है।

फिर देखिए, पुराण कहते हैं—

"ब्रह्म ने सुप्त से जागरित होकर प्रकृति को उत्पन्न नहीं किया; क्योंकि उसके गुण और सार तो सदा से उसके अमर विचार में विद्यमान थे; वह उसका विकास करने तथा प्रलय को रोकने के लिये आया।

"हे परमेश्वर, जगत्पिता, जब तेरी शक्ति कार्योन्मुख होती है, तो उस समय तेरा क्या रूप होता है, तेरी उदारता, तेरी प्रबल इच्छा-शक्ति के काम हमारी विषय-ग्रहण-शक्ति को आश्चर्यान्वित करते हैं; सागर में उग्र तरंगें उठती और बैठ जाती हैं, मेघ गरजता और चुप हो जाता है, पवन आर्तनाद करता और चला जाता है, मनुष्य जन्म लेता और मर जाता है, सब कहीं हम तेरे हाथ का अनुभव करते हैं, जो रक्षा करता और आज्ञा करता है, परंतु हम न उसे समझ सकते और न देख ही सकते हैं।"

क्या हमारे लिये आदि-कारण से इनकार करना आवश्यक है? क्या कभी किसी ने अपने विचार के अस्तित्व से इसलिये इनकार किया है कि वह उसको देख नहीं सकता?

मुझे मालूम नहीं कि रोम के उन सज्जनों का यह सब पर्याप्त रूप से आस्तिक मालूम होगा या नहीं; मैं तो अपने भीतर उन पवित्र पुस्तकों के लिये अतुल प्रशंसा के भाव का अनुभव करता हूँ, जो मुझे परमेश्वर की इतनी उज्ज्वल और उन सारे दोषों से इतनी रहित कल्पना देती हैं, जिनके साथ विशेष मनुष्यों ने, दूसरे देशों में, ईश्वर के साथ अपने निज के विचारों का अध्यारोप करने और सबसे बढ़कर परम सत्ता को अपनी आकांक्षाओं का सहकारी बनाने के लिये इसको लाद दिया है।

हिंदुओं के विश्वासानुसार प्रकृति भी अस्तित्व तथा विद्रावण के उन्हीं नियमों के अधीन है, जिनके अधीन वनस्पतियाँ और प्राणी हैं। जीवन की विशेष अवधि के बाद प्रलय-काल आता है, प्रत्येक वस्तु का

ह्रास होता है, और हरएक पदार्थ प्रलय-अवस्था में लौट आता है; लोकों की एकतानता की समाप्ति हो जाती है—वायु, पृथ्वी, जल, प्रकाश एकाकार होकर नष्ट हो जाते हैं; यह प्रलय है, अर्थात् सब भूतों का विनाश है; परंतु एक बीज है, जो विश्राम द्वारा अपने आपको पवित्र करता है, यहाँ तक कि वह दिन आता है, जब ब्रह्म फिर उसका विकास करता है, उसमें जीवन अर्थात् उत्पादक शक्ति डालता है, लोकों को उत्पन्न करता है, जो थोड़ा-थोड़ा करके बनने, बढ़ने और चेष्टा करने लगते हैं, फिर उन्हें नए विद्रावण के सम्मुखीन होना पड़ता है, उसके बाद फिर वही विश्राम और वही पुनरुदय होता है।

प्रकृति अस्तित्व से मुरझा जाती और वृद्धा होकर मर जाती है। परमात्मा उसके सहज नियम का केवल उद्धार करता और उसमें जीवन डालता है।

कितनी आश्चर्यजनक सचाई है! हिंदुओं का ईश्वरीय ज्ञान ही, जो लोकों की मंद और क्रमिक रचना बताता है, सब ईश्वरीय ज्ञानों में एक ऐसा है, जिसकी कल्पनाएँ आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्ण रूप से मिलती हैं!

यदि मूसा को मिस्र के याजकों के मेल-मिलाप से इन श्रेष्ठ ऐतिह्यों का ज्ञान था, तो हमें मानना पड़ेगा कि वह इनको इतना उच्च, और उस दास-जाति की बुद्धि की पहुँच से, जिसे उसे मार्ग दिखाना था, इतना ऊपर समझता था कि उसने उन्हें इनका ज्ञान कराना आवश्यक नहीं समझा। या शायद, जैसा कि हम पहले ही अनुमान कर चुके हैं, उसे स्वयं भी मिस्र में इनका अधूरा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।

लोकों के पुनर्निर्माण तथा संयोग की अवधि, वेद के अनुसार, ब्रह्मा का एक सारा दिन है, और वह दिन मनुष्यों के तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों के बराबर होता है।

प्रलय ब्रह्मा की एक पूरी रात तक रहता है, और वह रात भी मनुष्यों के उतने ही वर्षों के बराबर होती है, जितने के बराबर ब्रह्मा का एक दिन।

लोकों के विनाश तथा पुनर्निर्माण पर पवित्र पुस्तकों के सिद्धांतों ने अनेक दार्शनिक पद्धतियों को जन्म दिया है; पर इस समय इनके अध्ययन के लिये न हमारे पास अवकाश है और न रुचि ही। हम उन दो सिद्धांतों का वर्णन करना ही पर्याप्त समझते हैं, जिनके कारण इस विषय पर भारत के धर्म-पंडितों का सदा मतभेद रहा है।

एक सिद्धांत तो यह कहता है कि प्रकृतिरूपी बीज को जब ब्रह्म एक बार उर्वर बना देता है, तब फिर रूपांतर का कार्य, परमेश्वर के प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के बिना ही, उसके बनाए हुए सनातन और अविकार्य नियमों के अनुसार, अपने-आप होता रहता है।

प्रकृति अपने केंद्र से, अपनी उत्पादिका नाभि से गिरकर अंतरिक्ष में छोटे-छोटे भागों में विभक्त और आकृष्ट हो जाती है; सारे कण दबकर भिच जाते हैं, प्रकाश उत्पन्न होता है, सबसे छोटे खंड सूख जाते हैं, बाहर निकलनेवाली भापों से वायु और जल बनता है। ये खंड वासयोग्य लोक बन जाते हैं। ... ... ..

क्रमशः शेष सार कण भी, अपने परिणाम के अनुसार, अपनी अपनी बारी से बुझ जाते हैं; परंतु जितना-जितना वे वासयोग्य बनते जाते हैं, उतना-उतना ही उनका ताप और प्रकाश घटता जाता है, यहाँ तक कि वे सर्वथा अंतर्द्धान हो जाते हैं—जीवन और पुनरुत्पत्ति की अत्यंत सकर्मक शक्तियों से वंचित होकर प्रकृति फिर भूत-प्रलय में, ब्रह्मा की रात में जा गिरती है।

यह मत वेद के विरुद्ध नहीं, फिर भी नैष्ठिक लोग इस पर आपत्ति करते और दिव्य प्रभाव का अधिक कार्य ठहराते हैं।

वे पूर्णरूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार प्रकृति

अपना विकास करती है, मूल-तत्त्व बनते हैं, अस्तित्व के सारे विकार संपन्न होते हैं; प्रकृति और लोकों का भी इसी प्रकार अंत और ब्रह्मा की रात्रि में लोप हो जाता है।

परंतु, उनके अनुसार, परमात्मा इन सब विकारों का परम नियम है, और उस नियम में उसका भाव है। इन सब रूपांतरों का वही अधिष्ठाता है। यदि वह कभी एक क्षण के लिये भी अपने आदेशों को रोक ले, अपने आश्रय को उठा ले, तो इन सब विकारों की गति एकदम बंद हो जायगी।

ब्राह्मण याजकों को तब तक दीक्षा नहीं मिल सकती, जब तक वे पहले अपने को इस शेषोक्त पद्धति का, जो पहली की अपेक्षा बहुत अधिक धार्मिक भाववाली समझी जाती है, पक्षपाती न प्रकट करें।

मूसा की पुस्तक, जो केवल स्थूल वृत्त से ही भरी पड़ी है, पूर्वी धर्म-विद्या की आधार-भूत इन कल्पनाओं पर कुछ भी ध्यान नहीं देती। आधुनिक धर्मों ने उन्हें अपने रहस्यों की सूची में स्थान दिया है।

---

# दूसरा अध्याय

ब्रह्मा का जागना—देवतों की रचना—उनका विद्रोह—
पराजित देवता राक्षस नाम से नरक में डाले गए हैं

हम कह चुके हैं कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन, सभी धर्मों की आधारभूत सभी धार्मिक पुराण-कथाएँ स्वदेश-त्यागियों द्वारा भारत से निकली थीं। और, वेद की यह कथा, जिसको ईसाई-धर्म ने ज्यों-का-त्यों ले लिया है और यह नहीं बताया कि इसे किस स्रोत से लिया है, निस्संदेह पाठकों के लिये दिलचस्पी से ख़ाली न होगी।

जब ब्रह्मा की रात समाप्त हो गई, तो संसार की सृष्टि करने और इसको पेड़ों और पशुओं से ढकने के पहले, सब भूतों के स्वामी ने आकाश के दो टुकड़े करके उनमें उन प्राणियों को बसाने का निश्चय किया, जो स्वयं उसमें से निकले थे, और जिनको वह अपने कुछ गुण और अपनी शक्ति का कुछ अंश दे सकता था।

और परमेश्वर ने ज्यों ही कहा—"मेरी इच्छा है कि आकाशों में गौण आत्माएँ बसें, जो मेरी आज्ञाओं का पालन और मेरी महिमा को सिद्ध करेंगी, त्यों ही उसके विचार से देवता उत्पन्न हो गए, और शीघ्रता से उसके सिंहासन के गिर्द इकट्ठे हो गए।"

ये आत्माएँ शक्ति और पूर्णता के धर्मसत्ता-संबंधी क्रम में उत्पन्न की गई थीं, इसलिये परमेश्वर ने प्रत्येक के लिये निवास-स्थान नियत करने में भी उसी नियम का अनुकरण किया; उसने सबसे पूर्ण देवतों को अपने निकटतम स्वर्गों में और दूसरों को अधिक दूर के स्वर्गों में रक्खा।

परंतु परमेश्वर के आज्ञा देते ही स्वर्ग में एक प्रचंड झगड़ा उत्पन्न

हो गया। गौण आत्माओं ने, जिन्हें अतीव दूरस्थ स्वर्गों में स्थान मिले थे, जाने से इनकार कर दिया, और वासुकि को, जिसने उनको सबसे पहले विद्रोह के लिये उत्तेजित किया था, अपना नेता बनाकर, उन्होंने अधिक संपन्न देवतों पर, उनको मिला हुआ दाय छीनने के लिये, आक्रमण किया।

देवतों ने इंद्र के झंडे के नीचे जमा होकर बड़ी वीरता से इस आघात को सहन किया, और ब्रह्मा के सामने युद्ध आरंभ हुआ; पर उसने इसको रोकने का कुछ भी यत्न नहीं किया।

वासुकि के इंद्र द्वारा पराजित होने पर उसके सारे साथी भयभीत होकर उसको छोड़ गए, और सबने कहा कि हम ब्रह्मा की इच्छा के अधीन होने के लिये तैयार हैं; परंतु उसने, उनके आज्ञाभंग से चिढ़कर, उनका पीछा करके उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया, और उनके लिये पृथ्वी और दूसरे लोकों का समान रूप से निषेध करके केवल नरक को ही उनके लिये रहने का स्थान ठहराया। उसने उनका नाम राक्षस अर्थात आक्रोशित रक्खा।

तब से ये सारे निशाचर उत्पन्न हुए, जो राक्षस, नाग, सर्प, पिशाच और असुर के नाम से हिंदू-कविता में कार्य करते हैं। इस कविता से प्रकट होता है कि ये मनुष्यों के यज्ञों और तपों में सदा विघ्न डालते रहते हैं, जिससे मनुष्यों को अपनी सहायता के लिये देवतों और पुण्यात्माओं को बुलाना पड़ता है।

बस, देवदूताधिष्ठाता मेकाईल की कल्पित कथा भी यहीं से निकली है! भारत में इस उपाख्यान को देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इस प्रकार के उपदेवतों की सृष्टि करना, जिन्होंने शून्य से बाहर आते ही दिव्य अधिकार का विरोध आरंभ कर दिया, और जो परमेश्वर के सामने ही गर्व तथा उसकी शक्ति की बराबरी करने की

आकांक्षा द्वारा प्रोत्साहित होकर युद्ध में प्रवृत्त हो गए, मैं चिरकाल से परम सत्ता के लिये अयोग्य समझता था।

भारत और उससे प्राप्त की हुई पुराण-कथाओं को, जिनसे शेष सब निकली हैं, समझने के पहले मुझे मालूम था कि सर्वप्राचीन देवमालाओं ने पहले रचे हुए भूतों के स्रष्टा के विरुद्ध इस विद्रोह को स्वीकार किया है, और पृथ्वी पर पाप के भाव के आने का कारण उन्होंने इसी प्रकार सिद्ध किया है।

पाप और पुण्य की उत्पत्ति और प्रकृति पर इन दोनों नियमों के प्रभाव की व्याख्या करने के सिवा यूनान के ओलिंपस में, जूपीटर के विरुद्ध टाईटनों (Titans) के युद्ध करने का और कोई भी तात्पर्य न था।

केवल यूनानी देवमाला ही, जो एशिया के द्वारा भारत से ली गई थी--और इस कारण प्राक्कालीन विश्वासों और वेदों से अनभिज्ञ थी, काव्यमय उपाख्यानों की, जिन्होंने प्राचीन कविता को अत्यंत छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया था, प्रवृत्ति-मात्र थी। इसके विपरीत ईसाई धर्म ने पूर्वीय कल्पना-शक्ति द्वारा गढ़ी हुई अत्युक्तियों से शून्य प्राथमिक ऐतिह्य को मिसर में उपलब्ध किया।

परंतु, भारत की उपेक्षा करके भी, हम कह सकते हैं कि इबरानी और ईसाई धर्म-पुस्तकों में किसी भी सचाई का प्रकाश नहीं किया गया; वास्तव में इसका क्या अर्थ है, चाहे आप ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों को टाईटन कह दें, चाहे फ़रिश्ते? इससे केवल शब्दों के विषय में ही विवाद खड़ा हो सकता है, नियम और कल्पना एक ही हैं।

अपने में पाप का अस्तित्व देखकर, जो दुर्भाग्यवश बहुत अधिकबार पुण्य पर विजय लाभ करता था, प्राथमिक मनुष्यों ने इसकी व्याख्या करने की भी चेष्टा की होगी। और, इसका संबंध परमेश्वर से जोड़ने में असमर्थ होकर, क्योंकि वह पुण्यमय माना गया है,

वे इसकी उत्पत्ति का कारण उसकी भद्रता द्वारा रचे हुए पहले भूत के स्वयं ईश्वर के विरुद्ध युद्ध करने को ही ठहरा सके होंगे।

चाहे कुछ हो, केवल भारत से ही वह प्राचीन ऐतिह्य आया था, जिसको हम ज़रदुश्त के नुस्कों ( Nosks ) में ज्यों-का-त्यों पाते हैं, और यह संसार को विभक्त करनेवाले पुण्य और पाप-रूपी दो नियमों के समाधान के लिये केवल गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

स्वतंत्र विचार, अपने विश्वास को सरल और शुद्ध करने के लिये, इस पुराण-कथा को, परमेश्वर के माहात्म्य, उसके भविष्यद्ज्ञान और उसकी प्रधान शक्ति के असंगत होने के कारण, अवश्य त्याग देगा।

कल्पना और कविता का जितना अधिक रूप अस्वीकार करेंगे, स्रष्टा के विषय में हमारी बुद्धि उतनी ही अधिक उसके योग्य होती जायगी।

पाप का मूल हमें मनुष्य-प्रकृति की निर्बलता के सिवा और कहीं नहीं ढूँढना चाहिए। यहीं रहस्य का आरंभ होता है, यहीं हम परमेश्वर के प्रयोजनों को समझने में असमर्थ हैं। परंतु असंगत कहानियों द्वारा उनका समाधान करने, अथवा विपरीत अत्युक्ति द्वारा उनका खंडन करने की जगह हमें चाहिए कि इनसे निवृत्त हो जायँ और उस जगदीश्वर की अक्षय भद्रता पर भरोसा रक्खें, जिसने अपनी कल्पनाओं में हमें दीक्षित करना उचित नहीं समझा।

उसने हमें जो प्रकाश दिया है, यदि वह निर्बल है, तो विवेक को निधड़क होकर उसका अनुगमन करने दो! इन उपदेवतों और भविष्यद्वक्ताओं ने हमें कोई भी चीज़ ऐसी नहीं दी, कोई भी बात ऐसी नहीं सिखाई, जो उस प्रकाश ने पहले न दी या न सिखाई हो। यदि उनका हम पर कोई ऋण है, तो वह यह कि उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियों ने स्वाधीन इच्छा और विवेक के सुस्थ सिद्धांतों को बुझाने का यत्न किया है।

---

# तीसरा अध्याय

हिंदुओं की त्रिमूर्ति—उसका निर्दिष्ट कार्य—पृथ्वी की रचना

जब प्रलय की अवधि समाप्त हो गई, तब, मनु के वचनों में, ब्रह्म अपनी पवित्रता की कीर्ति से प्रकाशमान, अपनी प्रभा को बखेरता हुआ प्रकट हुआ। उसने अँधेरे को हटाया और निज ध्यान में अपने शरीर से भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवों को रचने की इच्छा करते हुए प्रकृति को विकसित किया।

भगवद्गीता कहती है—

"जब घोर रात्रि, जिसमें सब भूतों का बीज ब्रह्म के हृदय में अपने को पुनः उत्पन्न कर रहा था, दूर हो गई, तब अनंत शून्य में असीम प्रकाश फैल गया, और दिव्य-आत्मा अपनी विभूति के पूर्ण बल और शक्ति में प्रकट हुई। उसको देखते ही प्रलय एक ऐसे फल-दायक गर्भ में परिवर्तित हो गया, जो लोकों, प्रकाशमान नक्षत्रों, जलों, वनस्पतियों, जीवधारियों और मनुष्यों को जन्म देनेवाला था।"

जिस समय अव्यक्त और सुप्त (जिसकी रचना-शक्ति कार्योन्मुख नहीं) ज़ीउस (Zeus) ब्रह्म अर्थात् कार्य करनेवाला और उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर बन जाता है, उस समय उसके काम में सहायता देने के लिये, उसके एकत्व पर किसी प्रकार का प्रभाव न डालते हुए, उसमें तीन व्यक्ति अपने को प्रकट करते हैं। ब्राह्मण और पवित्र पुस्तकें कहती हैं कि यह दिव्य त्रिमूर्ति तत्त्व से अविभाज्य है, और कर्म में अविभाज्य है। कैसा दुर्ज्ञेय रहस्य है! उसको मनुष्य तभी समझ सकेगा, जब उसकी आत्मा को ब्रह्मात्मा के साथ युक्त होने, ईश्वर की गोद में चले जाने की आज्ञा मिल जाती है।

यह त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं।

ब्रह्मा निर्मायक गुण है, और संस्कृत में इसे पिता की संज्ञा दी गई है।

विष्णु रक्षक और पालनकर्ता है। वह परमेश्वर का पुत्र है, उस कृष्ण के रूप में देवभूत शब्द है, जो पृथ्वी पर मनुष्य-मात्र के परित्राण के लिये, भविष्यद्वक्ता और गड़रिये (?) के रूप में आया, और कार्य संपन्न हो जाने पर एक आकस्मिक और अकोर्तिकर (?) मृत्यु से मर गया।

अंत को शिव अथवा वर अर्थात् दिव्य आत्मा वह गुण है, जो विनाश और पुनर्निर्माण का, प्रकृति की प्रतिमा का अधिष्ठाता है। इसमें उर्वरता और जीवन के, विद्रावण और मृत्यु के गुण संयुक्त हैं। एक शब्द में, यह वह आत्मा है जो अस्तित्व और प्रलय की उस सनातन गति को नियम में रखता है, जो सब भूतों की व्यवस्था है।

इस त्रिमूर्ति का कार्य सृष्टि के पहले काम के साथ आरंभ होता है—ब्रह्मा उत्पन्न करता है, विष्णु रक्षण अथवा पालन करता है, और शिव रूपांतर करता है।

परमात्मा अपने इन तीन गुणों के साथ तब तक कार्य करता रहता है, जब तक कि प्रकृति का नया प्रलय नहीं होता, वह उस दिन तक कार्य को जारी रखता है जब कि सारे अस्तित्व का अंत हो जाता है, और सब कुछ पुनः भूत प्रलय की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

वेद के ईश्वरीय ज्ञान के अनुसार, प्रकृति केवल एक ही नियम के अधीन है, जो सब शरीरों, सब वनस्पतियों और सब जीवों में समान कार्य करता है।

इस प्रकार भूमि में एक बीज डाला जाता है, उससे एक अंकुर विकसित होता है, और वह बढ़कर एक पौदा अथवा वृक्ष बन जाता है। इस पौदे अथवा वृक्ष का उत्कर्ष, अपकर्ष, मृत्यु और पतन

होता है। परंतु इस पौदे अथवा वृक्ष ने एक बीज पैदा कर दिया है। यह बीज अपनी बारी पर उस मौलिक नमूने को दुबारा उत्पन्न करता है, जो लोप हो गया है। यही हालत पशुओं और सारे भूतों की है।

इसी प्रकार प्रकृति, परमात्मा द्वारा उर्वर किए हुए बीज से उत्पन्न होकर, निश्चित नियमों द्वारा अपना विकास करती है, और पौदों, वृक्षों तथा प्राणधारियों के सदृश विद्रावण में इसका अंत हो जाता है। परंतु एक बीज रह जाता है, जो पुनः जन्म-ग्रहण करता, परम शक्ति की महान् आत्मा के हृदय में नए सिरे से अंकुरित होता और विश्व को एक बार फिर जन्म देता है।

इस अवधि में त्रिमूर्ति का एकत्व में लोप हो जाता है, मानो उसका कोई अस्तित्व नहीं; क्योंकि कर्म में वह अव्यक्त रहती है:

इस हिंदू-विश्वास में जो बात मुझे लुभाती है, वह यह कि यह सबको पीछे से एकता में लीन कर देता और सारे न्याय-संगत कार्यों को स्वीकार करता है। अहो, प्रकृति का यह महान् नियम अपनी सरलता की दृष्टि से कितना उच्च है!

मैं समझता हूँ, हम चाहे सारे धर्मों सारे दार्शनिक पद्धतियों को छान डालें, हमें ऐसे युक्तिसंगत विचार, जो प्रकृति के नियमों और जगदीश्वर की महिमा के इतने अनुरूप हों, कहीं न मिलेंगे।

अब हम ब्रह्म की प्रधान आज्ञा के अधीन इस त्रिमूर्ति के कार्य की परीक्षा करते हैं।

प्रकृति से ब्रह्म ने पहले प्रकाश, वायु, पृथ्वी और जल उत्पन्न किया।

तब उसने महान् आत्मा से जीवन अर्थात् मनस् निकाला, जो पौदों, जीवों और मनुष्यों, सबमें है। फिर अहंकार, अर्थात् व्यष्टि मन और उसकी सारी शक्तियाँ। केवल मनुष्य के लिये ही विशेष रूप से ये निकाली गईं।

तब अहंकार के काय को पहचानने के लिये उसने न्याय और अन्याय की प्रतिष्ठा की, और इस व्यष्टि मन को, जिसे उन विवेकशील भूतों पर शासन करता था, जिनको परमेश्वर अभी अपने शरीर से उत्पन्न करने ही वाला था, विचार-शक्ति दी।

उसके पश्चात्, परमेश्वर ने पौदे, वृक्ष, और प्राणधारी उत्पन्न किए। और, जब, पवित्र पुस्तकों के अनुसार, सारी सृष्टि प्रेम तथा कृतज्ञता का एक सुहावना गीत थी तब ब्रह्म ने अपने विशुद्धतम अंश से पुरुष और स्त्री को बनाया। इतना कर चुकने पर उसने विश्राम किया और अपने कार्य की प्रशंसा की।

संक्षिप्त मनुस्मृति में, जिसे ब्राह्मणों ने अपनी नव-प्रतिष्ठित पद्धति के अनुकूल बनाने के लिये बिगाड़ दिया है, वेद की-सी स्पष्टता और उदारता नहीं। फिर भी हम कह सकते हैं कि इन विषयों पर निम्न-लिखित वचन, अधूरे और भक्तिहीन होने पर भी, प्राक्कालीन सिद्धांत की प्रतिध्वनि-मात्र अवश्य हैं—

"जब वह देव जागता है, तब यह जगत् चेष्टा करने लगता है—जब वह शांतात्मा होकर सो जाता है, तब सारा विश्व विलीन हो जाता है।

"जब वह प्रशांत निद्रा में सो जाता है, तब वे जीवधारी, जिनकी प्रकृति काम करने की है, अपने कर्मों से निवृत्त होते हैं, और मन स्थिति को प्राप्त होता है।

"और जब वे एक साथ उस महान् आत्मा में प्रलीन होते हैं, तब यह सब भूतों का आत्मा शांत होकर सुख से सोता है।

"प्राथमिक अंधकार में प्रवेश करने के उपरांत यह ( जीव ) चिरकाल तक इंद्रियों सहित रहता है, और अपना काम नहीं करता, फिर शरीर को छोड़ता है।

"जब सूक्ष्म मात्राओंवाला होकर ( सूक्ष्म शरीर से ) युक्त हुआ

चर अचर बीज में प्रवेश करता है, तब नवीन शरीर को धारण करता है।

"इस प्रकार वह अविनाशी सोने और जागने से इस सब चर और अचर को लगातार जिलाता और मारता है।"

रक्षक होने से विष्णु दृश्य रूप धारण करता है, अवतार लेता है, और जब-जब मनुष्य आदि धर्म को छोड़ देते हैं, तब वह उन्हें उसकी ओर लाने के लिये पृथ्वी पर प्रकट होता है।

ईश्वरीय अवतार में हिंदुओं के इस विश्वास का, कम-से-कम, कई दूसरों से बढ़कर, यह तर्कसंगत पक्ष तो है कि इसमें यह कल्पना कर ली जाती है कि परमेश्वर पृथ्वी पर उस समय प्रकट होता है, जब मनुष्यों के दोष और प्रमाद उसकी उपस्थिति को आवश्यक कर देते हैं।

एकत्व में त्रिमूर्ति, जिसको मूसा ने अस्वीकार कर दिया था, पीछे से ईसाई धर्म का आधार बन गई। यह निर्विवाद है कि उसे इसने भारत से प्राप्त किया था। उचित स्थल पर हमारे दिए हुए उपयुक्त प्रमाण इस मत की प्रतिष्ठा करेंगे।

---

# चौथा अध्याय

मनुष्य की रचना—आदिम ( संस्कृत में, प्रथम पुरुष ) —हेवा ( संस्कृत में, वह, जो जीवन को पूर्ण बनाती है )—लंका-द्वीप उनका निवास-स्थान ठहराया गया है—आदिम का किया मानसिक अपराध—उसके प्रेम के कारण उसकी स्त्री उसका अनुकरण करती है—आदिम की निराशा—हेवा उसे समाश्वास देती है, और परमेश्वर से प्रार्थना करती है—ब्रह्मा की क्षमा - एक परित्राता की प्रतिज्ञा

दक्षिण-भारत और लंका-द्वीप में घूमिए, जहाँ ऐतिह्य अपने विशुद्ध रूप में सुरक्षित है, टूटी-फूटी तृण-कुटी में जाकर हिंदू से अथवा मंदिर में जाकर ब्राह्मण से पूछिए; सभी आपको मनुष्य की रचना की वही कथा सुनावेंगे, जो अब हम आपको वेद से सुनाते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण यही कथा थोड़े-से शब्दों में अपने शिष्य और सच्चे सहाय अर्जुन को सुनाते हैं, और प्रायः उसी तरह से सुनाते हैं जिस प्रकार कि यह पवित्र पुस्तकों में है।

उलटाए हुए अल्पविराम-चिह्नों ( एन्वर्टेड कामा ) के बीच के वचन मूल-वचनों का अनुवाद-मात्र हैं।

पृथ्वी पुष्पों से ढक रही थी, पेड़ फलों से झुक रहे थे, मैदानों पर और पवन में सहस्रों जीव कलोलें करते फिर रहे थे, भीमकाय वनों की छाया के नीचे सफ़ेद हाथी सुख-पूर्वक विचरते थे, तब ब्रह्मा ने देखा कि मनुष्य को रचने का, इस घर को बसाने का समय आ गया है।

उसने महान् आत्मा से, पवित्र तत्त्व से जीवन का एक बीज निकाला,

और उसके साथ उन दो व्यक्तियों को सजीव किया, जिनको उसने पौधों और पशुओं के सदृश, संतानोत्पत्ति के लिये, स्त्री और पुरुष बनाया था; उसने उनको अहंकार और वाणी दी, जिससे वे उस समय तक उसके रचे हुए सारे भूतों से श्रेष्ठ, परंतु देवतों और परमेश्वर से निकृष्ट बन गए।

उसने पुरुष को बल, रूप और गौरव दिया, और उसका नाम आदिम ( संस्कृत में, प्रथम पुरुष ) रक्खा।

स्त्री को सुचारुता, सौम्यता और सुंदरता मिली, और उसका नाम हेवा ( Heva ) [ संस्कृत में, जो जीवन को पूर्ण बनाती है ] रक्खा गया।

इसीलिये, आदिम को एक साथी देकर, परमात्मा ने उसे प्रदान किए हुए जीवन को पूर्ण बना दिया, और इस प्रकार उन अवस्थाओं को स्थापित करके, जिनमें मनुष्य-समाज का जन्म होनेवाला था, उसने पृथ्वी और आकाश में स्त्री और पुरुष की समानता की घोषणा की।

यह वह दिव्य नियम है, जिसे प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्थापनों ने थोड़ा-बहुत अन्यथा ग्रहण किया था, और जिसका केवल भारत ने, पुरोहितों के विनाशक प्रभाव के नीचे, पौराणिक क्रांति पर, परित्याग किया था।

तब परमेश्वर ने आदिम और उसकी स्त्री हेवा को प्राचीनों का प्राक्तन तपोवन, लंका द्वीप, रहने के लिये दिया। यह अपने जल-वायु, अपनी उपज और अपने उज्ज्वल तरु-गुल्मादि के कारण ऐहिक स्वर्ग, मनुष्य-जाति का जन्म-स्थान, बनने के भली भाँति उपयुक्त था।

अब तक यह भारतीय समुद्रों का सबसे प्यारा मोती है।

उसने कहा—"जाओ, संगम करके ऐसे प्राणी उत्पन्न करो, जो

तुम्हारे मेरे पास लौट आने के उपरांत युगयुगांतर तक पृथ्वी पर तुम्हारी सजीव प्रतिमाएँ रहेंगी। मुझ सर्वेश्वर ने तुमको इसलिये उत्पन्न किया है कि तुम जीवन-भर मेरा पूजन करते रहो। जिनकी मुझमें भक्ति होगी, वे सब भूतों का अंत हो जाने पर मेरे आनंद के भागी बनेंगे। अपनी संतानों को शिक्षा दो कि वे मुझे न भूलें; क्योंकि जब तक वे मेरा नाम लेते रहेंगे, मैं उनके साथ रहूँगा।"

तब उसने आदिम और हेवा के लिये लंका-परित्याग का निषेध किया, और इन शब्दों में कहा—

"तुम्हारे जीवन का उद्देश्य केवल यही है कि तुम इस समृद्धिशाली द्वीप को, जहाँ मैंने तुम्हारे सुख और आराम की सारी सामग्री इकट्ठी कर दी है, बसाओ, और भावी संतान के हृदयों में मेरी पूजा का भाव उत्पन्न करो। ... पृथ्वी का शेष भाग अभी वासयोग्य नहीं; यदि बाद को तुम्हारी संतान की संख्या इतनी बढ़ जाय कि इस बस्ती में न समा सके, तो उन्हें चाहिए कि यज्ञ करके मुझसे पूछें, मैं उन्हें अपनी इच्छा बता दूँगा।"

इतना कहकर वह अंतर्द्धान हो गया।

"आदिम ने तब अपनी युवती स्त्री का संबोधन किया ... ... जो उसके सम्मुख सीधी खड़ी अलबेलेपन से मुसकिरा रही थी *।

❀ ❀ ❀

"उसका आलिंगन करके उसने मुँह में हौले-हौले हेवा का नाम लेते हुए उसका प्रथम बार प्रेम-पूर्वक मुख-चुंबन किया ... ... ... मुख का चूमा जाना था कि स्त्री ने हौले से कहा—आदिम!...

"रात हो गई थी। वृक्षों पर पत्ते चुपचाप थे। परमेश्वर संतुष्ट था; क्योंकि स्त्री-पुरुष के समागम के पहले प्रेम की उत्पत्ति हो चुकी थी।

* यहाँ कुछ एक वाक्य ऐसे हैं, जिनका छोड़ देना ही अच्छा है, यद्यपि वे बाइबिल के अनेक वाक्यों की अपेक्षा बहुत कम आपत्तिजनक हैं।

"इस प्रकार ब्रह्म का यह संकल्प था कि अपने भूतों को यह शिक्षा दे कि प्रेम के बिना स्त्री और पुरुष का समागम व्यभिचार-मात्र, और उसके नियम तथा प्रकृति के विपरीत है।

"कुछ समय तक आदिम और हेवा पूर्ण सुख से रहते रहे—उनकी शांति को भंग करने के लिये कोई भी व्यथा प्रकट नहीं हुई; उन्हें केवल हाथ बढ़ाकर अपने इर्द-गिर्द के पेड़ों से अतीव स्वादिष्ठ फल तोड़ने और तनिक झुककर अत्युत्तम प्रकार का चावल इकट्ठा करने की ही आवश्यकता थी।

"परंतु एक दिन उन पर एक अनिश्चित-सी अशांति छाने लगी—उनके सुख और ब्रह्म के कार्य को सन्मरता से राक्षसों के राजा ने उनमें व्यग्रता-जनक लालसाएँ उत्पन्न कर दीं। आदिम ने अपनी स्त्री से कहा—'आओ, हम इस द्वीप में घूमें और देखें कि इससे बढ़कर सुंदर कोई और स्थान मिलता है या नहीं।'

"हेवा पति के पीछे-पीछे चली; निर्मल झरनों के किनारे और सूर्य की किरणों से उनकी रक्षा करनेवाले भीमकाय बड़े पेड़ों के नीचे विश्राम करते हुए वे दिनों और महीनों चलते रहे। ... ... परंतु ज्यों ही वे आगे बढ़े, स्त्री को विचित्र डर और अव्याख्येय त्रास ने आ घेरा। वह बोली—'आदिम! बस अब आगे न चलिए। ऐसा जान पड़ता है, हम परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं। जो जगह उसने हमारे निवास के लिये नियत की थी, क्या हम उसे छोड़ तो नहीं आए हैं?'

"आदिम ने कहा—'डरो मत, यह वह भयानक और वास के लिये अयोग्य देश नहीं, जिसके विषय में उसने हमसे कहा था।' और वे चलते गए।

"अंत को वे द्वीप की सीमा पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने समुद्र की एक स्निग्ध और संकीर्ण शाखा देखी, जिसके परे उन्हें एक विस्तीर्ण

तथा व्यक्त रूप से असीम देश देख पड़ा। यह समुद्र की छाती से उठनेवाले संकीर्ण तथा प्रस्तरमय मार्ग द्वारा उनके द्वीप के साथ संयुक्त था।

"दोनों पर्यटक चकित रह गए; उनके सामने का प्रदेश विशाल वृक्षों से आच्छादित था, और सहस्रों वर्णों के पक्षी उनके पत्तों में उड़ते फिरते थे।

"आदिम बोला—'देखो, वे कैसी सुंदर वस्तुएँ हैं! उन पेड़ों में कैसे उत्तम फल लगते होंगे! चलो उन्हें खाकर देखें, और यदि वह देश इससे अच्छा हो, तो हम वहीं बस जायँगे।'

"काँपती हुई हेवा ने आदिम से प्रार्थना की कि 'देखना, कोई ऐसी बात न कर बैठना, जो परमेश्वर को रुष्ट करनेवाली हो। क्या हम यहाँ आराम में नहीं? क्या यहाँ हमें निर्मल जल और स्वादिष्ट फल प्राप्त नहीं? तो फिर और चीज़ क्यों ढूँढते हो?'

"आदिम ने उत्तर दिया—'तुम्हारा कथन सत्य है, परंतु हम वापस आ जायँगे; यह जो अज्ञात देश सामने दिखाई दे रहा है, इसका अवलोकन कर लेने से क्या हानि हो सकती ?'

"चट्टानों पर पहुँचकर हेवा काँपती हुई पीछे चली।

"तब स्त्री को कंधों पर बिठाकर वह उस स्थल को पार करने लगा, जो उसे उसकी इच्छित वस्तु से अलग कर रहा था।

"परंतु ज्यों ही उन्होंने समुद्र-तट का स्पर्श किया, वृक्ष, पुष्प, फल, पक्षी इत्यादि सब पदार्थ, जो उन्होंने सामने के किनारे से देखे थे, एक क्षण में भीषण महारव के साथ अंतर्द्धान हो गए; जिन चट्टानों के द्वारा उन्होंने समुद्र पार किया था, वे जल-मग्न हो गईं, और ईश्वरीय रोष द्वारा विनष्ट हुए सेतु के स्थान को दिखलाने के लिये केवल थोड़ी-सी नोकदार चोटियाँ ही उपरिस्थल पर रह गईं।"

वे चट्टानें जो भारत-सागर में लंका और भारत के पूर्वीय सिरे के

बीच हैं, अभी तक 'पुलम् आदिम', अर्थात् आदम का पुल, नाम से प्रसिद्ध हैं। चीन और भारत को जानेवाले जहाज़ मालद्वीप को लाँघने पर भारतीय तट की जो नोक सबसे पहले देखते हैं, वह एक श्यामल शिखर है, जो प्रायः मेघों से ढका रहता है, और सागर की छाती से निकलकर बहुत ऊँचा उठा हुआ है। ऐतिह्य के अनुसार, इस पर्वत के चरण से ही पहले मनुष्य ने महाद्वीप के तट के लिये प्रस्थान किया था।

बहुत प्राचीन समय से इस चोटी का नाम आदिम की चोटी चला आया है, और आधुनिक भूगोल अब भी इसका वर्णन इसी नाम से करता है।

अब हम इस निक्षिप्त वाक्य को समाप्त कर अपने मूल-वचन को लेते हैं।

"जो तरु-गुल्मादि उन्होंने दूर पर से देखे थे, वह केवल मायिक मरीचिका थी, जिसे राक्षसों के राजा ने उनसे आज्ञा भंग कराने के लिये प्रलोभन बनाया था।

"आदिम रोता हुआ नंगी बालू पर गिर पड़ा; परंतु हेवा ने उसका आलिंगन करके कहा—'निराश मत हूजिए; चलो जगत् के रचयिता से क्षमा-याचना करें।'

"और ज्यों ही उसके मुख से ये शब्द निकले, यह आकाश-वाणी हुई—'हे स्त्री, तूने केवल पति-प्रेम के कारण ही पाप किया है। मैंने ही तुझे उससे प्रेम करने की आज्ञा दी थी। तू मुझसे निराश नहीं हुई। मैं तुझे और तेरे निमित्त उसे भी क्षमा करता हूँ! परंतु तुम्हारे आनंद के लिये जो सौख्य-धाम मैंने बनाया था, वहाँ तुम अब वापस नहीं जा सकते। तुम्हारे द्वारा मेरी आज्ञाओं का पालन न होने से पाप की आत्मा ने पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे अपराध के कारण तुम्हारी संतान को परिश्रम करना और दुःख

झेलना पड़ेगा। वह भ्रष्ट होकर मुझे भूल जायगी। परंतु मैं विष्णु को भेजूँगा, जो स्त्री के गर्भ से अवतार लेगा, और लोगों के दुःखों को हलका करने के लिये मुझसे प्रार्थना करके सबके लिये दूसरे जन्म में आशा और निष्कृति के उपाय लावेगा।'

"वे समाश्वासन पाकर उठ बैठे; परंतु बाद को पृथ्वी से अपनी उपजीविका प्राप्त करने के लिये उन्हें सदा क्लेशदायक परिश्रम करना पड़ा।" ( रामसरियर, वेदों के मूल-वचन तथा भाष्य )

आहा ! यह हिंदू उपाख्यान कैसा उज्ज्वल, कैसा तर्क-संगत, कैसा सरल और कैसा सुंदर है !

परित्राता कृष्ण हेवा का पुरस्कार देने के लिये स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होगा; क्योंकि हेवा ने परमेश्वर की आशा नहीं छोड़ी थी, और न उसमें अपराध की प्रथम बुद्धि ही थी। वह तो उस पुरुष के प्रति प्रेम रखने के कारण, जिस पर प्रेम करने की परमेश्वर ने उसे आज्ञा दी थी, एक सहाय-मात्र थी।

यह सुंदर और आश्वासन-दायक है।

यहाँ सच्ची हेवा का दर्शन होता है, और हम समझते हैं कि बाद को उसकी पुत्रियों में से कोई एक परित्राता की जननी बन सकती है।

इबरानी "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक का अनाड़ी रचयिता किस कारण इस पाठ को ज्यों-का-त्यों लिख नहीं सका ?

क्या मूसा ने स्त्री के सिर पर मूल-पाप का भार भूल से थोपा है या जान-बूझकर ?

हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि इबरानी व्यवस्थापक ने पूर्व के प्राचीन ऐतिह्य को जान-बूझकर, और उस समय के लोकाचार के डर से इस प्रकार झुठलाया है। अगले अध्याय में हमारे इस सिद्धांत का पक्षपोषण मिलेगा।

( किंतु इस उपाख्यान को क्या समझें ? )

चाहे यह कितना ही प्रलोभक क्यों न प्रतीत हो, परंतु युक्ति, क्या हिंदू और क्या ईसाई, दोनों धर्मों में समान रूप से इसका खंडन करती है।

हम परमेश्वर में ऐसी निर्बलता नहीं मान सकते कि उसने हमारे आदि माता-पिता के एक साधारण-से दोष के लिये सारी निरपराध मनुष्य-जाति को पाप और दुःख मे दंडित किया।

यह ऐतिह्य किसी प्रयोजन के लिये गढ़ा गया था—

मनुष्यों की आद्य जातियों ने उन सब विपत्तियों का अनुभव करके जो उन्हें सहन करनी पड़ती थीं, अपनी निर्बलता को जानकर, अपनी प्रकृति को अच्छे और बुरे सहज ज्ञानों का बना हुआ देखकर, अपने बनानेवाले परमेश्वर को शाप देने के स्थान में अपनी दुःखी अवस्था का कारण प्राक्कालीन अपराध को मानना अच्छा समझा। जो मूल-पाप हम इस मर्त्यलोक की सभी जातियों के, यहाँ तक कि आफ्रिका और आशीनिया की असभ्य जातियों के भी, सभी धर्म-विश्वासों में पाते हैं, उसका कारण यही है।

और भी हो सकता है कि यह शायद भूतल के प्राचीन अधिवासियों के उस युग के शांत और सुखी जीवन का अभिज्ञान-मात्र हो, जब कि पृथ्वी, जन-संख्या कम होने के कारण, निर्वाह के लिये सभी प्रयोजनीय पदार्थ, विना परिश्रम के, प्रचुर परिमाण में प्रदान किया करती थी।

# पाँचवाँ अध्याय

किस कारण मूसा स्त्री को आदिम पाप का आरंभक ठहराता है?—
वेदों की स्त्री तथा बाइबिल की स्त्रियां

वैदिक काल में भारत में स्त्री का सम्मान प्रायः पूजा की सीमा तक पहुँचा हुआ था, यह एक ऐसी सचाई है जिसकी यारप में, जब हम अंतिम पूर्व पर स्त्री के माहात्म्य का अस्वीकार करने और उसे केवल विषयभोग और चुपचाप वश्यता का साधन बना रखने का दोष लगाते हैं, तब हमें बहुत कम शंका होती है।

जो बात प्राचीन जातियों के विषय में सत्य थी, वह प्राचीन भारत के विषय में सत्य न थी, और ईसा के श्रेष्ठ उद्योग से स्त्री को केवल वही खोई हुई सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो सकी, जिसका वह मनुष्य-समाज के आद्यतम युगों में उपभोग कर चुकी थी।

यह बात भली भाँति समझ लेना चाहिए कि याजकीय प्रभाव और पौराणिक अवसाद ने ही, पूर्व की प्राक्कालीन अवस्था को परिवर्तित करके, स्त्री को अधीनता की दशा में गिरा दिया था, और यह वशवर्तिता अभी तक हमारी सामाजिक पद्धति से पूर्ण रीति से दूर नहीं हुई—

भारत की पवित्र पुस्तकों से दैवयोग से लिए हुए इन सूत्रों का पाठ कीजिए—

"पुरुष ओज है—स्त्री कांति है; पुरुष शासन करनेवाला विवेक है, परंतु स्त्री संयम में रखनेवाली बुद्धि है; इनमें से एक दूसरे के विना नहीं रह सकता, इसीलिये परमेश्वर ने इन दोनों को एक ही प्रयोजन के लिये उत्पन्न किया है।

"पुरुष स्त्री के विना अधूरा है, और जो पुरुष पूर्ण युवावस्था को प्राप्त होकर भी विवाह नहीं करता, उसके माथे पर कलंक का टीका लगना चाहिए।

"जो स्त्रियों से घृणा करता है, वह अपनी माता से घृणा करता है।

"जिसे स्त्री शाप देती है, उसे परमेश्वर शाप देता है।

"स्त्री के आँसू उन पर आकाश की अग्नि गिराते हैं, जिनके दुःख से वे अश्रु गिरते हैं।

"जो पुरुष स्त्री के दुःखों पर हँसता है, वह विपद्ग्रस्त होता है, परमेश्वर उसकी प्रार्थना पर हँसता है।

"स्त्रियों के गीत परमेश्वर के कानों को मधुर प्रतीत होते हैं; पुरुष यदि चाहते हैं कि उनकी प्रार्थनाएँ सुनी जायँ, तो उन्हें स्त्रियों के विना परमेश्वर का कीर्तन न करना चाहिए।

"पुरोहित जब फलों के लिये, फूलों के लिये, परिवारवर्ग के लिये और जगत के लिये यज्ञ करे, तो स्त्रियों को वेदी पर धूप जलाने की आज्ञा दे।

"जो लोग दीर्घायु के अभिलाषी हैं, उन्हें चाहिए कि अनुग्रह-पूर्वक स्त्रियों की रक्षा करें और उपहारों से उन्हें सन्तुष्ट रक्खें।

"स्त्री की प्रार्थना पर ही जगत्-रचयिता ने पुरुष को क्षमा किया था; जो पुरुष इस बात को भूल जाता है, वह आक्रोशित ठहरता है।

"सती स्त्री को शुद्धि का प्रयोजन नहीं; क्योंकि वह कभी, यहाँ तक कि अपवित्र वस्तु के स्पर्श से भी, अपवित्र नहीं होती।

"जो पुरुष उस दुःख को भूल जाता है, जो उसकी उत्पत्ति के समय उसकी माता को सहन करना पड़ा था, वह अगले तीन जन्मों में लगातार उल्लू की योनि में जाता है।

"स्त्रियों को दुःख देने और उनकी निर्बलता से लाभ उठाकर

उनके पैतृक धन को छीन लेने से बढ़कर कुत्सित अपराध और कोई नहीं।

"बहन को उसका भाग देते समय प्रत्येक भाई को चाहिए कि अपने भाग में से उसमें कुछ और डाल दे, और उसे अपने रेवड़ की सर्वोत्तम बछिया, अपनी उपज का सर्वविशुद्ध कुंकुम और अपनी डिबिया की सबसे सुंदर मणि दे।

"स्त्री घर की निगरानी करती है, और गृह-देवता उसकी उपस्थिति में प्रसन्न रहते हैं। खेत में उससे कभी काम न कराना चाहिए।

"स्त्री पुरुष के लिये विपत्ति में समाश्वासन देनेवाली और उसकी क्लांति को दूर करनेवाली हो।"

इन उदाहरणों में प्रकट किए हुए भाव अलग-अलग पड़े हुए नहीं, या केवल एक ही पुस्तक में नहीं पाए जाते; सभी प्राचीन पुस्तकें स्त्री के प्रति वैसे ही स्नेह और वैसे ही सम्मान से भरी पड़ी हैं। मनु का संक्षेप, जो ब्राह्मणों ने प्रभुता के अपने निज के विचारों के समर्थन के लिये बनाया है, यद्यपि स्त्री को अधिक अधीन और अधिक अस्पष्ट स्थिति में रखता है, फिर भी अनेक अवस्थाओं में अपने को उन प्राचीन नियमों की प्रतिध्वनि बनाने से नहीं बच सका, जो इतनी जल्दी भूल न गए होंगे।

वास्तव में हम पहले ही इस पुस्तक में एक वचन उद्धृत कर चुके हैं। हम समझते हैं, उसी का यहाँ दुबारा लिखना अनुचित न होगा—

"जो पिता, भाई, पति और देवर अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि स्त्रियों का मान करें और उन्हें भूषित करें।

"जहाँ कुलीन स्त्रियाँ शोक में रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और जहाँ उनसे प्रेम होता है, उनका सम्मान

होता है और उनसे कोमल व्यवहार किया जाता है, वहाँ परिवार हर प्रकार से बढ़ता है।

"जहाँ स्त्रियों का मान होता है, वहाँ देवता आनंद मनाते हैं, और जहाँ इनका मान नहीं होता, वहाँ सब कर्म निष्फल हो जाते हैं।

"अनादर पाई हुई स्त्रियाँ जिन घरों को शाप देती हैं, वे जादू से नष्ट हुए की तरह बिलकुल नष्ट हो जाते हैं।

"जिस कुल में स्त्री से भर्त्ता और भर्त्ता से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, वहाँ कल्याण अटल है।"

उसी पुस्तक में यह भी लिखा है—

"जो संबंधी, किसी चालाकी से, स्त्री की संपत्ति, उसकी गाड़ियों और उसके आभूषणों को अपने अधिकार में कर लेते हैं, वे ऐसे पापी नरक में जाते हैं।

"यदि स्त्री सुखी नहीं, और उचित प्रकार से वस्त्राभूषणों से अलंकृत नहीं, तो उसके पति का हृदय हर्ष से नहीं भरता, और यदि पति आनंदित नहीं, तो संतान नहीं हो सकती।

"स्त्री के प्रसन्न होने से सारा कुल प्रसन्न होता है।

"सती-साध्वी स्त्री के लिये केवल एक ही पति है, वैसे ही धर्मात्मा पुरुष के लिये केवल एक ही पत्नी है।"

वेदों के अनुसार, विवाह-संबंध अटूट है, यहाँ तक कि यदि दोनों के समागम से संतान उत्पन्न हो चुकी हो, तो मृत्यु भी पति-पत्नी को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती। उनमें से एक पृथ्वी पर निर्वासित रहकर दूसरे को स्मरण करता हुआ तब तक शोक में जीवन व्यतीत करे, जब तक कि मृत्यु उसके अर्द्धांग के साथ, उसके खोए हुए पवित्र प्रेम के साथ ब्रह्म के हृदय में उसका दुबारा मिलाप न करा दे।

प्रथम युगों की इस सभ्यता के कर्तव्य और सम्मान की कल्पना नैतिक भाव में कितनी उज्ज्वल थी। इस सभ्यता ने, मनुष्य जाति के बाल-काल के बहुत समीप होने के कारण, अभी उन विषैली आकांक्षाओं की उत्पत्ति न देखी थी, जिन्होंने पृथ्वी का बँटवारा करके और पृथ्वी पर खँडहर-ही-खँडहर फैला कर, मनुष्य से उसकी स्वर्गीय उत्पत्ति और उसके प्रथम अस्तित्व की पवित्र शुचिता भुला दी है।

यह बात स्पष्ट है कि यहूदी धर्म के साथ इतने कुसंस्कारों, इतने व्यभिचारों और इतने अत्याचारों के रहते हम इसे प्राक्कालीन ईश्वरीय ज्ञान का रक्षक और आधुनिक ज्ञान का प्रतिष्ठापक नहीं स्वीकार कर सकते। फ़ारस और मिसर की तरह यहूदियों भी पौराणिक ब्राह्मण-धर्म की, और हिंदू-ह्रास की उपज है। उसने मातृभूमि के कुछ थोड़े-से ही उज्ज्वल ऐतिह्यों का इकट्ठा करके उनमें अपने युग के आचार-व्यवहार के अनुसार काट-छाँट और फेर-फार किया है।

भारत में पुरोहितवर्ग के अवसादकर प्राधान्य का पहला परिणाम यह हुआ कि जो स्त्री वैदिक काल में इतने सम्मान और आदर की दृष्टि से देखी जाती थी, उसका अपकर्ष और नैतिक मानभंग हो गया।

मिसर की याजकश्रेणी ने ब्राह्मणों के प्रत्यादेश का अनुकरण किया, और उस अधिकार में कुछ भी परिवर्तन न होने दिया।

यदि आप दासों के शरीरों पर, पशु-तुल्य मूर्खों पर शासन करना चाहते हैं, तो इन गर्हणीय युगों का इतिहास आपको एक बहुत ही आसान रीति बताता है—स्त्री को पदभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट कर दीजिए, फिर आप पुरुष को शीघ्र ही ऐसा भ्रष्ट हुआ देखेंगे कि उसमें घोरतम स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध भी युद्ध करने की शक्ति न रह जायगी; क्योंकि वेद के सुंदर शब्दों में "स्त्री मनुष्य-जाति का प्राण है!"

भारत के धर्म-ग्रंथों के अज्ञात और गुह्य रचयिता ने कैसी पूर्ण रीति से इस बात को समझा था कि स्त्री —भगिनी, भार्या और

माता—हृदय के अत्यंत पवित्र बंधनों से कुल को सँभाले रखती है, और परिवार में नम्र और पवित्र गुणों का संचार करके समाज को नीति की शिक्षा देती है।

परंतु उन दुष्ट याजकों ने भी, जो अधिकार के भूखे थे, इस बात को कैसी उत्तम रीति से समझा था कि यहाँ एक ऐसा जोड़ है, एक ऐसी गाँठ है, जिसको खोल देने से हमारी प्रभुता और भी दृढ़ हो सकती है!

क्या मूसा इस अवस्था को बदलने और स्त्री को उसकी वह सच्ची पदवी दिलाने आया था, जो उसे पूर्व के प्राथमिक युगों में प्राप्त थी? नहीं। क्या उसने अपने युग के उस आचार-व्यवहार के सामने सिर झुकाया था, जिसके विरुद्ध वह युद्ध करने में असमर्थ था? संभवतः—परंतु तब हमें ईश्वरीय ज्ञान के विषय में और अधिक बातचीत न करने के लिये केवल एक और कारण मिल गया!

शोक! यहोवह के पक्षपातियो, आप परमेश्वर के विषय में हमें कैसी क्षुद्र कल्पना देते हैं, और कैसे विचित्र ऐतिह्यों पर अपने विश्वासों को अवलंबित रखते हैं!

यह देखो, यह सभ्यता है। यह तुम्हारी सभ्यता से पुरानी है, इससे तुम इनकार नहीं कर सकते। यह स्त्री को पुरुष के समान पदवी देती है, यह परिवार और समाज में दोनों का स्थान बराबर मानती है। ह्रास का आगमन होता है, और वह इन सिद्धांतों को उलट देता है। तुम आते हो, और साभिमान अपने को "परमेश्वर की जाति" कहते हो, यद्यपि तुम हिंदू-विद्रावण की सड़ी-गली उपज-मात्र हो, जिनमें प्राक्काल के पवित्र सिद्धांतों को पुनः प्राप्त करने अथवा अपनी माताओं को उनसे छिने हुए अधिकार दिलाने की सामर्थ्य नहीं!

चले जाओ, ऐ इसरायल-वंशियो—ऐ पतितों की संतान, अब हमें अपनी दिव्य उत्पत्ति का उपदेश देना बंद करो—तुम्हारा शासन केवल

अत्याचार और रक्तपात का शासन था; तुम स्त्री को समझने में असमर्थ थे; पर वही तुम्हारा पुनरुद्धार कर सकती थी।

यह सत्य है कि तुम्हारे पास खत है, जिसके कार्यों की हृदयग्राही और विमल कविता पर तुम गर्व करते हो। पर हम उसका मूल्य खूब जानते है। हमें यह भी ज्ञात है कि उसने किस प्रकार अपनी माता के उपदेश से बोअज से व्यभिचार किया ताकि वह उससे विवाह कर ले।

आप उत्तर देंगे कि ऐसा उस समय का रवाज था, और मैं भी तो तुम पर, जो अपने को ईश्वरीय ज्ञान की संतान कहते हैं, यही दूषण लगाता हूँ।

किसलिये तुमने इन रवाजों को नहीं बदला? तुम लूट-ताराज आग और तलवार द्वारा विजय-संहिता बनाना जानते थे; परंतु तुम पवित्रता, समाचारता और सामाजिक नीति के लिये व्यवस्था करने में अशक्त थे।

लूत की बेटियों के अपने पिता के साथ व्यभिचार करने, इबराहीम के अपनी दासियों से उत्पन्न हुई संतान को फेंकने और तामर के अपने को अपने ससुर के हाथ समर्पण कर देने का स्मरण रखिए।

उस याजक को, एफ्राइम के उस लेवी को याद करो, जिसने कुछ मद्यपी पुरुषों के महावेग को शांत करने और उनके अत्याचार से बचने के लिये, उनकी संतुष्टि के निमित्त अपनी भार्या को निकाल दिया, और बलात्कार के लिये सारी रात उसे छोड़े रक्खा!

अब समय है कि इन सब बातों की उनके वास्तविक मूल्य के अनुसार क़दर की जाय!

यदि तुम ईश्वरीय प्रत्यादेश को माननेवाले नहीं, तो मैं तुम्हारा हेतुवाद स्वीकार करता हूँ, और तुम्हारे साथ इस बात में सहमत हो सकता हूँ कि ये नीच अपवाद समय की रीतियाँ थीं।

यदि तुम ईश्वरीय प्रत्यादेश के माननेवाले हो, तो मैं तुम्हें छोड़ता हूँ, और तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारा ईश्वरीय ज्ञान पापमय है !

ओह ! क्या तुम मुझसे यह मनवाना चाहते हो कि परमेश्वर ने क्रमिक और अपूर्ण नीति बनाई थी, और एक पुरानी व्यवस्था तो व्यभिचार को सहन करती और नई व्यवस्था उसका बहिष्कार करती है !

बहुत अच्छा ! उत्तर में मैं कहता हूँ कि ईश्वर ने मनुष्य-जाति के जन्म-स्थान पर केवल एक ही धर्म-नियम का विधान किया था, और जिन जातियों ने उसकी उपेक्षा की है, उन सबने ईश्वरीय नियम को तोड़ा है।

जिस व्यापार को देखकर मुझे सदा आश्चर्य होता है, वह यह है कि आधुनिक प्रोटेस्टेंट धर्म की, उस स्वतंत्र विचार के धर्म की, शाखाएँ अपने धर्म-सम्मेलनों से उन लोगों को निकाल देती है, जो विवेक के प्रकाश में ईश्वरीय प्रत्यादेश को नहीं मानते।

एक मनुष्य, जो एक सिंहासन को तहस-नहस कर डालने के कारण विश्रुत कहलाता है, और जो अन्य अनेकों को भी पादाक्रांत करना चाहता है, परंतु अयोग्य ठहरानेवाली अपात्रता के कारण थोड़ी देर के लिये निर्व्यापार है, बहुत देर से पुस्तकों में प्रचार करने लगा है।

वह कैथोलिक नहीं है; क्योंकि उसमें वह व्यग्र धार्मिक श्रद्धा नहीं, जो उसके कैथोलिक धर्म ( Catholicism ) का हेतु हो सके।

वह यहूदी नहीं; क्योंकि वह प्राचीन धर्म को भूत काल के लिये मानता और वर्तमान के लिये उसका अस्वीकार करता है।

फिर वह है क्या ?

वह एक ऐसा मनुष्य था, जो मनुष्यों से घृणा करता था; एक ऐसा याजक था, जो याजकों से द्वेष करता था; एक ऐसा प्रतिनिधि था, जो

नियोजकों का तिरस्कार करता था; और एक ऐसी प्रजा था, जो अपने राजा का अवमान करती थी। सारांश यह कि वह एक ऐसा मनुष्य है, जो सबसे खुल्लमखुल्ला घृणा करने के उपरांत, अब वही वस्तु प्राप्त करने लगा है, जो उसने इतनी प्रचुरता से दूसरों को दी थी।

ठीक! इस मनुष्य ने, जिसने अपनी पुस्तक में धर्म-प्रचार करना आरंभ कर दिया है, अपने तईं इलहामी ईश्वरीय ज्ञान का रक्षक बना लिया है।

वह इस बात को मानता है, क्योंकि यह उसके अनुकूल है। वह उस बात को नहीं मानता; क्योंकि वह उसे अच्छी नहीं लगती। वह समाहारक ( Eclectic ) है; परंतु उसका समाहार-धर्म ( Eclecticism ) उसका अपना ही है। वह स्वतंत्र विचारक है; पर अपने ही स्वतंत्र विचारों का। उनमें वह किसी दूसरे को नहीं मिलाता।

इस अंतिम क्रिया के लिये उसे कौन-सी बात विवश करती है?

अपने नाम को चरम कीर्ति से परिवृत करने की लालसा।

आइए, श्रीगुईज़ोजी ( M. Guizot ), जिस प्रकार आपने याजकता को छोड़ दिया है, वैसे ही अपनी लेखनी को भी तिलांजलि दे दीजिए। युवक विचारकों की ओर से जो कुछ मैं आपसे कह सकता हूँ, वह यही कि आप आस्तिकों और नास्तिकों, दोनों को निरुत्साह करते हैं।

जो व्यक्ति किसी कल्पना अथवा आदर्श-पताका की रक्षा करता है, उसका हम सम्मान कर सकते हैं; परंतु उन लोगों का कभी नहीं कर सकते, जिनकी, उनके अपने आपके सिवा, न कोई कल्पना है और न कोई पताका।

मैंने अभी इस स्वादिष्ट पाठ को दुबारा पढ़ा है, परंतु शायद मुझे अपने पृष्ठों को इसके साथ ख़राब न करना चाहिए। क्या

मुझे इसे मिटा देना चाहिए? नहीं! मेरी लेखनी ने शायद सार्वजनिक विवेक के प्रयोजन को पूरा किया हो।

यह नाम इबरानी ईश्वरीय ज्ञान के अनेक पक्षपोषकों में दिखाई दिया था, और केवल इसी ने मुझे आकृष्ट किया था; क्योंकि यही एक ऐसी हृदयग्राही रीति से अहंकार की, और स्वयं मूर्तिमान् सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अहम्मन्यता की सूचना देता था।

हम इस सबको एक निक्षिप्त वाक्य मानकर अपने मूल-विषय की ओर लौटते हैं।

मैंने इस ईश्वरीय ज्ञान के विषय में कहा है कि यह ईश्वरीय ज्ञान नहीं है; क्योंकि यह स्त्री को उसकी खोई हुई पदवी दिलाने के लिये नहीं बना; क्योंकि यह प्राचीन भारत वैदिक काल के भारत के ऐतिह्यों को छोड़कर केवल पौराणिक काल के ऐतिह्यों को जारी रखता है।

वेदों की स्त्री पवित्र और पूजनीय है—बाइबिल की स्त्री एक दासी-मात्र, और किसी-किसी समय तो एक वेश्या-मात्र है।

वेदों की स्त्री पुरुष की सहचरी है, और घर के चूल्हे का सम्मान है।

बाइबिल की स्त्री एक खेला-मात्र है।

हिंदू केवल एक ही पत्नी रख सकते थे।

इसराइल-वंशी अपने लिये कुमारी कन्याएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने पड़ोस के देशों में अभियान किया करते थे, और अच्छा मूल्य मिलने पर अपनी पुत्रियों को बेचने में भी संकोच न करते थे।

जिन प्रयोजनों से विवश होकर मूसा ने हिंदुओं की सृष्टि-उत्पत्ति की कथा की—जो उसने मिसर में याजकों की पवित्र पुस्तकों से नक़ल की थी—काट-छाँट और उसके अंगों में फेर-फार किया था, उनको

इबरानी आचार-व्यवहार की भ्रष्टता के सिवा और कहीं ढूँढने की आवश्यकता नहीं ।

इबरानी व्यवस्थापक उस अन्याय-युग में सुंदर और हृदयंगम मूर्ति—अपनी संतान तथा पति के हृदयों पर शासन करनेवाली स्वतंत्र, पवित्र और भक्तिमयी स्त्री—को उत्पन्न नहीं कर सका । इससे भी बढ़कर, हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यदि उसमें इस-के लिये यत्न करने का साहस भी होता, तो भी उसकी जाति उस-को न समझ सकती, और वह अवश्य ही एक व्यापक विद्रोह के नीचे दब जाता ।

सारे पूर्व में स्त्री स्वामी की एक दासी बन गई थी, और उस समय तक किसी को भी उसके उद्धार का, उसे उसका खोया हुआ स्थान पुनः दिलाने का स्वप्न भी न हुआ था; मूसा को भी दूसरों से बढ़-कर प्राचीन ऐतिह्यों को पुनर्जीवित करने का विचार न था ।

इसलिये वह ऐसी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और शुद्ध हिंदू-उपाख्यान की ज्यों-की-त्यों नक़ल नहीं उतार सका ।

पुरुष को मूल-पाप का रचयिता बना देने से स्वेच्छाचारी राजा का अधिकार घट जाता तथा उसके गर्व को धक्का लगता, और स्त्री यह समझने लगती कि ईश्वर के नाम से अभाग्यपूर्वक उसके अधिकार छीने गए हैं ।

परंतु केवल इसी में मूसा ने भारत को नहीं भुलाया; बाइबिल की "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक में यहोवह आदम और हेवा से, उन-के अपराध के उपरांत, कहता है कि तुम्हारा कोई भी परित्राता न होगा । और, मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि ईसाई कल्पना इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कि परमेश्वर ने हमारे प्रथम माता-पिता पर मसीहा ( जगत्त्राता ) की घोषणा की थी, मूसा का आश्रय लेती है ।

देखिए, आदम के स्वर्ग से निकाले जाने पर बाइबिल की "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक क्या कहती है—

"और उस ( यहोवह ) ने कहा, सोचने की बात है कि आदम भले-बुरे का ज्ञान पाकर हममें से एक के समान हो गया है ( मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यहोवह को इस बात का पूर्ण निश्चय न था कि एक-मात्र वही परमेश्वर है ), सो अब उसे निकाल देना चाहिए, ताकि कहीं ऐसा न हो कि वह हाथ बढ़ाकर जीवन के वृक्ष का फल भी तोड़के खावे और सदा जीता रहे।

"तब परमेश्वर ने उसको प्रमोद-वाटिका से निकाल दिया, जिससे वह उस भूमि पर खेती करे, जिसमें से वह बनाया गया था।

"उनको निकालने के उपरांत उसने दिव्य दूतों को ज्वालामयी तलवारें देकर जीवन के वृक्ष की रक्षा के लिये स्वर्ग की वाटिका के सामने ठहरा दिया।"

मैंने न केवल इसी पुस्तक के, परंतु मूसा से संबंध रखनेवाली चार पुस्तकों के भी प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक वचन की व्यर्थ ही परीक्षा की है, और मुझे किसी भी ऐसी बात का मालूम करना संभव नहीं जान पड़ा, जो व्यक्त रूप से अथवा अव्यक्त रूप से, स्पष्ट रीति से अथवा अलंकार की रीति से, संभवतः एक परित्राता पर लागू हो सकती हो।

इस ऐतिह्य को, जो भारत ने सब जातियों को दिया था, और जिसे हम संसार की सभी धर्म-पुस्तकों में पाते हैं, भविष्यद्वक्ताओं ने पीछे से प्राप्त किया था।

यह बता देना भी अच्छा होगा कि सृष्टि-उत्पत्ति और फ़रिश्तों के विद्रोह के विषय में मूसा एक भी शब्द नहीं कहता। इसको भी हम पूर्व के ऐतिह्यों में से उत्तर काल में ग्रहण किया हुआ समझते हैं।

इस प्रकार यह इबरानी धर्म, थोड़ा-थोड़ा करके, सारी प्राचीन पुराण-कथाओं में से इधर-उधर से इकट्ठे किए हुए और एक ऐसे ईश्वरीय ज्ञान की संरक्षकता में रक्खे हुए टुकड़ों और अंशों से बना है, जो परीक्षा को सहन नहीं कर सकते।

इस सबका यह परिणाम निकलता है कि भारत और मिसर की धर्म-पुस्तकों के विषय में मूसा को लेवियों और भविष्यद्वक्ताओं की अपेक्षा, जिन्होंने पीछे से उसके कार्य को पूर्ण किया, बहुत थोड़ा ज्ञान था।

## छठा अध्याय

### महाभारत और पुराणों के अनुसार जल-प्रलय

हमारे पास इस विषय के इतने वृत्तांत हैं कि हमें पता नहीं लगता, उनमें से किसको चुनें; प्राचीन भारत का कोई भी ऐसा इतिहास, धर्म-विद्या की कोई भी ऐसी पुस्तक अथवा कविता नहीं, जिसमें इस जल-प्रलय का, जिसका ऐतिह्य कि सभी जातियों में मौजूद है, विशेष वर्णन न हो।

एक संक्षिप्त वैदिक पाठ इस घटना का इस प्रकार वर्णन करता है—"परमेश्वर के भविष्य कथन के अनुसार पृथ्वी बस गई, और आदिम तथा हेवा ( Heva ) के पुत्र इतने बढ गए और इतने दुष्ट हो गए कि वे आपस में ही सहमत न हो सके।

"उन्होंने परमेश्वर और उसकी प्रतिज्ञाओं को भुला दिया, और अंत को अपने रक्ताक्त कलहों के महारव से उसको तंग कर डाला।

"एक दिन राजा दैतेय ( Daytha ?) की धृष्टता यहाँ तक बढ़ गई कि उसने आकाश की गर्जना को आक्रोशित करना आरंभ कर दिया, और उसे चुप रहने की आज्ञा दी। साथ ही यह धमकी दी कि यदि मेरी आज्ञा का पालन न होगा, तो मैं अपने योद्धाओं को लेकर स्वर्ग को जीत लूँगा।

"परमेश्वर ने अपने जीवों को ऐसा भीषण दंड देने का निश्चय किया, जो अवशिष्टों और उनके वंशजों के लिये चेतावनी का काम दे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मा ने बाइबिल के यहोवह की भाँति, अपने भविष्यद्ज्ञान से असंगत जगत् को उत्पन्न करने पर पश्चात्ताप करने की निर्बलता नहीं दिखाई।

ब्रह्मा ने सारे संसार पर दृष्टिपात किया, ताकि किसी ऐसे पुरुष का पता लगावे, जो मनुष्य-जाति को निरंतर बनाए रखने के लिये, बाक़ी सबकी अपेक्षा, रक्षा किए जाने का पात्र हो तब उसने उसके सद्गुणों के कारण वैवस्वत को चुना । हमें यहाँ पता लगता है कि उसने किस प्रकार अपनी इच्छा को प्रकट किया, और क्या परिणाम हुआ ।

वैवस्वत उसकी आयु को पहुँच चुका था, जब परमेश्वर के भक्तों को परिवार तथा मित्रों का परित्याग करके वनों और जंगलों में चला जाना चाहिए, तथा आयु के शेष दिन तपस्या और निरंतर ईश्वर-चिंतन में बिताने चाहिए ।

एक दिन जब वह पवित्र वीरिणी ( Viriny ? ) के तट पर स्नान करने के लिये आया, तब एक अत्यंत मनोहर रंगवाली मछली पानी से निकलकर रेत पर आ पड़ी, और उस पवित्रात्मा से कहने लगी—"मेरी रक्षा कीजिए । यदि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देंगे, तो इसी नदी में रहनेवाली बड़ी मछलियाँ मुझे अवश्य निगल जायँगी ।"

वैवस्वत को उस पर दया आई; उसने उसे अपने पीतल के लोटे में, जिससे वह स्नान कर रहा था, रख लिया, और उठाकर घर ले आया । यहाँ आकर वह इतनी बढ़ गई कि एक बड़ा बर्तन भी उसे रखने के लिये अपर्याप्त सिद्ध हुआ । तब वैवस्वत ने उसे एक तालाब में डाल दिया । वहाँ भी वह उसी वेग से बढ़ती रही । तब उसने अपने रक्षक से उसे गंगा में ले जाने की प्रार्थना की ।

पवित्र ऋषि ने उत्तर दिया—"यह तो मेरी सामर्थ्य से बाहर है । इस समय जहाँ तुम हो, वहाँ से तुम्हें ब्रह्मा के सिवा और दूसरा नहीं निकाल सकता ।"

मछली बोली—"कम-से-कम यत्न करके तो देखिए ।"

वैवस्वत ने इसे पकड़कर बड़ी सुगमता से उठा लिया, और गंगा

में ले गया। यह भीमकाय मछली न केवल तिनके के सदृश हलकी ही हो गई, वरन् इसमें से चारों ओर मीठी सुगंध की लपटें भी निकलने लगीं।

वैवस्वत ने अनुभव किया कि मैं परमेश्वर की इच्छा को पूरा कर रहा हूँ। वह आश्चर्यजनक घटनाओं की प्रत्याशा करने लगा।

मछली ने उसे शीघ्र ही फिर बुलाया और कहा—"मुझे यहाँ से निकालकर समुद्र में ले जाइए।" इस आज्ञा का चटपट पालन कर दिया गया।

तब वह अपने पालनेवाले से कहने लगी—

"हे बुद्धिमान् और परोपकारी मनुष्य, सुनो, यह पृथ्वी अभी जल में लीन होनेवाली है, और इस पर बसनेवाले सभी लोग विनष्ट हो जायँगे; क्योंकि देखो, परमेश्वर का कोप बादलों और समुद्रों को, इस भ्रष्ट और दुष्ट जाति को, जिसने अपनी उत्पत्ति तथा ईश्वरीय धर्म को भुला दिया है दंडित करने की आज्ञा देगा। तेरे साथी मनुष्य अपने गर्व को सँभाल नहीं सकते, यहाँ तक कि वे अपने स्रष्टा की अवज्ञा करने का साहस करते हैं परंतु उनके अपराध ब्रह्मा के सिंहासन के पाँव तक पहुँच गए हैं, और ब्रह्मा अपनी शक्ति दिखलानेवाला है।

"इसलिये जल्दी से एक नौका बनाओ, जिसमें तुम और तुम्हारा सारा परिवार बैठे।

"तुम प्रत्येक पेड़ के बीज और जीवों की प्रत्येक जाति का एक-एक जोड़ा ले लो जिनका जन्म भापों और सड़ाँद से हुआ है, उन सबको छोड़ दो; क्योंकि उनके जीवन का मूलतत्त्व परमात्मा से नहीं निकला।

"तुम विश्वास-पूर्वक प्रतीक्षा करो।"

वैवस्वत ने शीघ्र ही इन आदेशों का पालन करना आरंभ कर

दिया। पोत बनाकर वह अपने परिवार-सहित उसमें बैठ गया। साथ ही उसने पेड़ों के बीज और सारे जीवों का एक एक जोड़ा उसमें रख लिया।

जब जल-वृष्टि होने लगी और समुद्र उमड़ आए, तो एक विशाल सींगवाली विकट मछली आई, और जहाज़ के सिर के साथ आ लगी। वैवस्वत ने सींग के साथ एक रस्से से जहाज़ को बाँध दिया। अब मछली उस उच्छृंखल तत्त्वसमुच्चय में से पोत को खींचती हुई तीर की तरह दौड़ने लगी।

पोतारोहियों ने देखा, परमेश्वर का हाथ उनकी रक्षा कर रहा है; क्योंकि झंझा-वात का महावेग और तरंगों का प्राबल्य उन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचाता था। यह अवस्था कई दिन, कई मास और कई वर्ष तक जारी रही, जब तक कि विनाश का कार्य पूर्ण रूप से समाप्त न हो गया। तत्त्वसमुच्चय के शांत हो जाने पर ये नाविक, जिनको सदा उनका गुह्य नायक मार्ग दिखाता रहा था, हिमालय के शिखर पर उतरने में समर्थ हुए।

उनको छोड़ने पर मछली ने कहा—"विष्णु ने मृत्यु से तुम्हारी रक्षा की है। उसी की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने मनुष्य-जाति को क्षमा-दान दिया है। जाओ, अब जाकर पृथ्वी को दुबारा बसाओ, और परमेश्वर के कार्य को संपूर्ण करो॥।"

ऐतिह्य के अनुसार, ब्रह्मा को उसके इस वचन का स्मरण कराने से ही कि वह मनुष्यों को उनके पुरातन धर्म पर लाने और उनके अपराधों के निस्तार के लिये उसे पृथ्वी पर भेजेगा, विष्णु ने वैवस्वत को मरने से बचाया, ताकि परमेश्वर का वचन उसके बाद पूर्ण हो।

हम समझते हैं, इस उपाख्यान पर किसी टीका-टिप्पणी की

---

॥ मैक्समूलर इस आख्यान को मनु के नाम के साथ जोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

आवश्यकता नहीं। पाठक सारे आनुषंगिक अनुमानों को सुगमता से समझ लेंगे।

कुछ एक का मत है कि वैवस्वत, अपनी संतति के द्वारा, समग्र नवीन जातियों का जनक था।

फिर कुछ दूसरे कहते हैं कि उसने पानी के छोड़े हुए कीचड़ में पत्थर के टुकड़े फेंककर ही स्वेच्छानुसार बहुत-से मनुष्य उत्पन्न कर लिए थे।

एक ओर तो यह पुराण-कथा है, जिसे यहूदी-धर्म और ईसाई मत ने ग्रहण और पुनः लाभ किया था।

दूसरी ओर यह ड्यूकेलियन ( Deucation ) और पाईरा ( Pyrrha ) का ऐतिह्य है, जो स्वदेश-त्यागियों के काव्यमय गीतों द्वारा यूनान में पहुँचा था।

## सातवाँ अध्याय

### कुलपति अजीगर्त का उपाख्यान

यह बात स्पष्ट है कि यहाँ हम वैवस्वत का इतिहास नहीं दे सकते, और न हिंदुओं के वे सब उपाख्यान ही सुना सकते हैं, जिनमें जलप्लावन के बाद के कुलपति-जीवन का वर्णन है। हम केवल अजीगर्त का जीवन-वृत्तांत ही लिखते हैं। इसका बाइबिल के इबराहीम के जीवन से बड़ा आश्चर्यजनक सादृश्य है। इसलिये यह संपूर्णतः हमारे इस सिद्धांत की पुष्टि करता है कि मूसा ने अपनी "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक के ऐतिह्य, क्या कुलपतियों-संबंधी और क्या दूसरे, मिसर की धर्म-पुस्तकों से लिए थे, और ये पुस्तकें स्वयं वेदों और भारत के धार्मिक विश्वासों की शासनपत्र-मात्र हैं। यह एक ऐसा अनुमान है, जिससे बचने का सिवा इसके और कोई उपाय नहीं कि इबरानी व्यवस्थापक की असंगत कथाओं द्वारा उस कालगणना की सहायता से, जिसको आधुनिक विज्ञान ने असंभव ठहराया है, उन पुरातन युगों की आग्रह-पूर्वक परीक्षा की जाय।

इस कालगणना की परीक्षा करते हुए, वास्तव में, यह बड़ी विचित्र बात दिखाई देती है कि मूसा बड़े ही निश्चय से अपना संबंध आदम के साथ जोड़ता है। मुझे संदेह है कि संसार में व्यवहार-ज्ञान के अतीव साधारण नियमों के लिये इससे बढ़कर किसी दूसरी बीभत्स बात का ढूँढ़ना संभव हो सकता है।

बाइबिल के अनुसार—

मूसा चिरकाल तक लेवी का समकालीन था।

लेवी इकतालीस वर्ष तक इसहाक के साथ रहा।

इसहाक पचास वर्ष तक शेम के साथ रहा।

शेम छियानबे वर्ष मतूसेलम के साथ रहा।

मतूसेलम तैंतालीस वर्ष आदम के साथ रहा।

इस प्रकार मूसा सृष्टि की उत्पत्ति से केवल चार पीढ़ी, और जल-प्लावन से केवल दो पीढ़ी पीछे हुआ!

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आदम और मूसा के बीच के चार मनुष्य, बाइबिल की कालगणना के अनुसार, दो सहस्र चार सौ तैंतीस वर्ष तक जीते रहे, अथवा उनमें से प्रत्येक के जीवन के लिये छः सौ वर्ष ठहरे *।

यह प्रगल्भ परिहास, जिस पर गंभीरता-पूर्वक विचार नहीं किया जा सकता, फिर भी जेज़ुइट डा कैरियर ( Jesuit de Carriere ) के मन में निम्न-लिखित विचार उत्पन्न करता है—

"यहाँ तक कि सृष्टि की उत्पत्ति और वे सब बातें, जो बाइबिल की उत्पत्ति-नामक पुस्तक में लिखी हुई हैं, मूसा को अपने पितरों के मुख से सुनकर ज्ञात हो गई होंगी। शायद इसरायल-वंशियों में अभी तक स्मृति भी मौजूद थी, और उन्हीं स्मरणों से उसने कुल-पतियों के जन्मों और मरणों की तिथियाँ, उनकी संतान तथा उनके परिवार की संख्या और उन भिन्न-भिन्न देशों के नाम लिखे होंगे, जिनमें उनमें से प्रत्येक उस पवित्र आत्मा के आदेश से जा बसा, जिसे हमें सदा धर्म-पुस्तकों का प्रधान रचयिता समझना चाहिए।"

मेरे सम्मान के योग्य पादरी महाशय! हमें एक दूसरे की बात को अवश्य समझना चाहिए।

मूसा को त्रिमूर्त्ति का कुछ भी ज्ञान न था। मैं ललकारकर कहता हूँ कि मेरे इस कथन के खंडन में उसकी पुस्तक से एक भी पंक्ति

* यह भी इस सिद्धांत पर होगा कि फ़ीनिक्स पक्षी की भाँति एक की राख से दूसरे का जन्म होता है।

निकाल दिखलाइए। फिर यहोवह का स्थान पवित्र आत्मा को किसलिये देते हो? आप तो नहीं कहते, पर मैं समझता हूँ, इन संयोगों की सहायता से ही, आवश्यकता पड़ने पर जिनकी आपको कुछ कमी नहीं, आप बाइबिल की व्याख्या करते और उसमें से वे बातें निकालते हैं, जिनका उसमें अस्तित्व भी नहीं।

पवित्रात्मा को प्रविष्ट किए बिना इन मनुष्यों की मतूसलेम के सदृश पाँच, छः, सात, नौ सौ वर्षों की आयु बताना काफ़ी बुरी बात थी। इस पवित्रात्मा का यदि सम्मान किया जाय, तो उसका इन लज्जाजनक ऐतिह्यों के साथ कुछ भी संबंध न होना चाहिए।

परंतु इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि हमारा इतिहास सुगमता से संतुष्ट हो जाता है; क्योंकि विज्ञान के बीसों बार इबरानी कालगणना का खूब खंडन कर देने पर भी इतिहास अभी तक इसे साग्रह ग्रहण किए हुए है।

हिंदू-कालगणना के अनुसार, जल-प्लावन द्वापर युग के अंत में, हमारे संवत् से चार सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले, हुआ था, और उसके बाद आनेवाले युग में वैवस्वत का पोता अर्जीगर्त हुआ।

यह कुलपति मूसा से ढाई सहस्र वर्ष पहले हुआ था। निस्संदेह इसी से मूसा को इबराहीम का आख्यान सूझा था। इसके विषय में निम्न-लिखित उपाख्यान है—

"गंगा के देश में अजीगर्त नाम का एक महात्मा रहता था। वह सायं और प्रातः यज्ञ करने के लिये वन में, अथवा नदियों के तटों पर, जिनके जल स्वभावतः ही शुद्ध हैं, जाया करता था।

"जब यज्ञ समाप्त हो चुका, और उसका मुख दिव्य आहार द्वारा पवित्र हो गया, तब ओ३म् के गुह्य शब्द का, जो परमेश्वर के आगे प्रार्थना है, हौले-हौले उच्चारण करने के पश्चात्, उसने सावित्री के पवित्र मंत्र का गान किया—

भूर्भुवः स्वः !

( पृथ्वी, ईश्वर, आकाश )

"हे लोकों और सर्वभूतों के स्वामी, मेरी दीन प्रार्थना को स्वीकार कीजिए, अपनी अमर शक्ति से चिंतन को छोड़िए ! आपकी एक ही दृष्टि मेरे आत्मा को पवित्र कर देगी।

"मेरे समीप आइए, जिससे मैं आपकी वाणी को पत्तों की मरमराहट में, पवित्र नदी के जल की बड़बड़ाहट में और अग्नस्थ्य ( पवित्र अग्नि ) की उज्ज्वल शिखा में सुन सकूँ।

"मेरा आत्मा परमात्मा से निकलनेवाले पवन में श्वास लेने के लिये तरस रहा है, मेरी दीन प्रार्थना पर कर्णपात कीजिए। सारे सचराचर जगत के स्वामी !

"भूर्भुवः स्वः !"

( पृथ्वी, ईश्वर, आकाश )

"मेरा प्यासी आत्मा के लिये तेरी वाणी, मरुस्थली के लिये ओस की बूँदों से, और स्तनंधय बच्चे के लिये स्नेहमयी युवती माता के शब्द से बढ़कर मधुर है।

"ऐ तू, जो वसुंधरा को पुष्पवती करता है, जो फ़सलों को पकाता है, जो सारे अंकुरों को विकसित करता है, जिसके द्वारा आकाश द्युतिमान् होते, माताएँ संतान उत्पन्न करतीं और ऋषिगण सद्गुण सीखते हैं, मेरे पास आ।

"मेरी आत्मा तुझे जानने के लिये व्याकुल हो रही है, और इस नश्वर कोश से छूटकर परमानंद को भोगने के लिये तेरे तेज में लीन हो जाने के लिये लालायित है।

"भूर्भुवः स्वः"

( पृथ्वी ! ईश्वर ! आकाश ! )

( सामवेद से संगृहीत )

"परमेश्वर से यह प्रार्थना करने के पश्चात् अजीगर्त ऋषि ने सूर्य की ओर मुख किया, और, ब्रह्मा की अतीव समृद्धिशालिनी रचना होने के कारण, उसके लिये यह स्तोत्र कहा- -

"हे देदीप्यमान और तेजोमय सूर्य, तेरे सदा तरुण और सदा उत्कृष्ट गुणों का यह जो मैं पूजन करता हूँ, उसे स्वीकार कीजिए।

"मेरी इस प्रार्थना को मानने की कृपा कीजिए कि तेरी किरणें मेरी भूखी आत्मा पर उसी प्रकार पड़ें, जिस प्रकार तरुण प्रेमी अपनी प्रियतमा का प्रथम चुंबन करने के लिये शीघ्रता करता है।

"हे सूर्य! पृथ्वी और समुद्र दोनों को उर्वर और आनंदित करने-वाले तेजोमय मंडल! मुझको प्रकाशित कीजिए* !

"पवित्र और प्रकाशमान सूर्य, हम तेरी उत्कृष्ट ज्योति पर विचार करते हैं, ताकि यह हमारी बुद्धि को उज्ज्वल करे और सन्मार्ग पर चलावे।

"हे प्रकाशमान सूर्य, याजक लोग यज्ञों और पवित्र मंत्रों द्वारा तेरी प्रतिष्ठा करते हैं; क्योंकि उनकी बुद्धि तुझमें परमेश्वर का अत्यंत सुंदर कार्य देखती है :

"हे श्रेष्ठ और तेजोमय सूर्य! दिव्य भोजन का भूखा मैं अपनी दीन प्रार्थनाओं द्वारा तेरे स्वर्गीय और बहुमूल्य दानों की याचना करता हूँ।"

(ऋग्वेद से संगृहीत)

---

* यह सुंदर सूक्त Metastasis's "Inus a venere" का प्राय मूल माना जा सकता है।

"Scendi propiyia col tuo splendore.
"O bella venere, madre d' Amore;

× × ×

"Tu colle becide, pupille chiare,
"Fai lieta, e fertile, la terra e'l mare."

"इन प्रार्थनाओं और निर्दिष्ट स्नानों के उपरांत भी महात्मा अजीगर्त अपना बहुत-सा समय पावक ( पवित्र )-नामक एक धार्मिक पुरुष से वेदों के गूढ़ और गंभीर अर्थों के सीखने में व्यतीत करने लगे। पावक उस समय उस आयु ( सत्तर वर्ष ) से बहुत दूर न था, जब कि ईश्वर के सच्चे भक्त को एकांत में जीवन व्यतीत करने के लिये संसार से विरक्त हो जाना चाहिए।"

"अध्ययन और उपासना में अपने दिन बिताते हुए जब अजीगर्त की आयु पैंतालीस वर्ष की हो गई, तो एक दिन उसके गुरु ने, यज्ञ की समाप्ति पर, उसे एक पुष्पों से सुसज्जित और दोषरहित बछिया देकर कहा—

"उस उपायन को देख, जो परमेश्वर ने उन लोगों के लिये, जिन्होंने वेदाध्ययन समाप्त कर लिया है, नियत किया है। हे अजीगर्त, तुझे अब मेरी शिक्षा का प्रयोजन नहीं; अब अपने लिये एक पुत्र प्राप्त करने का विचार कर, जो तेरी मृत्यु पर तेरे ब्रह्म-धाम में प्रवेश के निमित्त अंत्येष्टि-क्रिया करावे।

"अजीगर्त ने उत्तर दिया—'पिता, मैं आपकी बात सुन रहा हूँ, और आवश्यकता को समझता हूँ; परंतु मैं किसी स्त्री को नहीं जानता, और यदि मेरे हृदय में प्रेम की इच्छा उत्पन्न हो, तो मुझे मालूम नहीं कि किसके पास प्रार्थना करूँ।'

"पावक बोला—'मैंने तुम्हें ज्ञानमय जीवन दिया है, अब मैं तुम्हें सुख और प्रेम का जीवन दूँगा।'

"मेरी पुत्री पार्वती सौंदर्य और चातुर्य में संसार की सब कुमारियों से बढ़कर है; उसके जन्म से ही मैंने उसे तुम्हारी भार्या बनाने का निश्चय किया है। उसने अभी किसी भी पुरुष के दर्शन नहीं किए, न किसी पुरुष ने उसके प्रसन्न मुखमंडल को देखा है।'

"इन शब्दों को सुनकर अजीगर्त प्रसन्नता से गद्गद हुआ।

"विवाहोत्सव मनाया गया, और द्विजों की रीति से विवाह-संस्कार हुआ।

"अजीगर्त और सुंदरी पार्वती बरसों तक बड़े आनंद से रहते रहे; उनके पास सबसे अधिक और सबसे उत्तम गौएँ थीं; उनके धानों की, छोटे नाजों की और कुंकुम की फ़सलें सदा सबसे सुंदर होती थीं।

"परंतु उनके सुख में एक बात की कमी थी; यद्यपि ईश्वर के नियम के अनुसार अजीगर्त ऋतुकाल में सदा पार्वती का सहवास करता था; परंतु उनके कोई संतान न हुई थी, और पार्वती वंध्या जान पड़ती थी।

"उसने पवित्र गंगा की यात्रा भी की; उसने असंख्य व्रत और प्रार्थनाएँ भी कीं; पर कुछ भी फल न हुआ—उसे गर्भ-स्थिति न हुई।

"उसकी वंध्यता का आठवाँ वर्ष आ पहुँचा, जब कि पुत्र न उत्पन्न करने के कारण नियम के अनुसार पार्वती का परित्याग होना था। यह उन दोनों के लिये बड़ी ही विषण्णता का विषय बन रहा था।

"एक दिन अजीगर्त अपने यूथ की सर्वोत्तम लाल बकरी को लेकर परमेश्वर को बलि देने के लिये एक निर्जन पर्वत पर गया, और अविरल अश्रु-धारा बहाते हुए प्रार्थना करने लगा—'भगवन्, जिनको आपने मिलाया है, उन्हें अब अलग न कीजिए'। परंतु सिसकियों से उसका कंठ भर गया, और वह कुछ अधिक न कह सका।

"जिस समय वह रोता और परमेश्वर से याचना करता हुआ पृथ्वी पर औंधा पड़ा था, उसे यह आकाश-वाणी सुनाई दी—'अजीगर्त, अपने घर को लौट जा। परमेश्वर ने तेरी प्रार्थना को सुन लिया है, और तुझ पर दया दिखाई है।'

"जब वह घर की ओर वापस आ रहा था, तब उसकी भार्या, हर्ष में भरी हुई, उसके स्वागत के लिये दौड़ी हुई आई। उसने चिरकाल से उसे इस प्रकार प्रसन्न नहीं देखा था, इसलिये उसने उसके असाधारण परिताप का कारण पूछा।

"पार्वती बोली—'तुम्हारा अनुपस्थिति में एक मनुष्य, जो थकान से चूर दिखाई देता था, हमारे बरांडे के नीचे विश्राम करने आया था। मैंने उसे शुद्ध जल, भात और घी दिया, जैसा हम अतिथियों को दिया करते हैं। खा चुकने पर जब वह चलने लगा, तो उसने मुझसे कहा—तेरा हृदय खिन्न और तेरे नेत्र अश्रुओं से मलिन हैं। तू आनंद मना; क्योंकि तू शीघ्र ही गर्भवती होकर एक पुत्र को जन्म देगी। उसका नाम तू भिक्षाशिन् या भिक्षा का पुरस्कार (Viashagagana) रखना। वह तेरे पति का प्रेम तुझसे बनाए रक्खेगा, और अपने वंश की शोभा होगा।'

"फिर अजीगर्त ने अपने साथ जो घटना घटी थी, वह कह सुनाई। इस पर वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए; क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि हमारे दुखों का अंत हो गया है, और हम एक दूसरे से जुदा होने को विवश न होंगे।

"जब रात हुई, अजीगर्त अपने आपको सुवासित करके, और अपने अंगों में कुंकुम लगाकर पार्वती के पास गया; क्योंकि वह उस समय अनुकूल ऋतु में थी। उसके गर्भ ठहर गया।

"बालक के जन्म पर संबंधियों, मित्रों और सेवकों, सबने मिलकर आनंद मनाया।

"केवल पावक ही एक ऐसा था, जिसने इसमें सहायता न दी; क्योंकि वह संसार के लिये मर चुका था, केवल ईश्वर-चिंतन में ही जीता था।

"बालक का नाम, जैसा कि कहा गया था, भिक्षाकशिन् (Viashagagana) अथवा भिक्षाशिन् रक्खा गया।

"पीछे से पार्वती के अनेक कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे अपने सौंदर्य के कारण घर की शोभा थीं। पर परमेश्वर ने उसे और पुत्र नहीं दिया।

"जब बालक ने बारहवें वर्ष में प्रवेश किया, और रूप तथा बल में सबसे बढ़ गया, तब उसके पिता ने उसे अपने साथ ले जाकर उसी पर्वत पर स्मारक यज्ञ करने का निश्चय किया, जहाँ परमेश्वर ने पहले उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया था।

"पहले की भाँति, अपने रेला से एक निर्दोष और लाल बालों-वाली जवान बकरी चुनकर अजीगर्त, पुत्र को साथ ले, चल पड़ा।

"जब वे एक घने जंगल को नाँघ रहे थे, उन्हें घोंसले से गिर-कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ फ़ाख़्ता का एक पंखहीन बच्चा मिला। इसे खाने के लिये एक सर्प दौड़ा आ रहा था।

"भिक्षाशिन् साँप पर झपटा, और डंडे से उसे मारकर उसने फ़ाख़्ता के बच्चे को घोसले में रख दिया। बच्चे की मा उसके सिर के गिर्द चक्कर लगाती हुई अपनी हर्ष-भरी ध्वनि से उसको धन्यवाद देने लगी।

"अपने पुत्र को शूर-वीर और धार्मिक देखकर अजीगर्त बड़ा प्रसन्न हुआ।

"पर्वत पर पहुँचकर वे यज्ञ के लिये समिधाएँ इकट्ठी करने लगे। उधर वह बकरी, जिसे उन्होंने एक पेड़ में बाँध दिया था, रस्सी तुड़ाकर भाग गई।

"तब अजीगर्त बोला—'देखो, समिधाएँ तो हैं, पर बलि नहीं रही।' अब वे सोचने लगे कि क्या करें; क्योंकि वे बस्ती से बहुत दूर थे। परंतु फिर भी वह अपने व्रत को पूरा किए विना नहीं लौटना चाहता था।

"वह अपने पुत्र से बोला—'जिस जगह तुमने घोसले में फ़ाख़्ता का बच्चा रक्खा था, वहाँ जाकर उस बच्चे को उठा लाओ; बकरी की जगह हम उसी की बलि देंगे।'

"भिक्षाशिन् अपने पिता की आज्ञा का पालन करने ही वाला था कि इतने में ब्रह्मा का सकोप शब्द सुनाई दिया—'तू अपने पुत्र को उस फ़ाख़्ता की तलाश मे, जिसको उसने बचाया था, उसे अपनी छोड़ी हुई बकरी के स्थान में बलिदान करने के लिये, क्यों भेजता है? क्या तूने उस समय उसे साँप से इसीलिये बचाया था कि तू आप उसके दुष्कर्म का अनुकरण करे? ऐसा बलिदान मुझे पसंद नहीं।

'जो अपने किए हुए पुण्य को नष्ट करता है, वह इस योग्य नहीं रह जाता कि मेरी उपासना कर सके।

'हे अजीगर्त, अपने किए हुए पहले अपराध को देख। इसको मिटाने के लिये तू इस यज्ञ में मेरे दिए हुए पुत्र की बलि दे—यही मेरी इच्छा है।'

"इन शब्दों को सुनते ही अजीगर्त के मन को घोर परिताप ने घेर लिया। वह रेत पर बैठ गया, उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

"वह रोकर कहने लगा—'हे पार्वती, जब तू मुझे अकेला घर आते देखेगी, तब क्या कहेगी, और जब तू मुझसे अपना जेठा पुत्र माँगेगी, तब मैं क्या उत्तर दे सकूँगा?'

"इस प्रकार वह सायंकाल तक विलाप करता रहा, और उस दुःसह यज्ञ को संपन्न करने का निश्चय न कर सका। फिर भी उसे परमेश्वर की आज्ञा से मुँह मोड़ने का स्वप्न तक न हुआ। भिक्षाशिन् छोटी आयु का होते हुए भी दृढ़ था, और अपने पिता को ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने के लिये प्रोत्साहित कर रहा था।

"समिधाएँ इकट्ठी कर चुकने पर उसने काँपते हुए हाथ से अपने पुत्र ही को बाँधा। वह यज्ञ की छुरी को हाथ में लिए उसका गला

काटने ही को था कि फ़ाख़्ता के रूप में विष्णु आया, और बालक के सिर पर बैठ गया।

"वह बोला—'हे अजीगर्त, बलि के बंधन काट डाल, और चुनी हुई समिधाओं को फेंक दे। परमेश्वर तेरे आज्ञापालन से संतुष्ट है। उसने तेरे पुत्र की निर्भीकता के कारण उस पर अनुग्रह किया है। वह दीर्घायु होगा; क्योंकि उसी के यहाँ वह कुमारी जन्म लेगी, जिसे दिव्य बीज से गर्भ रहेगा।'

"अजीगर्त और उसके पुत्र ने परमेश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिए। तब वे, रात हो जाने के कारण, घर की ओर वापस चल पड़े। मार्ग में वे इन अद्भुत घटनाओं पर बातचीत करते आते थे, और उनके हृदय में परमेश्वर की भद्रता पर पूर्ण विश्वास था *।"

(रामसरियर-कृत भविष्य-कथन)

ब्रह्मा और सूर्य के दो सूक्त उपाख्यान में नहीं पाए जाते। उसमें केवल पर्वत पर अजीगर्त की प्रार्थना का ही वर्णन है। परंतु मैंने इस अनुवाद के उन दोनों सूक्तों को ऋग्वेद और सामवेद से ले लिया है, और आशा है, पाठक मेरे इस कार्य को पसंद करेंगे।

अजीगर्त के यज्ञ का ऐसा ही पुरातन वृत्तांत है। जब मुझे पहले-पहल इसका परिचय मिला, तो मैं गंभीर आश्चर्य-सागर में डूब गया।

इसके अस्तित्व का पहलेपहल पता लगाने के लिये मैं विलियम जोंस-नामक प्राग्देशीय भाषा पंडित का आभारी हूँ। एक दिन जब मैं उनका किया हुआ मनु का अनुवाद पढ़ रहा था, एक टिप्पणी के कारण मुझे कुल्लूक भट्ट की टीका देखनी पड़ी। उसमें मुझे पिता द्वारा पुत्र के इस बलिदान और परमेश्वर के इसके लिये स्वयं ही आज्ञा देने

* मालूम होता है पूर्वीय भाषाओं के दूसरे पंडितों ने इस अतीव मनोरंजक उपाख्यान के न माहात्म्य को समझा है और न आशय ही को।

के अनंतर फिर उसे रोक देने का संकेत मिला। तब से ही मैंने इस घटना के मूल-वृत्तांत को हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के दुस्तर पृष्ठों में से निकालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परंतु इस कार्य में मुझे सफलता होना असंभव था, यदि एक ब्राह्मण की कृपा न होती। उससे मैं संस्कृत पढ़ा करता था। उसने मेरी प्रार्थना पर अपने देवालय के पुस्तकालय से रामस्वरियर-नामक धर्म-पंडित के ग्रंथ मुझे ला दिए। उनसे इस ग्रंथ की तैयारी में मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली है।

जब ऐसे प्रमाण सविस्तर समष्टि में एकमत हैं, तो क्या इस अनुमान को रोकना कि सारे पुरातन ऐतिह्यों का मूल एक ही था और उनकी आधार-रचना को सुदूर पूर्व का पुराण-कथाओं में ढूँढ़ना चाहिए, साक्षी के विरुद्ध न होगा?

मैं इस बात को जितनी बार कहूँ, उतना ही थोड़ा है कि यदि यह कहना सत्य और युक्तिसंगत है कि सभी आधुनिक जातियों ने दार्शनिक और धार्मिक प्रकाश के एक ही स्रोत से ज्ञानामृत पान किया है, तो यह समझना कैसे अयुक्तिसिद्ध ठहर सकता है कि प्राचीन काल की सभी जातियों ने कुछ परिवर्तनों के अनंतर, अपने अग्रगामियों के ही विश्वासों को ग्रहण किया था? कुलपति अजीगर्त का यह उपाख्यान मूसा के हाथ में पड़कर इबराहीम का आख्यान बन गया।

# आठवाँ अध्याय

अवतार—कृष्ण के आगमन की भविष्यद्वाणियाँ

मेरा यह कहना कि अवतारवाद, अर्थात् अपने जीवों के उद्धार के लिये परमेश्वर का पृथ्वी पर आना, हिंदू-धर्म का आधार है, संभवतः किसी के लिये भी नई बात न होगा। जिन लोगों ने भारत पर कोई भी पुस्तक कभी पढ़ी है, उन सबको यह बात यथेष्ट रूप से ज्ञात है। इससे मुझे इस धर्म-विश्वास में उस देश की पूर्वता का समर्थन करना पूर्ण रूप से सुगम हो जाता है।

परंतु यदि इस सचाई को साधारणतः सब कोई स्वीकार करते मालूम होते हैं, यदि इस बात से कोई इनकार नहीं करता कि भारत के अपने अवतार हैं, तो इसका कारण इन ऐतिह्यों पर हँसी उड़ाने और मनुष्यों में ब्रह्म के विविध अवतारों को केवल अनर्थक कुसंस्कार प्रकट करने की प्रवृत्ति के सिवा और कुछ नहीं।

इन मतों के स्रोत को मालूम करना हमारे लिये सुगम है। ये मत पक्षपात-शून्य नहीं हो सकते; क्योंकि वे उन सब प्रकार की पूजन-विधियों के ईसाई प्रचारकों से निकले हैं, जिनको भारत में उसी प्रकार के विश्वासों का मुक़ाबला करना पड़ा, जिनका वे प्रचार करने आए थे।

इस काम के लिये उन्होंने ठीक उन्हीं साधनों से काम लिया, जिनका मैं वर्णन करता हूँ। हिंदुओं के धार्मिक सिद्धांतों का उनके धर्म की विशेष पुस्तक से अध्ययन करने की जगह, जहाँ वे युद्ध नहीं, वरन् उच्च शिक्षाएँ देखते, वे काव्य, कथा और वीर-इतिहास में लग गए, ताकि बड़े आराम से ब्रह्म, उसके अवतारों और त्रिमूर्तियों की हँसी उड़ा सकें।

एक हिंदू प्रचारक यदि योरप में आकर बाइबिल के आचरण और ख्रीष्ट की उच्च शिक्षाओं को छोड़कर हमारे धर्म का अध्ययन, जान-बूझकर और आग्रहपूर्वक, मध्य काल के धार्मिक नाटकों और प्रहसनों से ही करे, जिनमें पिता परमेश्वर रंगमंच पर आकर शैतान का गला पकड़ता है, जिनमें कुमारी मरियम के साथ, ईसा के साथ, प्रेरितों के साथ और संतों के साथ अतीव अधर्म, प्रत्युत अनेक बार अश्लील असंगतियाँ लगाई गई हैं, तो वह भी ठीक इन पादरियों का-सा ही काम कर सकता है।

पूर्व में, जो कल्पना और कविता का प्रदेश है, धर्म का अध्ययन कल्पित कथाओं की पुस्तकों से नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह कल्पना फ़रिश्तों, दिव्य दूतों, संतों और पिशाचों की संख्या को बढ़ाकर अनंत बना देती है, और मनुष्यों तथा ईश्वर के कार्यों में उन्हें सदा घुसेड़ती रहती है।

हमें ब्राह्मणों, पुरोहितों से पढ़ना चाहिए, उनकी धर्म-पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए और उन सब कुसंस्कारों पर, जिनका संबंध योरप भारत के साथ बताता है, तथा कुछ स्वार्थी मनुष्यों के स्वार्थी आवेदन पर हँस देना चाहिए।

हिंदुओं के विश्वासानुसार, अब तक पृथ्वी पर परमेश्वर के नौ अवतार हो चुके हैं। पहले आठ तो परमात्मा के केवल क्षुद्र आभास थे, जो आदम और हेवा ( Heva ) के साथ, उनके पतन के बाद, की हुई परित्राता की प्रतिज्ञा को पुनः आरंभ करने के लिये आए थे। केवल नवाँ ही अवतार है, अर्थात् ब्रह्म की भविष्यद्वाणी की सिद्धि है।

यह अवतार कुमारी देवांगी ( Devanaguy ) का पुत्र कृष्ण है।

उसके आगमन की घोषणा करनेवाले कुछ भविष्य-कथन, जो

रामसरियर ने अथर्व, वेदांग और वेदांत से संग्रह किए हैं, नीचे दिए जाते हैं।

इन विचित्र धार्मिक कविताओं की, जो रूप और विषय में प्रायः एक दूसरे से मिलती हैं, हम केवल थोड़ी-सी संख्या ही देते हैं।

अथर्व के अवतरण—

"उसके सिर पर प्रकाश का मुकुट होगा, वह परमात्मा से निकला हुआ विशुद्ध रस, सब भूतों का सार होगा; गंगा का जल अपने स्रोत से लेकर समुद्र तक थरथराने लगेगा, जिस प्रकार कि गर्भवती स्त्री पेट में बच्चे की पहली उछल-कूद का अनुभव करती है।

"उसके आगमन पर पृथ्वी और आकाश आनंद मनावेंगे, उसके तेज के सामने तारे फीके पड़ जायँगे, सूर्य की किरणें उसके प्रकाश के सामने मंद पड़ जायँगी। उसकी असीम दृष्टि के लिये पृथ्वी बहुत संकीर्ण होगी, और इतनी छोटी होगी कि वह उसमें समा न सकेगा।

"क्योंकि वह अनंत है, वह शक्ति है, वह प्रज्ञा है, वह सौंदर्य है, वह सब कुछ है, और सबमें है।

"जब वह आवेगा, तब सभी जीव, सभी पुष्प, सभी पेड़, सभी वृक्ष, स्त्रियाँ, पुरुष, बालक, दास, मस्त हाथी, सिंह, चीता, सफ़ेद पंखोंवाला हंस, सारे पक्षी, सारे कृमि, सभी मछलियाँ, जल में स्थल में, और आकाश में, मिलकर हर्ष का गीत गावेंगी; क्योंकि वह सब प्राणियों और सारे चराचर जगत् का स्वामी है।

"जब वह आवेगा, तब निंद्य राक्षस गहरे नरक में जाकर शरण लेंगे।

"उसके आगमन से घृणित पिशाच शव की हड्डियों को चबाना छोड़ देंगे।

"उसके आने से सभी अपवित्र जीव भयभीत हो जायँगे; अपशकुन-

सूचक गिद्ध और मलिन गीदड़ अपने पोषण के लिये कहीं सर्वांगली वस्तुएँ न पावेंगे, न उन्हें छिपने के लिये निर्जन स्थान मिलेंगे।

"उसके आने से जीवन मृत्यु को धमकावेगा और प्रलय-काल अपने कुटिल कार्यों को स्थगित कर देगा। वह सभी प्राणियों में नव जीवन का संचार करेगा, सभी देहधारियों का पुनरुद्धार और सभी आत्माओं का सुधार करेगा।

"वह मधु और अमृत से भी बढ़कर मधुर, दोष-रहित मेमने और कुमारी के अधरों से बढ़कर पवित्र होगा। सभी हृदय प्रेम में बह जायँगे। वह गर्भ धन्य है, जो उसे धारण करेगा! वे कान धन्य हैं, जो उसके मुख से निकले हुए पहले शब्दों को सुनेंगे! वह भूमि धन्य, जिस पर उसके पैर पड़ेंगे! वे स्तन धन्य हैं, जिनसे उसका दिव्य मुख दुग्धपान करेगा! उन्हीं के दुग्ध के प्रताप से सभी मनुष्य पवित्र होंगे।

"उत्तर से दक्षिण तक, सूर्योदय से अस्त तक, वह दिन उल्लास का दिन होगा; क्योंकि परमेश्वर अपनी महिमा को प्रकट करेगा, अपनी शक्ति को प्रसिद्ध करेगा, और अपने जीवों के साथ मेल-मिलाप करेगा।"

मैंने केवल नक़ल कर दिया है—टीका-टिप्पणी करने से भविष्य-द्रष्टा के प्रोत्साहित शब्द केवल बलहीन हो जायँगे, और इस कारण, इन पृष्ठों पर पीछे से क्या-क्या विचार उठेंगे?

इस बात को समझने, मिलान करने और जाँचने में पाठक हमारे समान ही समर्थ हैं।

वेदांग से अवतरण—

"स्त्री के गर्भ में ही दिव्य तेज की किरण मनुष्य-रूप धारण करेगी, और वह किसी भी अपवित्र संसर्ग से दूषित न होने के कारण कुमारी रहते हुए भी संतान को जन्म देगी।"

पुरूरव ( Pourourava ) का अवतरण—

"मेमना, भेड़ और मेंढ़े से, लेला बकरी और बकरे से और बच्चा स्त्री और पुरुष से उत्पन्न होता है; परंतु दिव्य परम आत्मा एक कुमारी के यहाँ जन्म लेगा, जिसको विष्णु क विचार से गर्भ रहेगा।"

नारद का अवतरण—

"यक्ष, राक्षस और नाग काँप रहे हैं; क्योंकि वह दिन आ रहा है, जब वह पुरुष जन्म लेगा, जो पृथ्वी पर से उनके शासन की समाप्ति कर डालेगा।"

पौलस्त्य का अवतरण—

"आकाश में, पवन में और पृथ्वी पर विचित्र और भीषण शब्द होंगे; गुह्य स्वर वनों में बैठे पवित्र ऋषियों को चेतावनी देंगे; गंधर्व अपने ध्रुव पद गावेंगे; सागर के जल अपनी गहरी खाड़ियों में हर्ष के साथ उछलेंगे; समीर कुसुम-सुगंध से लद जायगा; दिव्य शिशु की प्रथम चिल्लाहट पर सारा जगत अपने स्वामी को पहचान लेगा।"

वेदांत से अवतरण—

"कलियुग ( जगत् की वास्तविक आयु। संसार, हिंदुओं के अनुसार ईसाई संवत् से साढ़े तीन सहस्र वर्ष पहले आरंभ हुआ था ) के आरंभ में कुमारी का पुत्र उत्पन्न होगा।"

परंतु मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध इस हिंदू परित्राता के आगमन की सूचना देनेवाली भविष्यद्वाणियों के ये थोड़े-से अवतरण देकर ही चुप हो जाता हूँ। इसका कारण यह नहीं कि मैं और अवतरण देने में असमर्थ हूँ; क्योंकि धर्म-पुस्तकें इस विषय के प्रमाणों से भरी पड़ी हैं। परंतु बात यह है कि इस ग्रंथ की कल्पना मुझे कौतुक-मात्र को पूर्ण रूप से शांत करने की आज्ञा नहीं देती।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, जिन अवतरणों को मैं दूँगा, उनमें से बहुत-से एक दूसरे से इतना मिलते-जुलते हैं कि

उनकी संख्या की वृद्धि मनोरंजकता को बढ़ाने के स्थान में उसे नष्ट कर डालेगी।

वेदांत बताता है कि कृष्णावतार कलियुग, अर्थात् जगत् की यथार्थ आयु, के आद्य समयों में होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि इस वाक्य की व्याख्या का प्रयोजन है।

हिंदू लोग जगत् की संस्थिति के काल को चार युगों में बाँटते हैं। ये चार युग महाप्रलय के पहले चार-चार बार आते हैं।

इनमें से पहले का नाम कृतयुग है। इसकी संस्थिति तीन सौ साठ दिनों के सत्रह लाख और अठाईस सहस्र मानव-वर्षों की है।

दूसरे का नाम त्रेता-युग है। इसकी संस्थिति बारह लाख छियानबे हज़ार मानव वर्षों की है।

तीसरे का नाम द्वापर-युग है। इसकी संस्थिति आठ लाख और चौसठ हज़ार मानव-वर्षों की है।

चौथा कलि-युग चार लाख और बत्तीस हज़ार मानव-वर्षों का है।

इस अंतिम युग के, जो संसार की वास्तविक आयु है, प्रायः साढ़े चार हज़ार वर्ष बीत चुके हैं।

सर विलियम जोंस अपने 'एशियाई अध्ययन' में इसमें संदेह नहीं करता कि ग्रीक और रोमन लोगों ने जो समय को चार कालों —स्वर्ण-काल, रजत-काल, पित्तल-काल और लोह-काल—में बाँटा है, यह हिंदू ऐतिह्य का अभिज्ञान-मात्र है, और यह उन जातियों के मूल के विषय में मेरे विचारों का एक और पक्ष-पोषण प्रमाण है।

## नवाँ अध्याय

भगवद्‌गीता और पुराणों के अनुसार कुमारी देवांगी ( Devanaguy ) की उत्पत्ति

अब हम इस अद्भुत हिंदू-अवतार पर आ पहुँचे हैं। यह हमारी पृथ्वी के धार्मिक अवतारों में सबसे पहला है। इसी ने सबसे पहले मनुष्यों में उन सनातन सचाइयों का फिर से प्रचार किया था, जो परमेश्वर ने मानव-मन पर अंकित की हैं, और जो निरंकुशता और असहिष्णुता के झगड़ों से बहुत बार अंधकार में ढक जाती हैं।

हम इस समय अत्यंत निर्विवाद हिंदू-प्रमाणों के अनुसार कुमारी देवांगी और उसके दिव्य पुत्र का केवल वर्णन ही करेंगे। सब प्रकार की टीका-टिप्पणी और तुलना को किसी दूसरे समय के लिये रख छोड़ेंगे।

राजा की बहन, अर्थात् बच्चे की माता को प्रसूति से कुछ दिन पहले एक स्वप्न हुआ, जिसमें उसे विष्णु का सोलहों कलाओं से पूर्ण रूप दिखाई दिया। उसने उस पर उसके भावी बच्चे के भविष्य-भाग्य का प्रकाश किया।

विष्णु ने माता से कहा—"लड़की का नाम देवांगी ( संस्कृत में, परमेश्वर की या परमेश्वर के लिये बनाई हुई ) रखना; क्योंकि उसी के द्वारा परमेश्वर की कल्पनाएँ संपन्न होंगी। उसे मांस कभी न खिलाना—केवल चावल, मधु, और दूध ही से उसे पालना। सबसे बढ़कर बात यह है कि विवाह द्वारा उसका किसी पुरुष से मिलाप न कराना। वह पुरुष, और विवाह में उसे सहायता देनेवाले

सभी लोग, विवाह-संस्कार के संपन्न होने के पूर्व ही मर जायँगे।"

छोटी लड़की के जन्म लेने पर, विष्णु के आज्ञानुसार, उसका नाम देवांगा रक्खा गया; उसकी माता, इस डर से कि मैं अपने भाई के राजप्रासाद में रहते हुए परमेश्वर के आदेशों का पालन न कर सकूँगी, क्योंकि वह एक दुष्टात्मा है, लड़की को नद-नामक अपने एक संबंधी के घर ले गई। नंद गंगा-तीरवर्ती एक छोटे-से गाँव का स्वामी था, और अपने सद्गुणों के लिये प्रसिद्ध था। देवांगा ने अपने भाई से कहा कि मैं गंगा की यात्रा के लिये जा रही हूँ। भाई ने लोगों की कुड़कुड़ाहट और शिकायत के डर से उसके संकल्पों का विरोध करने का साहस न किया।

फिर भी उसने अपना असंतोष प्रकट करने के लिये बहन के साथ बहुत ही सामान्य अर्दली दिए, अर्थात् केवल दो हाथी भेजे, जो एक नीच कुलोत्पन्न स्त्री के लिये भी मुश्किल से पर्याप्त थे।

सायंकाल लक्ष्मी ( Lakmy ) ने अभी अपनी यात्रा आरंभ ही की थी कि उसकी रक्षा के लिये एक जुलूस उसकी अर्दली में आ मिला। इस जुलूस में सुनहली झूलों से सजे हुए एक सौ से अधिक हाथी थे, जिनको बहुमूल्य वस्त्रधारी मनुष्य हाँक रहे थे। इस समय रात हो जाने के कारण उनके पथप्रदर्शन के लिये वायु में अग्नि का एक स्तंभ प्रकट हुआ, और एक गुह्य संगीत का शब्द आकाश से आता प्रतीत होने लगा।

जिन लोगों ने इस आश्चर्य प्रस्थान में साहाय्य दिया था, वे सब समझ गए कि यह कोई साधारण प्रस्थान नहीं, बच्चे और उसकी माता की परमेश्वर रक्षा कर रहा है।

मथुरा ( Madura ) के राजा को बहुत भय हुआ। उसने राक्षसों के राजा के कहने से, जो विष्णु के उद्देश्यों को निष्फल

करना चाहता था, एक बग़ल के रास्ते से सशस्त्र सेना भेजी, ताकि वह उस जुलूस को तितर-बितर कर दे, और उसकी बहन को राज-भवन में वापस ले आवे।

वह उससे यह कहना चाहता था—"देखिए, मार्ग सुरक्षित नहीं है, और तुम डर में पड़े बिना इतनी लंबी यात्रा नहीं कर सकतीं; अपने बदले में किसी ऋषि को भेज दो, वह तुम्हारे व्रत को पूरा कर आवेगा।"

परंतु उसके भेजे हुए सैनिक अभी लक्ष्मी ( Lakmi? ) के जुलूस के सामने पहुँचे ही थे कि ईश्वरीय भाव से ज्ञानवान् होकर वे उसी के साथ मिल गए, और रास्ते में माता तथा बच्चे की रक्षा करने लगे।

अपने दुष्कर्म की विफलता का समाचार सुन राजा क्रोध से झुँझला उठा। उसी रात उसे स्वप्न हुआ कि देवांगी के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न होगा, जो मुझे सिंहासन से उतारकर मेरे सारे अपराधों का दंड देगा।

तब उसने अपने पापमय संकल्पों को अपने हृदय में छिपा रखने की सोची, और अपने को विश्वास दिलाया कि यदि मेरी बहन न भी आई, तो मैं अपनी भानजी को तो फुसलाकर सुगमता से ही अपने यहाँ बुला लूँगा। फिर उसको मार डालना और अपनी मृत्यु से बच जाना मेरे लिये असंभव न होगा।

अपने संकल्प को और भी उत्तम रीति से छिपाने के लिये उसने अनेक दूत उपहारों से लादकर लक्ष्मी के पास भेजे, ताकि वह उन्हें अपने संबंधी नंद को भेंट करे।

लक्ष्मी की गंगा-यात्रा एक विजयसूचक यात्रा थी; जनता सब ओर से उसके मार्ग पर एकत्र होकर आपस में कहती थी—"ऐसे तेजोमय जुलूसवाली यह कौन रानी है? यह अवश्य ही किसी

चक्रवर्ती राजा की पत्नी है। और लोग सब प्रांतों से उसके मार्ग में बिखेरने के लिये फूल, और फल बहुमूल्य उपहार लाते थे।

"परंतु जो चीज़ लोगों को सबसे अधिक आश्चर्य में डालती थी, वह नन्हा-सी देवांगा का सौंदर्य था : देवांगी का मुख-मंडल, उसके कुछ दिन की नन्हा-सी बच्ची होने पर भी, एक स्त्री के समान गंभीर था, और ऐसा जान पडता था कि जो घटनाएँ उसके इर्द-गिर्द हो रही हैं, वह उनको और उस प्रशंसा को, जो उसकी हो रही है, समझ रही है।

"यह यात्रा साठ दिन तक जारी रही। इस काल में अग्नि-स्तंभ प्रति दिन सूर्य के साथ अंतर्द्धान होकर रात्रि को फिर प्रकट हो जाता था। जब तक यह जुलूस पहुँच न गया, यह बराबर उसे मार्ग दिखाता रहा। और, सबसे विस्मयोत्पादक बात यह थी कि बाघ, चीते और जंगली हाथी, सामान्यतः मनुष्य के आगमन से डरकर भाग जाने की जगह लक्ष्मी के जुलूस को देखने के लिये हौले-हौले पास आ जाते थे, और उनकी चिंघाड़ें बुलबुल के गीतों के सदृश कोमल हो जाती थीं, ताकि बच्चा कहीं डर न जाय।

"विष्णु के एक दूत ने नंद को उसके संबंधी के आने का समाचार पहले ही दे दिया था, इसलिये वह अपने गाँव से चलकर दो दिन के रास्ते पर उसे लेने आया। उसके साथ उसके सभी नौकर-चाकर भी थे। देवांगी को देखते ही उसने उसे माता कहकर प्रणाम किया। जो लोग इस शब्द को सुनकर आश्चर्यान्वित हो गए थे, उन सबसे उसने कहा— यह हम सबकी माता होगी; क्योंकि इसके गर्भ से वह आत्मा जन्म लेगी, जो हम सबको पुनर्जीवित करेगी।"

# दसवाँ अध्याय

देवांगा की बाल्यावस्था—उसकी माता का देहांत – मथुरा (Madura) में उसका प्रत्यागमन

नंद के घर में देवांगी के पहले वर्ष बड़े आराम से बीते। मथुरा के प्रजापीड़क राजा ने उसे फुसलाने का कुछ भी यत्न न किया। इसके विपरीत वह प्रत्येक अवसर पर उसे उपहार भेजता, और लक्ष्मी (लकमी) और उसकी पुत्री को आतिथ्य-दान देने के लिये नंद का धन्यवाद करता। इससे सभी लोग यह समझने लगे कि ईश्वर की ज्योति उसे छू गई है, और वह पुण्यात्मा बन गया है।

इसी बीच में बालिका कुमारी अपनी सखियों में खेलती हुई बड़ी हो गई, और सौंदर्य तथा चातुर्य में उन सबसे बढ़ गई। यद्यपि वह अभी केवल छः ही वर्ष की थी, परंतु उससे बढ़कर कोई भी दूसरा गृह-कार्यों को चलाना, रुई और ऊन कातना और सारे परिवार को सुखी और समृद्ध रखना न जानता था।

वह एकांत ही पसंद करती थी—ईश्वर के ध्यान में मग्न रहना ही उसे भाता था। परमेश्वर भी उस पर सुखों की वर्षा करते और उसके साथ भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का उसे दिव्य ज्ञान कराते रहते थे।

एक दिन वह बहुत-सी स्त्रियों के साथ गंगा में स्नान कर रही थी कि एक भीमकाय पक्षी उस पर मँडलाता हुआ आया, और उसने ऊँचे से उतरकर उसके सिर पर कमल-फूलों का मुकुट रख दिया।

यह देख सभी लोग विस्मित रह गए, और उन्होंने समझ लिया कि परमेश्वर ने इस बच्चे को महान् कार्य कराने के लिये बनाया है।

इसी बीच में थोड़ी-सी बीमारी के उपरांत लक्ष्मी का शरीर छूट गया, और देवांगा को स्वप्न हुआ कि मेरी माता को ब्रह्म-धाम में स्थान मिल गया है; क्योंकि उसका जीवन सदा शुद्ध और पवित्र रहा है, और उसका क्रिया-कर्म कराने की कोई आवश्यकता नहीं।

देवांगी ( Devangy ), जिसका शरीर पृथ्वी पर परंतु विचार आकाश में थे, बिलकुल न रोई, और न लोकाचार की रीति से ही उसने शोक किया; क्योंकि, जैसा धर्म-ग्रंथों में बताया गया है, वह मृत्यु को नवीन जीवन में जन्म समझती थी।

अपनी भानजी की विरक्ति का समाचार सुनकर मथुरा के प्रजा-पीड़क राजा ने इसे अपने विश्वास घातक संकल्पों को पूरा करने का अच्छा मौक़ा समझा। उसने दूतों के द्वारा नंद के पास बहुत-से उपहार भेजकर प्रार्थना की कि आप छोटी देवांगा को मुझे दे दीजिए; क्योंकि उसकी माता के मर जाने से अब मैं ही उसका निकटतम संबंधी हूँ।

नंद इस प्रतिज्ञा से बहुत दुःखित हुआ; क्योंकि वह बालिका पर अपनी संतान के सदृश प्रेम करता था, और उन भविष्य-कथनों को अपने मन से नहीं निकाल सकता था, जो देवांगा के भविष्य को उसके मामा के राजप्रासाद में घोर तमसावृत बताते थे।

परंतु प्रार्थना न्यायसंगत थी। इसलिये उसने इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना सब उस बालिका पर छोड़ दिया।

देवांगी जानती थी कि मुझे भाग्य ही मथुरा में बुला रहा है। इसलिये वह नंद के परिवार को कोटि-कोटि आशिस् दे अपने मामा के भेजे हुए दूतों के साथ चल पड़ी।

नंद ने कहा—स्मरण रखना, यदि विपत्ति के कारण तुम्हें यहाँ आना पड़े, तो निःसंकोच होकर चली आना। हमें तुम्हारे आने से बड़ी प्रसन्नता होगी।

देवांगी के रक्षक के भविष्य-कथन झूठे न थे। वह अपने मामा

के हाथ में पड़ी ही थी कि उसने अपना बनावटी वेष उतारकर, उसे एक कोट में क़ैद करके उसके द्वार को ईंटों की दीवार से बंद कर दिया, ताकि उसके भाग जाने की कोई संभावना ही न रहे।

परंतु कुमारी को इससे दुःख नहीं हुआ। उसे परमेश्वर की ओर से पहले ही इस बात का ज्ञान हो चुका था कि मेरे साथ क्या कुछ होनेवाला है। वह पूर्ण विश्वास के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी, जो परमेश्वर ने अपने स्वर्गीय संकल्पों को पूरा करने के लिये स्थिर कर रक्खी थी।

मथुरा का प्रजापीड़क राजा भी शांत न था; एक भीषण दुर्भिक्ष ने उसके राज्य को जनशून्य कर दिया। मृत्यु ने एक-एक करके उसके बच्चे उससे छीन लिए, और वह अत्यंत घोर आपदा से निरंतर भयभीत रहने लगा।

बहुत दिन पहले उसे एक स्वप्न में मालूम हुआ था कि देवांगी से उत्पन्न होनेवाला पुत्र उसे राजसिंहासन से उतार देगा। अब उसने अपने किए हुए अनेक पापों पर, जिनके लिये परमेश्वर उसे घोर दंड भी दे चुका था, पश्चात्ताप करने के स्थान में अपनी भानजी को मारकर इस विषय में सर्वथा निश्चिंत हो जाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से उसने जल और भोजन में विष—अत्यंत विषमय पौदों का रस—मिलाकर देवांगी के लिये कारागार में भेजा था; परंतु वह यह असाधारण बात देखकर चौंक उठा कि न केवल वह बालिका मरी ही नहीं, वरन् उसे विष मालूम तक नहीं हुआ।

तब उसने उसे भोजन भेजना बंद कर दिया कि शायद भूख विष से भी अधिक बलवान् सिद्ध हो।

परंतु इसका कुछ फल न हुआ। देवांगी का स्वास्थ्य पुष्ट बना रहा, और बहुत बड़ी सावधानता के रखने पर भी यह जानना असंभव था

कि उसे किसी गुह्य रीति से भोजन मिलता है, अथवा केवल परमेश्वर की आत्मा ही उसके पोषण के लिये पर्याप्त है।

यह देखकर मथुरा के प्रजापीड़क राजा ने उसे मार डालने का विचार छोड़ दिया, और उसके कारागार के गिर्द एक मज़बूत पहरा बिठलाकर सिपाहियों को कड़ी ताकीद कर दी कि यदि देवांगी तुम्हारे पहरे से बचकर निकल गई, तो तुम्हें अतीव भीषण दंड दिया जायगा।

परंतु यह सब व्यर्थ हुआ; ये सब पूर्वोपाय पौलस्त्य की भविष्य-द्वाणी के पूरा होने में बाधा न दे सके।

"विष्णु की दिव्य आत्मा दीवारों में से लाँघकर अपनी परम प्रिया के साथ जा मिली।"

---

# ग्यारहवाँ अध्याय

ईश्वर की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई--कृष्ण का जन्म--मथुरा के प्रजापीड़क राजा का उपद्रव--कृष्ण-जन्म की रात को उत्पन्न होनेवाले सभी लड़कों की हत्या।

( भगवद्गीता तथा पुराणों के अनुसार )

एक दिन सायंकाल कुमारी उपासना में लगी हुई थी कि सहसा उसे स्वर्गीय गीत सुनाई पड़ा, उसका कारावास जगमगा उठा, और विष्णु ने अपने विराट् रूप में उसे दर्शन दिए। देवांगी को गंभीर आनंदोन्माद ने घेर लिया और ईश्वर की आत्मा द्वारा आच्छादित होकर उसे गर्भ हो गया।

गर्भ-धारण का समय उसके लिये निरंतर सम्मोहन का समय था; दिव्य शिशु अपनी माता को अनंत आनंद देता था, जिससे वह पृथ्वी, अपने कारावास, वरन् अपने अस्तित्व को भी भूल जाती थी।

जब देवांगी की प्रसूति की रात आई, और नव-जात शिशु पहली बार चिल्लाया, तब एक प्रचंड वायु ने कारागार की भित्तियों में से एक रास्ता खोल दिया, और विष्णु का एक दूत कुमारी तथा उसके पुत्र को नंद के एक बाड़े में ले गया। यह बाड़ा मथुरा-प्रांत के अंतर्गत था।

नव-जात का नाम कृष्ण ( संस्कृत में, पवित्र ) रक्खा गया। ग्वालों को जब अपने भरोसे छोड़ी हुई चीज़ का पता लगा, तो उन्होंने बालक के सामने साष्टांग प्रणाम करने के उपरांत उसे अलंकृत किया।

परमेश्वर ने उसी रात नंद को स्वप्न में इस सारी घटना का ज्ञान

करा दिया। इस पर वह अपने नौकरों तथा अनेक अन्य धर्मात्माओं को साथ ले देवांगी और उसके पुत्र को ढूँढने और उन्हें मथुरा के प्रजापीड़क राजा की कूट युक्तियों से निकालने के लिये चल पड़ा।

राजा ने जब अपनी भानजी की प्रसूति और उसके अद्भुत रीति से भाग जाने का समाचार सुना, तब मारे क्रोध के वह आपे से बाहर हो गया। यह समझने कि परमेश्वर के विरुद्ध चेष्टा करने से कुछ न बनेगा, और उससे क्षमा-प्रार्थना करने की जगह उसने देवांगी के पुत्र का, जैसे भी बन सके, पीछा करने और उसकी प्राणहानि कर डालने का निश्चय किया, और वह यह आशा करने लगा कि इस प्रकार मैं उस मृत्यु से बच जाऊँगा, जिसकी मुझे धमकी दी गई है।

अब उसे और एक स्वप्न हुआ। इसमें उसे मिलनेवाले दंड के विषय में ठीक-ठीक चेतावनी दी गई। इस चेतावनी को पा उसने अपने राज्य के अंदर कृष्ण-जन्म की रात को उत्पन्न होनेवाले सभी लड़कों को मार डालने की आज्ञा दे दी; और उसे अपने मन में यह निश्चय हो गया कि इस प्रकार वह लड़का अवश्य मारा जायगा, जिसके विषय में मुझे यह खटका लग रहा है कि वह मुझे राजसिंहासन से उतार देगा।

राक्षस लोग बड़े उपायज्ञ थे, और विष्णु की कल्पनाओं का विरोध करना चाहते थे। उनके परामर्श से राजा ने सिपाहियों की एक सेना नंद के बाड़े को भेजी। जब यह सेना वहाँ पहुँची, तो नंद वहाँ उपस्थित न था। सेना को देख उसके नौकर देवांगी और उसके पुत्र की रक्षा के लिये शस्त्र बाँधने ही लगे थे कि अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य दिखाई दिया! बालक, जो माता का स्तन-पान कर रहा था, सहसा बढ़ने लगा। कुछ ही क्षण में वह दश वर्ष के बालक के समान हो गया और भेड़ों के रेवड़ में जाकर खेलने लगा।

सिपाही लोग उसके पास से लाँघ गए, और उन्हें उस पर कुछ

भी संदेह न हुआ। जब बाड़े में उनको उस आयु का कोई बालक न मिला, जिसको वे ढूँढ़ रहे थे, तब वे अपनी विफलता पर अपने भेजनेवाले के कोप से डरते हुए नगर को लौट आए।

इसके कुछ ही समय पीछे नंद अपनी सेना को लिए आ पहुँचा। उसने आते ही सबसे पहले अपने साथी धार्मिक लोगों सहित कुमारी तथा उसके दिव्य पुत्र के सामने साष्टांग प्रणाम किया। उनको इस स्थान में सुरक्षित न समझ वह उन्हें गंगा-तट पर ले गया। इस प्रकार देवांगी एक बार फिर अपने बाल्यकाल का निवास देखने में समर्थ हुई।

हम यहाँ कृष्ण के बाल-काल में होनेवाली अनेक घटनाओं का उल्लेख नहीं करेंगे। उसका बचपन उन लोगों के खड़े किए हुए असंख्य उत्पातों में व्यतीत हुआ, जिनकी उसकी मृत्यु से स्वार्थ-सिद्धि होती थी; परंतु वह इन सब युद्धों में, क्या मनुष्यों के साथ और क्या राक्षसों के साथ, विजयी हुआ।

जिन कवियों ने इन सब बातों पर अपनी कल्पना को दौड़ाया है, उन्होंने इनको अद्भुत घटनाओं और लोकोत्तर कर्मों से ऐसा परि-वेष्टित कर दिया है कि उनका वर्णन करने के लिये एक दर्जन पुस्तकें भी पर्याप्त न होंगी।

फिर भी ईश्वर के मानवावतार के विषय में एक ऐसी घटना है, जिस पर हम चुप नहीं रह सकते; क्योंकि भारत में जेजूइटों ( Jesuits ) ने इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कि कृष्ण दुराचारी था और उसके व्यभिचार के अनेक दृष्टांत मिलते हैं, इस घटना का उपयोग किया है।

एक दिन गंगा-तट पर घूमते हुए कृष्ण ने देखा कि कोई पचास युवती कन्याएँ स्नानार्थ दिगंबर दशा में खड़ी आपस में हँस और खेल रही हैं, और उनको इस बात का कुछ भी विचार नहीं कि किसी आने-जानेवाले की दृष्टि उन पर पड़ेगी।

बालक ने उनसे आपत्तिपूर्वक कहा कि तुम्हारा यह व्यापार अनुचित है। इस पर वे खिलखिलाकर हँसने और बालक के मुख पर जल फेकने लगीं।

यह देख कृष्ण ने उनके रेत पर बिखरे हुए कपड़ों को संकेत से इकट्ठा कराकर एक इमली के पेड़ के शिखर पर भेज दिया, जिससे जल से बाहर निकलने पर उनके लिये वस्त्र-धारण करना असंभव हो गया। तब अपने अपराध को जानकर युवती कन्याओं ने क्षमा-प्रार्थना की। कृष्ण ने उन्हें क्षमा तो कर दिया, पर उनसे यह प्रतिज्ञा ले ली कि इसके बाद वे गंगा में कभी परदे के बिना, नंगी, स्नान न किया करेंगी।

जेज़ूइट लोगों ने इस कथा को लेकर इसका अपने ढंग से वर्णन किया है, और यह प्रकट किया है कि कृष्ण ने युवती कन्याओं के वस्त्र उनको नग्नावस्था में दिल खोलकर देखने के उद्देश्य से ही उठाए थे।

यह कथन उनके कार्यक्रम के अनुकूल ही है, और हमें इस पर आश्चर्य न होना चाहिए। कृष्ण को स्वीकार करने की अनुमति न होने से वे अपने सामान्य शस्त्रों के साथ उसका सामना करते हैं। हम जानते हैं कि पाठ को बदलने में, और उस चीज़ को देख लेने में, जिसे कि दूसरा कोई व्यक्ति कभी नहीं ढूंढ़ सका, वे कितने चतुर हैं।

क्या हमने उनको आधुनिक इतिहास के कई एक अध्यायों को बिगाड़ते नहीं देखा? यदि उनके पूर्वीय प्रचार में भी यही भाव प्रधान हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

# बारहवाँ अध्याय

कृष्ण नवीन धर्म का प्रचार आरंभ करता है—उसके शिष्य—उसका अतीव व्यग्र सहाय अर्जुन—सरवस्त का मतांतर-स्वीकार

कृष्ण अभी मुश्किल से सोलह ही वर्ष का हुआ था कि वह अपनी माता तथा नंद को छोड़ नवीन सिद्धांत के प्रचार के उद्देश्य से भारत का पर्यटन करने लगा।

उसके जीवन की इस दूसरी अवस्था में हिंदू-कविता उसे क्या प्रजा और क्या राजा, दोनों के दुष्टभाव के विरुद्ध निरंतर युद्ध करते प्रकट करती है। वह असाधारण उत्पातों को दबाता है, उसे मार डालने के लिये भेजी हुई पूरी सेनाओं के विरुद्ध एकाकी युद्ध करता है, अपने मार्ग में लोकोत्तर कर्म बिखेरता है, मृतों को जिलाता है, कोढ़ियों को चंगा करता है, बहरों को कान और अंधों को आँख देता है, सब कहीं बलवानों से निर्बलों की और अत्याचारियों से दीनों की रक्षा करता है, और सबके आगे उच्च स्वर से विघोषित करता है कि मैं त्रिमूर्ति का दूसरा व्यक्ति विष्णु हूँ, और मनुष्यों को मूल-अपराध से मुक्ति दिलाने, पाप के भाव को निकाल देने और पुण्य का राज्य स्थापित करने के लिये पृथ्वी पर आया हूँ।

उसकी उच्च शिक्षाओं को सुनने के लिये लोगों के झुंड-के-झुंड उसके मार्ग पर एकत्र होते और उसका ईश्वर के समान पूजन करते हुए कहते थे—"वस्तुतः यही वह परित्राता है, जिसका वचन हमारे पूर्वजों के साथ हुआ था!"

हम इस सुधारक के जीवन की लोकोत्तर घटनाओं को एक ओर रख देते हैं। वे अद्भुत घटनाएँ, भिन्न-भिन्न युगों में पृथ्वी पर प्रादु-

भूत होनेवाले विविध भविष्यद्वक्ताओं के नामों के साथ लगाए हुए सारे कर्मों के सदृश, हमें केवल उपाख्यान से ही संबंध रखने-वाली प्रतीत होती हैं ।

जिस प्रकार मेरा दूसरे अवतारों, अथवा परमात्मा के दूसरे दूतों में विश्वास नहीं, जो अपने को बुद्ध या ज़रदुश्त, मनु या मूसा, खीष्ट या मुहम्मद कहते हैं, वैसे ही मैं लोकोत्तर कर्म करने-वाले तथा परमेश्वर कृष्ण को भी नहीं मानता । किंतु मैं कृष्ण को दार्शनिक और नीति-उपदेशक मानता हूँ । मैं उसकी शिक्षाओं की प्रशंसा करता हूँ । वे इतनी उच्च और पवित्र हैं कि पीछे से योरप में ईसाई धर्म के प्रवर्तक को उनका अनुकरण करना ही सबसे अच्छा जान पड़ा ।

कुछ समय तक प्रचार करने के उपरांत हिंदू-सुधारक ने इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि मैं अपने गिर्द ऐसे उत्साही और निर्भय शिष्य एकत्र करूँ, जिनको अपने सिद्धांतों की शिक्षा देने के पश्चात् मैं अपने कार्य को जारी रखने का भार सौंप सकूँ ।

जिन लोगों ने कुछ समय तक उसके देशाटनों में अतीव उद्योग-पूर्वक उसका साथ दिया था, उनमें से उसने अर्जुन को अलग चुन लिया । अर्जुन मथुरा के अन्यतम प्रधान कुल का एक युवक था, और अपना सर्वस्व छोड़कर उससे आ मिला था । कृष्ण ने उसे अपनी सारी गुप्त कल्पनाएँ बता दीं, और उसने भी अपना सारा जीवन उसकी सेवा में और उसके विचारों के फैलाने में व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की ।

शनैः-शनैः उनके साथ श्रद्धालु भक्तों का एक छोटा-सा दल मिल गया, और वह उनके परिश्रमों, उनके कष्टों और उनकी आस्तिकता में भाग लेने लगा ।

वे तप का जीवन व्यतीत करते थे, और हम समझते हैं कि कृष्ण

की साम्यकारिणी व्यवस्थाओं, उसके अपने आदर्श और उसके जीवन की पवित्रता ने लोगों को उनके आलस्य से जगा दिया था, समस्त भारत-मंडल में पुनर्जीवित करनेवाली जीवनी शक्ति की एक चिनगारी घूमने लगी थी, और अतीत के पक्षपाती अन्य राजा लोग, मथुरा के प्रजापीडक राजा के विवश करने पर, उनको अपने जालों में फँसाने और उन्हें दुःख देने का निरंतर यत्न कर रहे थे; क्योंकि वे उठती हुई लोकप्रिय लहर के सामने अपने राजसिंहासनों तथा अपने अधिकार को काँपता हुआ अनुभव करते थे।

परंतु उन्हें किसी बात में भी सफलता न हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी ऐसी शक्ति ने, जो उन सबसे प्रबल है, उनके संकल्पों को विफल करने और उन बहिष्कृत लोगों की रक्षा करने का निश्चय कर रक्खा है।

कई बार ऐसा होता था कि सारे-के-सारे गाँव कृष्ण और उसके शिष्यों को पकड़ लाने के लिये भेजे हुए सैनिकों के विरुद्ध उठकर उनको खदेड़ देते, और कई बार सैनिक स्वयं ही, भविष्यद्वक्ता के दिव्य शब्द से प्रोत्साहित होकर, अपने शस्त्रादि छोड़ उससे क्षमा-याचना करते थे।

एक दिन यहाँ तक हुआ कि इस सुधारक के विरुद्ध भेजी हुई सेना के एक सरदार ने, जिसने डर और प्रलोभन, दोनों में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की थी, कृष्ण को एक एकांत स्थान में अचानक जा घेरा। वहाँ वह उसकी उत्तुंग वृत्ति को देखकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने, अपने अधिकार के सारे चिह्नों को फेककर, उससे प्रार्थना की कि मुझे अपने भक्तों की मंडली में प्रविष्ट कर लिया जाय। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई, और उस दिन से इस नवीन मत का व्यग्र शिष्य और रक्षक उससे बढ़कर और कोई न था।

उसका नाम सरवस्त ( Sarawasti ) था।

प्रायः कृष्ण अपने भक्तों में से, अत्यंत संकट के समयों में उनकी परीक्षा करने के लिये, उन्हें अकेले छोड़कर, अंतर्द्धान हो जाता, और फिर उनके बैठते हुए हृदयों को खड़ा करने और उन्हें भय में बाहर निकालने के लिये सहसा उनके बीच पुनः प्रकट हो जाता था।

उसकी अनुपस्थिति में इस छोटे-से समाज का शासन अर्जुन करता था। वही यज्ञ और प्रार्थना में गुरु का स्थान ग्रहण करता था, और सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे।

परंतु, जैसे हम पहले कह चुके हैं, हमारे लिये कृष्ण के जीवन के कार्य इतने आवश्यक नहीं, जितना कि उनकी व्यवस्थाओं और उसके कर्तव्यानुराग का ज्ञान है।

वह किसी नवीन धर्म की प्रतिष्ठा के लिये नहीं आया था; क्योंकि परमेश्वर उस बात को नष्ट नहीं कर सकता था, जिसका वह एक बार सदा के लिये अच्छी कह चुका और जिसका वह प्रकाश कर चुका था। उसका उद्देश्य केवल पुराने को उन सारी दुष्टताओं और सारी अशुचिताओं से साफ़ कर देना था, जिनको मनुष्यों की प्रतापताओं ने कई युगों से शनैः-शनैः घुसेड़ दिया था, और अतीत के पक्ष-पातियों की सारी घृणा और सारे विरोध के होते भी उसने सफलता प्राप्त की।

उसकी मृत्यु के समय सारे भारत ने उसके मत और उसके सिद्धांतों को ग्रहण कर लिया था ; एक उज्ज्वल, तरुण और अपने परिणामों में सफल धर्म सारी श्रेणियों में फैल गया था, उनका आचरण शुद्ध हो गया था, और पाप की पराजित आत्मा अपने तमसावृत निवास की शरण लेने पर विवश हो चुकी थी—जिस पुनरुद्धार का ब्रह्मा ने वचन दिया था, वह संपन्न हो चुका था।

सर्वसाधारण को संबोधन करते समय कृष्ण की शिक्षा सरल और प्राकृत होती थी; परंतु अपने शिष्यों से संभाषण करते समय वह बड़ी ही उच्च और दार्शनिक हो जाती थी। इसी दुहरी दृष्टि से अब मैं कृष्ण पर विचार करनेवाला हूँ।

---

# तेरहवाँ अध्याय

जनता के प्रति कृष्ण का शिक्षण—धीवर का
दृष्टांत - विचार तथा प्रवाद

इस हिंदू परिव्राजक की सुपरिचित शिक्षा में दृष्टांत एक बहुत बड़ा काम करता है। सर्वसाधारण से संभाषण करते समय कृष्ण इस सांकेतिक रूप को अच्छा समझता था; क्योंकि वे आत्मा के अमरत्व और भावी जीवन पर उसके दार्शनिक उपदेशों को उतनी सुगमता से नहीं समझ सकते थे।

बुद्धि का स्पर्श करने और इसी उद्देश्य के लिये बीच में लाए हुए विशेष व्यक्तियों के कर्म से नैतिक आदर्श निकालने की यह रीति पूर्वी स्वभाव के सदृश ही है, और हम जानते हैं कि आख्यान और अलंकार एशियाई साहित्य की उपज हैं।

हम समझते हैं कि कृष्ण के लोकप्रिय उद्योगों को, उसके अत्यंत विख्यात दृष्टांतों में से एक, अर्थात् धीवर के दृष्टांत, का उद्धृत कर देने से बढ़कर और कोई चीज़ समझने योग्य न बनावेगी। इस दृष्टांत का भारत में इतना सम्मान और प्रतिष्ठा है कि यह बच्चों को बहुत छोटी आयु में ही स्मरण करा दिया जाता है।

कृष्ण एक सुदूर अभियान से लौटकर शिष्यों सहित मथुरा में प्रवेश कर रहा था। नगर-निवासी उसके स्वागत तथा उसके मार्ग में टहनियाँ बिछाने के लिये झुंड-के-झुंड एकत्र हो गए।

नगर से कुछ कोस की दूरी पर लोग ठहर गए, और पवित्र वाक्यों को सुनने के लिये ज़ोर देने गए। कृष्ण एक छोटे-से टीले पर चढ़कर यों कहने लगा—

धीवर का दृष्टांत—

"गंगा-तट पर, उस स्थान से ऊपर, जहाँ इसका पवित्र प्रवाह सहस्रों शाखाओं में बँट जाता है, दुर्गा नाम का एक दीन धीवर रहता था।

"सवेरा होते ही वह धर्म-पुस्तकों के आदेशानुसार पवित्र नदी में स्नान करने जाता और हाथ में कुश का ताज़ा तिनका रख 'भूर्भुवः स्वः' से आरंभ होनेवाली पवित्र सावित्री का श्रद्धापूर्वक जप करता था। तब आत्मा और शरीर को इस प्रकार पवित्र करने के उपरांत वह अपने बड़े परिवार का पेट पालने के निमित्त साहसपूर्वक काम करने जाता।

"उसका विवाह एक रूपवती कन्या से उस समय हुआ था, जब कि वह बारह वर्ष की थी। परमेश्वर ने उसे उससे छः पुत्र और चार पुत्रियाँ दी थीं। बच्चों को देख उसे बड़ा आनंद प्राप्त होता था; क्योंकि वे उसी के सदृश धर्मात्मा और सुशील थे।

"उसका सबसे बड़ा लड़का अभी से नौका चलाने और जाल फेंकने में उसकी सहायता करने लगा था, और उसकी पुत्रियाँ, अंतःपुर में बैठकर वस्त्र बनाने के लिये बकरी के लंबे और कोमल बाल काता करतीं, और उनके भोजन के लिये, अदरक, धनिया और केसर कूट, उनमें लाल मिर्च का रस मिला, मछली पकाने के लिये मसाला तैयार करतीं।

"निरंतर परिश्रम करने पर भी परिवार निर्धन ही था; क्योंकि दुर्गा की भद्रता और उसके सद्गुणों से ईर्ष्या रखने के कारण दूसरे कैवर्तों ने उसके विरुद्ध एक जत्था बना रक्खा था, और सदा अपने दुर्व्यवहार से उसे दुःख देने का यत्न करते रहते थे।

"कभी वे उसके जालों को उलझा देते, और रात में उसकी नौका को खींचकर रेत में फसा देते, ताकि उसका सारा दिन उसे निकालने में ही लग जाय।

"जब वह मछलियाँ लेकर नगर में बेचने के लिये जाता, तब रास्ते में वे बलात् उससे मछलियाँ छीन लेते, या उन्हें मिट्टी में फेंक देते, ताकि उनको इस प्रकार मैली देखकर कोई भी मोल न ले।

"बहुत बार दुर्गा उदास होकर अपनी झोपड़ी में लौट आता, और सोचता कि न मालूम मैं अपने कुटुंब की आवश्यकताओं को पूरा करने में कब समर्थ हूँगा। इस पर भी, जो भी अच्छी-से-अच्छी मछली वह पकड़ता, उसे सदा साधु-महात्माओं की भेंट करता, जो भी भूखा-प्यासा उसके द्वार पर आता, उसे अपने यहाँ विश्राम देता और जो भी थोड़ा-बहुत भोजन उसके पास होता, उसे उसके साथ बाँट खाता। उसके रूखे-सूखे खाने पर उसके शत्रु सदा ठट्ठा किया करते, और जो कोई भी भिखमंगा उन्हें मिलता, उसे यह कहकर उसके पास भेज देते—जाओ, दुर्गा को ढूँढ लो, वह भेस बदले हुए एक राजा है, और केवल मनोलोलता के लिये ही मछली पकड़ता है।

"इस प्रकार वह अपनी ही उत्पन्न की हुई दीनता पर हँसी उड़ाते।

"परंतु सारे संसार पर भारी संकट आया। एक भीषण दुर्भिक्ष ने समस्त देश को नष्ट कर दिया; क्योंकि धान और अन्य छोटे नाज पिछली फ़सल में बिलकुल मारे गए थे। दुर्गा के शत्रु कैवर्त भी शीघ्र ही उसके समान ही दुखी हो गए, और अपनी साझी विपत्ति में उन्हें उसे दुःख देने का सारा विचार बिलकुल भूल गया।

"एक दिन सायंकाल वह दीन मनुष्य, कोई मछली न मिलने के कारण, गंगा से ख़ाली हाथ लौट रहा था। उसे घोर चिंता हो रही थी कि झोपड़ी में आज खाने के लिये कुछ भी नहीं। मार्ग में उसे इमली के वृक्ष के नीचे रो-रोकर मा को पुकारता हुआ एक बच्चा पड़ा मिला। दुर्गा ने उससे पूछा—तू कहाँ से आया है, और तुझे यहाँ कौन अकेला छोड़ गया है?

"बच्चे ने उत्तर दिया—मेरी मा मुझे यह कहकर यहाँ छोड़ गई है कि मैं तेरे खाने के लिये कुछ ढूँढ लाऊँ।

"दुर्गा को उस दीन बालक पर दया आई। वह उसे उठाकर घर ले आया। उसकी भार्या बड़ी सुशीला और दयावती थी। वह कहने लगी, आपने इस बालक को भूखों मरने से बचाकर बड़ा उत्तम काम किया है।

"परंतु घर में न चावल ही थे और न भूनी हुई मछली ही। उस दिन युवती कन्याओं के हाथों ने खाद्य द्रव्य को पीसते हुए सिल-बट्टे से सुरीली आवाज़ नहीं निकाली थी।

"आकाश में चंद्रमा चुपचाप चमक रहा था; सारा कुटुंब सायं-काल की प्रार्थना के लिये एकत्र हुआ।

"अकस्मात् वह बालक गाने लगा—

"जिस प्रकार शटक ( Cataca )-फल जल को शुद्ध कर देता है, वैसे ही सुकर्म आत्मा को पवित्र करते है। दुर्गा, अपने जाल ले; तेरी नाव गंगा में तैर रही है, और मछलियाँ तेरी राह देख रही हैं।

"आज चंद्रमा की तेरहवीं रात्रि है, हाथी की छाया पूर्व की ओर पड़ती है; पितर मधु, घृत, और भात माँग रहे हैं; उनको भेंट अवश्य देनी चाहिए। हे दुर्गा, अपने जाल ले, तेरी नाव गंगा में है, और मछलियाँ उपस्थित हैं।

"तू दीनों को एक भोज देना; वहाँ अमृत पवित्र गंगा के जल के सदृश प्रचुरता से बहेगा। तू रुद्रों और मृत पितरों ( Adytias ) को लाल बालोंवाली बकरी का पिंड दे; क्योंकि परीक्षा के दिन पूरे हो चुके हैं। हे दुर्गा, अपने जालों को लेकर तेरह बार डाल; तेरी नौका गंगा पर तैर रही है, और मछलियाँ तेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

"दुर्गा चकित रह गया; उसने इसे ऊपर से आई हुई अपने लिये एक सूचना समझा। वह जाल लेकर अपने सबल बलवान् पुत्र के साथ उतरकर पानी के किनारे पर पहुँचा।

"बालक भी उनके पीछे-पीछे हो लिया, वह भी उनके साथ नाव में जा बैठा, और चप्पू लेकर तरणी को चलाने लगा।

"तेरह बार जल में जाल फेंके गए, और प्रत्येक बार नाव, मछलियों के बोझ से झुककर, किनारे पर लौट आने और मछलियों को वहाँ उतार जाने के लिये विवश हुई। अंतिम बार बालक अंतर्द्धान हो गया।

"दुर्गा हर्ष से फूला नहीं समाता था। वह चटपट अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिये घर दौड़ा गया; फिर जब उसे स्मरण आया कि और भी अनेक दुखिया ऐसे हैं, जिनको सहायता की आवश्यकता है, तो वह अपने साथ किए हुए उनके सारे अपकारों को भुलाकर चटपट अपने पड़ोसी कैवर्तों के पास दौड़ा हुआ गया, ताकि अपने अधिक सामान को उनके साथ बाँट खाय।

"उनको दुर्गा की ऐसी उदारता में विश्वास करने का साहस नहीं होता था; परंतु वे झुंड-के-झुंड एकत्र हो गए, और दुर्गा ने अद्भुत रीति से पकड़ी हुई मछलियों के अवशिष्ट भाग को उसी समय उनमें बाँट दिया।

"जितने समय दुर्भिक्ष रहा, दुर्गा न केवल अपने शत्रुओं को ही, प्रत्युत जो भी दीन-दुखी उसके द्वार पर आते, उन सबको भोजन देता रहा। जितनी मछलियों की उसे इच्छा होती, उतनी उसके गंगा में जाल डालते ही तत्क्षण उसमें आ फँसतीं।

"दुर्भिक्ष समाप्त हो गया; पर परमेश्वर का हाथ वैसे ही उसकी रक्षा करता रहा। अंत को वह इतना धनाढ्य हो गया कि उसने अकेले ही ब्रह्मा का एक ऐसा व्ययसाध्य और समृद्धिशाली मंदिर

बनवाया कि भूमंडल के सभी भागों से यात्रियों के दल-के-दल उसे देखने और उपासना करने के लिये वहाँ आने लगे।

"हे मथुरानिवासियो, तुम्हें भी इसी प्रकार निर्बलों को बचाना, एक दूसरे की सहायता करना और शत्रु की विपत्ति में उसके अपराधों को कभी न याद करना चाहिए।"

उसके बहुसंख्यक प्रवादों में से, जो उसकी लौकिक शिक्षाओं में बिखरे पड़े हैं, थोडे से, दैवयोग से, यहाँ इकट्ठे किए हैं—

"जिन मनुष्यों में आत्म-संयम नहीं, वे अपने कर्तव्यों को पूरा करने में असमर्थ हैं।"

"जिस सुख और ऐश्वर्य को अंतरात्मा अनुमति न दे, उसका परित्याग कर देना चाहिए।"

"हम अपने पड़ोसियों के जो अपकार करते हैं, वे छाया की तरह हमारे पीछे-पीछे लगे फिरते हैं।"

"जो मनुष्य अपने कर्मों का कारण ईश्वर को ठहराना नहीं जानता, उसके सारे सर्वोत्तम कर्म अलीक और उसका ज्ञान असार है।"

"न्यायपरायण मनुष्य के सभी कामों में लोक-हित का भाव होना चाहिए; क्योंकि जगदीश्वर की दृष्टि में इसी का सबसे अधिक महत्त्व है।"

"जिसके हृदय और आत्मा में नम्रता है, उससे परमेश्वर प्रेम करता है; उसे और किसी वस्तु का प्रयोजन नहीं।"

"जिस प्रकार शरीर मांस से पुष्ट होता है, उसी प्रकार आत्मा धर्म से बलवान् होती है।"

"अपने पड़ोसी की स्त्री की कामना करनेवाले से बढ़कर और कोई पापी नहीं।"

हम आगे दिए प्रवादों की ओर ध्यान दिलाते हैं, जिनको बहुत-से लोग अभी कल के ही समझते हैं—

"जिस प्रकार पृथ्वी उन लोगों का पोषण करती है, जो उसे अपने पाँव तले रौंदते और उसकी छाती को हल से चीरते हैं, उसी प्रकार हमें भी बुराई का बदला भलाई में देना चाहिए।"

'यदि तुम भले लोगों की संगति में रहते हो, तो तुम्हारा उदाहरण व्यर्थ है। बुरों के सुधार के लिये उनमें रहने से मत डरो।"

"यदि एक निवासी सारे ग्राम के विनाश का कारण हो सकता है, तो उसे निकाल देना चाहिए; यदि एक ग्राम सारे प्रांत का नाश कर सकता है, तो उसे नष्ट कर डालना चाहिए; परंतु यदि प्रांत आत्मा की हानि करे, तो उसका परित्याग कर देना चाहिए।"

"दुष्टात्माओं की चाहे हम कितनी ही सेवा करें, उनसे की हुई भलाई उन जल पर लिखे अक्षरों के सदृश है, जो लिखते ही मिट जाते हैं। परंतु भलाई को भलाई के लिये ही करना चाहिए, और उसके बदले की प्रत्याशा पृथ्वी पर नहीं करनी चाहिए।"

"जब हम मर जाते हैं, तब हमारा धन यहीं रह जाता है; हमारे संबंधी और मित्र भी केवल मरघट तक ही हमारे साथ जाते हैं; परंतु हमारे पुण्य और पाप, हमारे अच्छे और बुरे कर्म दूसरे जन्म में भी हमारे साथ जाते हैं।"

"धर्मात्मा पुरुष एक विशाल वट-वृक्ष के सदृश है, जिसकी हित-कारिणी छाया उसको घेरनेवाले पौदों को तेज और जीवन प्रदान करती है।"

"विचार के बिना विद्या व्यर्थ है, जैसे अंधे के लिये दर्पण निरर्थक है।"

"जो मनुष्य साधनों की क़दर केवल उनकी उस सहायता के अनुसार करता है, जो वे उसकी सफलता में देते हैं, उसकी न्याय और निर्दोष सिद्धांतों को देखने की शक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।"

( आप धर्माधर्म-विवेकी और उक्तियों के योजक महाशयों के मत में तो 'परिणाम से ही साधन के उचित या अनुचित होने का निर्णय होता है !' )

"केवल अनंत और असीम ही अनंत और असीम को जान सकता है, केवल परमात्मा ही परमात्मा को जान सकता है।"

"साधु पुरुष को दुष्टात्मा की चोटों के सामने गिर पड़ना चाहिए, जैसे लकड़हारे की चोट से गिरा हुआ चंदन का पेड़ उसको आहत करनेवाले कुल्हाड़े को सुगंधित कर देता है।"

अब साधु पुरुष के प्रति, जो अपने को परमेश्वर पर छोड़ देता और सनातन पुरस्कार का भागी बनता है, कृष्ण के उपदेश सुनिए—

"वह प्रतिदिन ईश्वर-भक्ति और उपासनादि सारे धर्मकृत्य करे, और अपने शरीर को अतीव श्लाघ्य कठिनताओं में डाले।"

"वह सांसारिक यश और प्रतिष्ठा को विष से भी भयानक समझे, और संसार के ऐश्वर्य के प्रति केवल तिरस्कार का भाव रक्खे।"

"उसे जानना चाहिए कि आत्म-सम्मान और जनता-प्रेम से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं।"

"वह कभी क्रोध न करे, और किसी से भी, यहाँ तक कि पशुओं से भी, दुर्व्यवहार न करे, प्रत्युत हमें पशुओं का, उनकी उस अपूर्णता के कारण, जिसमें जगदीश्वर ने उन्हें रक्खा है, सम्मान करना चाहिए*।"

* ईसाई-धर्म की अत्यंत महत्त्वपूर्ण सेवाओं में से एक यह थी कि हमारे हितैषी प्रेम को बहुत उदात्त करने के अतिरिक्त उसने विनोद या केवल अवसर के विषय के तौर पर मानव-जीवन के नाश करने को निश्चित और सिद्धांत रूप से पाप ठहराया, और इस प्रकार एक नया आदर्श बनाया, जिससे ऊँचा पहले संसार में कभी न हुआ था। Lecky, History of European Morals, vol. ii, p 21—2.

"उसे ईर्ष्या, विषयासक्ति और लोभ को मारकर भगा देना चाहिए।"

"वह नाचने, गाने, बजाने, मदिरा और जुए को छोड़ दे।"

"वह कभी किसी की निंदा-चुगली और कपट-छल न करे।"

'वह स्त्रियों पर कभी काम-दृष्टि न डाले, और न उनका आलिंगन ही करे।"

"वह कभी किसी से कलह न करे।"

"उसका घर, उसका भोजन और उसके कपड़े सादे और सुथरे हों।"

"उसका दायाँ हाथ दीन-दुखियों के लिये सदा खुला रहे, और वह अपने किए उपकार की कभी शेख़ी न मारे।"

"जब कोई दरिद्र उसके द्वार पर आवे, तब वह उसका स्वागत करे, पाँव धोने के लिये उसे जल दे, उसे आप भोजन लाकर खिलावे, और जो बच रहे उसे आप खावे; क्योंकि दरिद्र लोग ईश्वर के प्यारे होते हैं।"

"परंतु, जीवन पर्यंत वह, किसी रीति से भी दूसरों को पीड़ा न दे; अपने मानव-बंधुओं की रक्षा, सहायता और उनसे प्रेम करे, इसी से ही वे सद्गुण निकलते हैं, जो परमेश्वर को सबसे अधिक भाते हैं।"

इस रीति से कृष्ण ने इस जाति में पवित्र आचरण के निर्दोष सिद्धांतों का प्रचार किया, इस प्रकार उसने अपने श्रोताओं को भूतानुकंपा, आत्मनिग्रह और आत्मसम्मान के महान् सिद्धांतों की ऐसे समय में दीक्षा दी, जब कि पश्चिम के निर्जन देशों पर अभी जंगल के असभ्य समूहों का ही अधिकार था।

अब कहिए, हमारी सभ्यता ने, जो अपनी प्रगति और अपने चित्तप्रबोध पर इतना अभिमान करती है, इन श्रेष्ठ शिक्षाओं में क्या वृद्धि की है?

---

## चौदहवाँ अध्याय

### कृष्ण की दार्शनिक शिक्षा

इस बात को जानने के लिये जो चित्तप्रबोध हम तक प्रतिफलित हुआ है, वह पूर्व में बहुत पहले विद्यमान था, कृष्ण के उसके शिष्यों के साथ, विशेषतः अर्जुन के साथ, श्रेष्ठ संवादों को पढ़ने की आवश्यकता है। जो मूल-संस्कृत में, विशेषतः भगवद्गीता में हैं।

अत्यंत उच्च तत्त्वज्ञान की समस्याएँ, अत्यंत पवित्र आचरण, आत्मा का अमरत्व, परमेश्वर के नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य का भावी अदृष्ट, इन सब बातों का इन श्रेष्ठ एकांत कथनों में वर्णन है। इनमें श्रोता का काम केवल उत्तर देना ही है, जिससे शिक्षक को नए अध्याय आरंभ करने का अवसर मिलता है।

स्थानाभाव से हम यहाँ इन महान् विषयों का यथोचित विस्तार के साथ वर्णन करने में असमर्थ हैं, इसलिये हम आत्मा के अमरत्व पर कृष्ण का एक ही संवाद यहाँ उद्धृत करते हैं। इसी से दूसरों का भी निर्णय हो जायगा।

अर्जुन—

"हे कृष्ण, क्या तू यह नहीं बता सकता कि वह निर्मल रस क्या है, जो हमें परमेश्वर से प्राप्त हुआ है, और जो फिर उसी में वापस लौट जायगा?"

कृष्ण —

"आत्मा जीवन का मूलतत्त्व है, जिसको ज्ञानस्वरूप परमात्मा ने देहों को सजीव करने के लिये प्रयोग किया है। प्रकृति जड़ और नश्वर है; आत्मा सोचता और काम करता है, और अविनाशी है।

विचार से इच्छा और इच्छा से कर्म उत्पन्न हुआ है, इसी से ऐहिक प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक पूर्ण है; क्योंकि वह सच को झूठ से, न्याय को अन्याय से और पुण्य को पाप से पहचानता है, और इसी जानने के कारण मानसिक सृष्टि में कर्म करने में स्वतंत्र है।

"वह अंतर्वर्ती ज्ञान, वह इच्छा, जो अपने को उस चीज़ की ओर, जिसे यह पसंद करता है, विचार द्वारा ले जाती है, और जिसको यह नापसंद करती है, उससे अपने को हटा लेती है, जीव आत्मा को उसके कर्मों का और उसके विकल्प का उत्तरदाता बना देती है, और इसी कारण परमेश्वर ने पुरस्कारों और दंडों की व्यवस्था की है।

"जब आत्मा इसको मार्ग दिखानेवाली सनातन और पवित्र ज्योति का अनुगमन करती है, तो स्वभावतः ही यह पुण्य की ओर झुक जाता है।

"इसके विपरीत, जब यह अपने मूल को भूल कर अपने को बाह्य प्रभावों के अधीन कर देती है, तो पाप का प्राधान्य हो जाता है।

"जीवात्मा अमर है, और इसका उस परमात्मा में वापस लौट आना आवश्यक है, जिससे से यह निकली थी; परंतु यह मनुष्य को निर्मल और पवित्र दी गई थी, इसलिये यह उस समय तक पुनः ब्रह्मधाम में नहीं पहुँच सकता, जब तक कि इसके उन सब अपराधों और दोषों की शुद्धि न हो जाय, जो इसने प्रकृति के संयोग से किए हैं।"

अर्जुन—

"यह शुद्धि कैसे की जाती है?"

कृष्ण—

"जीवात्मा, अपने दोषों के अनुसार, छोटे या लंबे क्रम से, नरक में शुद्ध होती है। इसका परमात्मा के साथ संयोग न होने देना ही एक ऐसा दंड है, जिसका यह सबसे अधिक अनुभव करती है; क्योंकि

इसकी सबसे बड़ी आकांक्षा यह होती है कि मैं अपने आदि-स्रोत में लौटकर सर्वभूतांतरात्मा में विलीन हो जाऊँ।"

अर्जुन—

"जीवात्मा तो परमात्मा का एक अंश है, फिर उसमें न्यूनता कहाँ से आ जाती है?"

कृष्ण—

"अपने विशुद्ध भाव में जीवात्मा अपूर्ण नहीं है; इस श्रेष्ठ अहंकार की ज्योति का अंधकार इसका अपना नहीं; यदि जीवात्मा के स्वभाव में न्यूनता अथवा दोष का बीज होता, तो कोई भी चीज़ उसे नष्ट न कर सकती, और इस बीज के विकसित हो जाने से आत्मा शरीर के सदृश अनित्य और नश्वर हो जाती। प्रकृति के साथ इसका संयोग होने से ही आत्मा में दोष आ जाता है। परंतु उस दोष का इसके तत्त्व पर कुछ परिणाम नहीं होता; क्योंकि यह उसके कारण में, जो परमेश्वर है, नहीं।"

इच्छा न रहते भी हमें इस अवतरण को यहाँ रोकना पड़ता है। इसमें आगे चलकर कृष्ण अध्यात्म विद्या की अतीव सूक्ष्म बातें कहते हैं। हम समझते हैं कि उनका तर्क सिवा उन लोगों के, जिन्होंने अपना जीवन इस विद्या के अध्ययन में तथा दर्शनशास्त्र की गहराइयों को खोजने में लगाया है, पूर्ण रूप से और किसी की समझ में न आवेगा।

इसके अतिरिक्त इस हिंदू-सुधारक की पुस्तक से जो सिद्धांत निकालने की हम प्रतिज्ञा करते हैं, उनको पूर्ण रूप से प्रकट करने के लिये यह सरल दृष्टिपात ही पर्याप्त है।

उनका सार यह है—

कृष्ण भारत में आत्मा की अमरता, स्वतंत्र इच्छा अर्थात् विचार की स्वतंत्रता, शरीर की स्वाधीनता, पुण्य तथा पाप में, और भावी

जीवन में मिलनेवाले पुरस्कार तथा दंड में विश्वास का प्रचार करने आया था।

वह लोगों को भूत-दया, परस्पर प्रेम, आत्म-सम्मान, निष्काम पुण्य और जगत्-स्रष्टा की अक्षय सदिच्छा में विश्वास की शिक्षा देने आया था।

उसने प्रतिहिंसा का निषेध किया, बुराई के बदले भलाई करने की आज्ञा दी, दुर्बलों को समाश्वासन दिया, दुखियों और पीड़ितों का पालन और रक्षण किया और अत्याचार को दबाया।

वह दरिद्रता का जीवन व्यतीत करता था, और दरिद्रों से प्रेम करता था। वह आप सदाचारी और सदाचार की शिक्षा देता था।

हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि वह प्राचीन काल का सबसे महान् व्यक्ति था और उसी के पुनरुद्धार के कार्य से, अपर काल में, ईसा ने उसी प्रकार प्रत्यादेश ग्रहण किया था, जैसा कि मूसा ने मेनस और मनु के कार्यों से ग्रहण किया था।

अब दो-चार पंक्तियों में ही शायद, बहुत संक्षेप से, इस परित्राता का वर्णन समाप्त कर हम भारत में उसके उत्तराधिकारियों के कामों का उल्लेख करेंगे। इन लोगों ने अपने गुरु के श्रेष्ठ ऐतिह्यों को शनैः-शनैः भुलाकर जनता को अपनी प्रभुता के हितार्थ, नैतिक अपकर्ष और अभिभव में डुबा दिया, जिससे प्राचीन पुरोहितशाहियों के निरंकुश और हड़प कर जानेवाले शासन, जो, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, पौराणिक हिंदू-धर्म की उपज हैं, संभव हो गए।

---

## पंद्रहवाँ अध्याय

कृष्ण का रूपांतर—उसके शिष्य उसका नाम जेज़्यूस (Jezeus) शुद्ध तत्त्व रखते हैं

एक दिन, जब मथुरा के अत्याचारी राजा ने कृष्ण और उसके शिष्यों के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी, शिष्यों ने, भयभीत होकर, उस भय से बचने के लिये, जो उन्हें डरा रहा था, भागने की सोची।

स्वयं अर्जुन की भक्ति भी लड़खड़ाती हुई दिखाई देती थी; कृष्ण, जो उनके निकट ही ईश्वर-प्रार्थना में मग्न था, उनकी शिकायतों को सुनकर, उनके बीच जा खड़ा हुआ, और बोला—

"तुम्हारी आत्माओं पर अनर्थक भय क्यों छा गया है? क्या तुम्हें अभी तक यह मालूम नहीं हुआ कि तुम्हारे साथ कौन है?"

और, तब वह अपने भौतिक शरीर को छोड़कर उनके नेत्रों के सम्मुख पूर्ण दिव्य विभूति में प्रकट हुआ: उसके माथे पर एक ऐसा दीप्ति-मंडल था कि अर्जुन और उसके साथी उसको सहन करने में असमर्थ होकर मुँह के बल पृथ्वी पर लेट गए और अपने अयोग्य दोष को क्षमा कर देने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे।

फिर कृष्ण, अपना पहला रूप धारण कर, कहने लगा—"क्या तुम्हारी अब मुझमें भक्ति नहीं है? स्मरण रक्खो, मैं, चाहे उपस्थित हूँ चाहे अनुपस्थित, सदा तुम्हारी रक्षा के लिये तुम्हारे साथ रहूँगा।"

और, उन्होंने, जो कुछ देखा था, उस पर विश्वास करके, इसके पश्चात् कभी उसकी शक्ति में संदेह न करने की प्रतिज्ञा की; उन्होंने उसका नाम जेज़्यूस रख दिया, जिसका अर्थ विशुद्ध ईश्वरीय तत्त्व की संतान है ।

( भगवद्गीता )

---

# सोलहवाँ अध्याय

कृष्ण और निचदली ( Nichdali ) और सरस्वती नाम की दो धर्मात्मा स्त्रियाँ

कृष्ण अपने शिष्यों के साथ मथुरा के परोस में फिरता था। उसके दर्शनों के लिये उत्सुक होकर बहुत-से लोग पीछे-पीछे यह कहते दौड़ते थे—

"चलो, उसके दर्शन करें, जिसने हमें दुःख देनेवाले अत्याचारी कंस से छुड़ाया है।" कंस अपने अपराधों का दंड भोग चुका था, और कृष्ण ने उसे मथुरा से निकाल दिया था।

लोग यह भी कहते थे—"उसके दर्शन करो, जो मृतकों को जिलाता, लँगड़ों, बहरों और अंधों को चंगा करता है।"

तब बहुत ही नीच कुल की दो स्त्रियाँ कृष्ण के पास आईं। उनके पास एक पीतल के पात्र में सुगंधित द्रव्य था। उन्होंने उसको कृष्ण के सिर पर छिड़ककर उसका पूजन किया।

लोग उनकी धृष्टता की चर्चा करने लगे; पर कृष्ण ने उनसे कहा—"हे स्त्रियो! मैं तुम्हारी भेंट स्वीकार करता हूँ, हृदय से दी हुई थोड़ी-सी चीज़ भी दिखलावे से दिए हुए सारे ख़ज़ाने से बढ़कर है। जो इच्छा हो, मुझसे माँगो।"

उन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो! हमारे पतियों के मुख चिंता में मुरझा रहे हैं, हमारे घरों में सुख वास नहीं करता; क्योंकि जगदीश्वर ने हमें माता बनने का सौभाग्य नहीं दिया।"

कृष्ण ने उनको अपने पाँव पर से उठाकर कहा—"तुमने मुझमें विश्वास किया है, इसलिये तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी, और सुख तुम्हारे घर में पुनः वास करेगा।"

इसके कुछ काल उपरांत निचद्ली ( Nichdali ) और सरस्वती-नामक इन दोनों स्त्रियों के एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और ये दोनों लड़के पीछे से महात्मा बन गए । हिंदू लोग अब तक भी इनका सुदामा और सुदाम नाम से पूजन करते हैं ।

( भगवद्गीता )

---

# सत्रहवाँ अध्याय

कृष्ण गंगा-स्नान के लिये जाता है— -उसकी मृत्यु

उद्धार का कार्य संपन्न हो गया; सारा भारत अपनी नाड़ियों में तरुण रक्त की गति का अनुभव करने लगा; सब कहीं प्रार्थना से परिश्रम पवित्र होने लगा; आशा और श्रद्धा ने सभी हृदयों को गरम कर दिया।

कृष्ण ने समझ लिया कि मेरे लिये अब भूतल को छोड़कर अपने भेजनेवाले की गोद में लौट जाने का समय आ गया।

अपने शिष्यों को साथ आने से रोककर एक दिन वह गंगा-स्नान के लिये चल दिया, ताकि अपने पांचभौतिक कोश के उन सारे धब्बों को धो डाले, जिनका अतीत काल के पक्षपातियों के विरुद्ध नाना प्रकार के युद्धों के करने से उस पर लग जाना अनिवार्य था।

भगवती गंगा के तट पर पहुँचकर उसने उसमें तीन डुबकियाँ लगाईं, फिर, झुककर और आकाश की ओर टक-टकी बाँधकर, उसने प्रार्थना की, और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा।

इस स्थिति में उसे उन लोगों में से एक का चलाया हुआ बाण आकर लगा, जिनके अन्यायों को उसने खोलकर रख दिया था, और जो, उसकी गंगा-यात्रा का समाचार पा, एक बड़ी सेना के साथ, उसकी हत्या के संकल्प से उसके पीछे आए थे।

इस मनुष्य का नाम अंगद था। साधारण लोगों का विश्वास है कि अपने इस पाप के लिये उसे इस पृथ्वी पर सदा जीते रहने का शाप मिला है। वह गंगा-तट पर घूमता रहता है, और दूसरा कोई भोजन न मिलने के कारण सदा गीदड़ तथा अन्य अपवित्र जंतुओं के सहवास में शव खाकर ही पेट भरता है।

कृष्ण के शव को उसके मारनेवाले ने वृक्षों की शाखाओं में लटका दिया, ताकि उसे चील और गिद्ध खा जायँ।

मृत्यु का समाचार फैल जाने पर कृष्ण का प्रिय शिष्य अर्जुन बहुत-से लोगों को लेकर उसके पवित्र शव को लेने आया। परंतु परित्राता का नश्वर शरीर अंतर्द्धान हो चुका था—निस्संदेह यह ब्रह्म-धाम में पहुँच गया था।...

और, जिस वृक्ष पर यह लटकाया हुआ था वह सहसा बड़े-बड़े लाल फूलों से भर गया था, और चारों ओर मीठी-मीठी सुगंधि छोड़ रहा था।

इस प्रकार कृष्ण की मृत्यु उन दुष्टों के हाथों हुई, जो उसके नियम को मानना नहीं चाहते थे, और जो अपने दुराचार और दंभ के कारण जनता में से बाहर निकाल दिए गए थे।

( भगवद्गीता और पुराण )

---

## अठारहवाँ अध्याय

### समाधान के कुछ शब्द

जो कुछ मैंने कुमारी देवांगी और उसके पुत्र कृष्ण के विषय में कहा है, मैं नहीं समझता, कोई भी विचारशील प्राग्देशीय भाषा पंडित ऐसा निकलेगा, जो उसका थोड़ा-सा खंडन करने का भी साहस कर सके। निस्संदेह उन्होंने चिरकाल से यह समझ लिया है कि हिंदू-धर्म और कविता की आधुनिक पुराण-कथाओं, उस ह्रास और उन कुसंस्कारों का फल हैं, जिनको ब्राह्मणों ने अपने प्रभुत्व के लाभार्थ जनता की आत्माओं पर अंकित किया था। इसलिये यदि मैंने वीरता और साहस के उन सारे कार्यों को छोड़ दिया है, जिनका संबंध हिंदू-कवि कृष्ण से बताते हैं, तो इसका कारण यह है कि वे उस पूर्वीय कल्पना-शक्ति की पीछे की सृष्टि हैं, जो विचित्र बातों को गढ़ते समय किसी भी सीमा में नहीं रहती।

कृष्ण पर जो सबसे प्रसिद्ध और सबसे पुराना काव्य है, वह महाभारत है। यह हमारे संवत् के कोई दो सौ वर्ष पहले, अर्थात् इस हिंदू-सुधारक की मृत्यु के तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष उपरांत लिखा गया था। इन काव्यों के मूल में यह कल्पना है कि ईश्वर सदा मानव-युद्धों और मानव-कार्यों को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में और इस पृथ्वी पर भी धर्मियों को पुरस्कार और पापियों को दंड देने में लगा रहता है।

यही कल्पना प्राचीन मिसरी, यूनानी, और इबरानी सभ्यताओं में फैली हुई है। ये सभ्यताएँ, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, उस युग की संतान हैं, जिसमें भारत ने, वेदों और कृष्ण के पवित्र ऐतिह्यों को भूलकर, अपने को संतों, वीरों और उपदेवतों के हाथों में डाल दिया था।

कृष्ण के गुणागुण का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हिंदू-काव्य का सर्वथा परित्याग करके विशुद्ध ब्रह्मज्ञान की पुस्तकों, ब्राह्मणों की शिक्षाओं और उनके देवालयों में सुरक्षित ऐतिह्यों को पकड़ने की परम आवश्यकता है। इसका निदर्शन करने के लिये मुझे अपने आधुनिक समयों से एक उदाहरण लेने की अनुमति दीजिए।

सोलहवें शताब्दि में हमारे अंदर यह यत्न किया गया था कि काव्यों में मार्स (मंगल), (जूपीटर), (बृहस्पति) जूनो, वीनस (शुक्र), और मिनर्वा (सरस्वती) के स्थान में ईसा, प्रेरितों, देवदूतों और साधुओं को रख दिया जाय। टेस्सो (Tasso) का जेरूसलम डीलिवर्ड (Jerusalem delivered) हमारे सामने नमूना था।

यदि ऐसी रीति का प्रचार हो जाता (और इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि पूर्व में इसे अवश्य सफलता होती), तो क्या, दो या तीन सहस्र वर्ष के उपरांत, अतीत काल को खोदने की चेष्टा करनेवाले अन्वेषक, विशेषतः यदि पश्चिमी सभ्यताएँ नष्ट अथवा रूपांतरित हो चुकी होतीं या ईसाई धर्म का लोप हो चुका होता, तो ईसा, उसके प्रेरितों और उसके सिद्धांतों के विषय में कोई गंभीर मत बनाने के लिये, काव्य और उपाख्यान का पूर्ण परित्याग करने पर विवश न होते? क्या उन्हें इन श्रेष्ठ व्यक्तियों को हमारे सारे नागरिक और धार्मिक युद्धों में मिश्रित देखकर दुःख न होता, और क्या वे इन्हें कुसंस्कारों की सृष्टि समझ इन का अस्वीकार करने पर बाध्य न होते?

मेरे व्यवहार की रीति इससे भिन्न नहीं रही, और मैंने कृष्ण का अध्ययन केवल उसके दार्शनिक और नैतिक परिवर्तन से किया है। इसके अतिरिक्त विद्वान् ब्राह्मण भी, जो अब तक भारत में अपने जीवनों को नीति तथा धार्मिक सचाइयों के अध्ययन में लगा रहे हैं, इस पर केवल इसी दृष्टि से विचार करते हैं।

---

# उन्नीसवाँ अध्याय

## कृष्ण के उत्तराधिकारी—पौराणिक धर्म का उत्कर्ष और ह्रास

कृष्ण के आसन्न उत्तराधिकारी पुण्य कार्यों और आत्म-त्याग द्वारा अपने को पवित्र बनाते थे, और केवल भावी जीवन में ही आशा रखते हुए दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे। वे सदा तन और मन से उसी स्वर्गीय उद्देश्य में लगे रहते थे, जो उनका गुरु उनके लिये छोड़ गया था।

भारत के प्राचीन काल के उन ब्राह्मण-पुरोहितों की मूर्ति कितनी उज्ज्वल थी! उनकी उपासना कितनी पवित्र, कितनी उत्तुंग और जिस परमेश्वर की वे सेवा करते थे, उसके कितनी योग्य थी!

मैं दिखाऊँगा कि मानव-धर्म-शास्त्र और पौराणिक धर्म के अनुसार, अपने कर्तव्य कर्मों का करनेवाला पुरोहित कैसे अमरत्व प्राप्त कर सकता है; उसे किन-किन नैतिक सिद्धांतों का पालन करना चाहिए; उसके आचरण के अलंघनीय नियम कौन-कौन-से हैं। सारांश यह कि पुरातन-काल का पुरोहित क्या होता था। इस पुरोहित का बाद को प्रकृत ब्राह्मण के साथ मिलान करना मनोरंजन से शून्य न होगा।

कर्म के प्रयोजनों पर प्रश्न करते हुए, मनु स्वार्थ को बहुत कम प्रशंसाई बताकर रोकता है; परंतु फिर भी इस संसार में वह किसी को इससे रहित नहीं पाता।

वह कहता है—"संभाव्य लाभ की आशा से ही उद्यम की शक्ति उत्पन्न होती है; बड़े-से-बड़े त्यागों का उद्देश्य भी किसी वस्तु की प्राप्ति ही होता है; घोर तप और सारे सुकर्म पुरस्कार की आशा से ही उत्पन्न होते हैं।"

परंतु साथ ही वह यह भी कहता है—

"जिस व्यक्ति ने केवल ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये ही अपने सारे धर्मों का पालन किया है, और भविष्य के पारितोषिक की कोई प्रत्याशा नहीं रक्खी, उसे अनंत सुख की अवश्य प्राप्ति होगी।"

"सब धर्मों में मुख्य धर्म पहले वेदों का अध्ययन है, जो मनुष्यों पर प्रकाशित ब्रह्मा और कृष्ण के शब्द हैं।"

"श्रुति ( ईश्वरीय ज्ञान ) को सर्वोपरि प्रमाण मानना चाहिए। जो ब्राह्मण-पुरोहित परलोक में परमानंद का अभिलाषी है, वह उसे केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकता है कि परमेश्वर की आज्ञाओं में जो उसे अव्याख्येय जान पड़े, उसके सामने भी, उसे समझने का यत्न करने अथवा उस पर टिप्पणी किए बिना, सिर झुका दे।"

"जहाँ व्यवस्था चुप हो, वहाँ स्मृति के सामने भी सिर झुकावे जैसे यदि साधारण लोगों के लिये स्वार्थ और पुरस्कार की आशा से कर्म करने की आज्ञा है, तो पुरोहित ( ब्राह्मण ) के कर्मों का निमित्त सिवा ईश्वर के और कुछ न होना चाहिए। वह ईश्वरीय वाणी को, जो उस पर ईश्वर की इच्छा को प्रकट करती है, और जहाँ वेद चुप हो, वहाँ स्मृति को, आजन्म अपना पथ-प्रदर्शक बनावे।"

स्वतंत्र विचारक ( नास्तिक ) उसके समय में पहले ही उन सुधारों का प्रयत्न करने लगे थे, जो पीछे से भारत के लूथर बुद्ध के द्वारा संपन्न हुए। मनु इन नास्तिकों की भर्त्सना करता हुआ उन्हें इस प्रकार अभिशाप देता है—

"जो लोग ईश्वरीय धर्म के शत्रुओं के अपवित्र विचारों को ग्रहण करते हैं, जो श्रुति और स्मृति को प्रमाण नहीं मानते, उन्हें नास्तिक और वेद-निंदक होने के कारण निकाल देना चाहिए।"

उपनीत ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना चाहिए, उसे प्रति

दिन मन और शरीर को शुद्ध करके यजन करना चाहिए, और वेदी के पाँव में साष्टांग लेटकर वेदों का पाठ करना चाहिए।

उसके जीवन का प्रथम भाग, कोई सत्तर वर्ष की आयु तक, संग्रामशील हो। वह अपने साथियों को शिक्षा देकर उन्हें ईश्वर-परायण बनावे। इस काल में वह अपने आपका नहीं होता; वह सब दीन-दुखियों को सांत्वना दे; बच्चों, दरिद्रों, और अशरणों का पालन-पोषण करे।

हम उसका उसके जन्म-काल से विचार करते हैं; क्योंकि हम प्रायः कह सकते हैं कि उसी क्षण से उसके कर्तव्य कर्मों का आरंभ हो जाता है।

कृष्ण के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव से यद्यपि मूल अपराध का प्रायश्चित्त हो गया, परंतु इससे सारा दोष नहीं मिटा; इसलिये प्रत्येक आस्तिक बच्चे की उसके जन्म पर पवित्र गंगा-जल द्वारा, यदि गंगा-जल न हो, तो शुद्धि के जल से, या देवालय में पुरोहित के मंत्र-पूत जल से शुद्धि और उद्धार करना चाहिए।

जिस ब्राह्मण को गुरु बनना हो, उसके लिये शुद्धि की यह प्रक्रिया पर्याप्त नहीं; उसके लिये इसके अतिरिक्त उपनयन और तीन वर्ष की आयु से लेकर मरण-पर्यंत साग्रह मुंडन कराते रहने का विधान है।

फिर ब्राह्मण को डुबका देते समय, तथा संस्कार में मंत्र पढ़ते समय, उसके होठों पर घृत और मधु मलना चाहिए। मुंडन का संस्कार और प्रक्रिया जन्म के उपरांत छठे वर्ष में होनी चाहिए। सोलह वर्ष की आयु में सभी ईश्वर-परायण लोगों को अपनी शुद्धि को पवित्र तैल के अभिषेक से दृढ़ करने के लिये देवालय में जाना पड़ता है; क्योंकि उस आयु में वे वयस्क हो जाते हैं।

मनु कहता है, इस अवधि के उपरांत जिन लोगों का यथो-

चित रीति से अभिषेक-संस्कार नहीं हुआ होता, वे दीक्षा के अयोग्य ठहराए जाकर समाजच्युत कर दिए जाते हैं।

[ संस्कृत शब्द 'व्रात्य' का अनुवाद हमारी भाषा में, समाजच्युत ( Ex-communication ) के सिवा और कुछ करना असंभव है। ]

जब ब्राह्मण का बालक कर्म को समझने लगे, तब उसे सायं और प्रातः स्थिर और बद्धांजलि हो ईश्वरोपासना करनी चाहिए। प्रातःकाल की उपासना से उसके उन छोटे-छोटे पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है, जो उससे अनजान में रात में हो गए हों। दिन में अनजान से किए हुए दोष सायंकाल की उपासना से धुल जाते हैं। उसे बाद को जाकर ही सोलह वर्ष की आयु के पश्चात्, वेद की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करने की अनुमति मिल सकती है।

परंतु धर्म-विश्वासियों का पुरोहित और उपदेष्टा बनने के पहले ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या और दर्शनों के विद्यालयों में बहुत-से वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं। वहाँ वह जीवन-विद्या और ब्रह्मविद्या, जिनका उपदेश उसे दूसरों को देना होता है, सीखता है। यह उसका विद्याध्ययन-काल है।

वह आगे दिए विषयों का अध्ययन करता है—

संस्कृत, अर्थात् वह पवित्र भाषा, जिसमें परमेश्वर ने मनुष्यों पर अपने ज्ञान का प्रकाश किया था।

ब्रह्मविद्या और धार्मिक प्रक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान।

दर्शनशास्त्र, और विशेषतः उसका वह भाग, जो धर्म का एक अंग है।

नक्षत्र-विद्या अर्थात् ज्योतिष।

गणित।

व्याकरण और छंदःशास्त्र।

और अंततः, जो पुरोहित के लिये सबसे बढ़कर आवश्यक समझे जाते हैं, अर्थात् वेद और उनके गहन तथा अस्पष्ट वाक्यों की व्याख्या।

मनु कहता है, यदि पुत्र के लिये अपने माता-पिता पर प्रेम और उनका सम्मान उनसे भौतिक जीवन पाने के कारण करना योग्य है, तो आध्यात्मिक जीवन प्रदान करनेवाले आध्यात्मिक पिता अर्थात् गुरु का उसे कितना अधिक सम्मान करना चाहिए ?

विद्याध्ययन-काल समाप्त हो जाने पर ब्राह्मण ईश्वर के सेवकों में से एक संस्कृत सेवक, अर्थात् आगे दिए आचरण के नियमों का पालन करनेवाला पुरोहित, बन जाता है—

"वह दान पर, अर्थात् भक्तों के देवालय में चढ़ाए हुए चढ़ावे पर, निर्वाह करे; क्योंकि उसके पास कुछ भी संपत्ति न होनी चाहिए। वह उपवास करे और संयम से रहे, लोगों के सामने सभी सद्गुणों का उदाहरण उपस्थित करे, और अपने समय को उपासना और शिक्षा में बाँट दे, और जैसे उसने अपने गुरु से शिक्षा पाई थी, वैसे ही अब आप नए शिष्यों को शिक्षा दे।

"जब ब्राह्मण इस प्रकार जिज्ञासु से पुरोहित और फिर गुरु बन जाता है, जब वह अपने मार्ग को सुकर्मों से ढाँप देता है, और जीवन का बड़ा भाग परमेश्वर तथा अपने पड़ोसियों की सेवा में अर्पण कर देता है, तब ब्रह्म में लीन हो जाने के पहले उसके लिये एक अंतिम परीक्षा रह जाती है।"

अच्छा, अब सुनिए कि वेद उसके लिये कैसे आचरण का उपदेश करता है—"वह सब साथियों को छोड़कर अकेला रहे, और उसे इस बात का स्वप्न तक भी न हो कि सारे संसार ने उसका परित्याग कर दिया है, अथवा उसने सबका परित्याग कर दिया है।

"वह घर-बार कुछ न रक्खे; यदि उसे भूख सतावे, तो वह अपने

आहार को ईश्वर के भरोसे छोड़ दे—उसके खाने के लिये उसके पैरों में शाक उगेंगे।

"वह न जीवन की इच्छा और न मृत्यु की कामना ही करे, और जिस प्रकार फ़सल काटनेवाला मज़दूर रात को अपने स्वामी से शांति-पूर्वक पुरस्कार की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही वह भी तब तक प्रतीक्षा करे, जब तक कि उसका समय न आ पहुँचे।

"अपने सारे कर्मों को ईश्वर के अर्पण करके पवित्र करे।

"कटु वचनों को धैर्य के साथ सहन करे; किसी का तिरस्कार न करे, और सबसे बढ़कर इस दुर्बल तथा नश्वर शरीर के लिये किसी से घृणा न करे।

यदि उसको पीटनेवाले के हाथ की छड़ी गिर पड़े, तो वह उसे चुप-चाप उठाकर फिर उसके हाथ में दे दे।

( क्या यही बाइबिल के नए धर्म-नियम का थप्पड़ नहीं ? )

"वह स्वप्नों और उत्पातों की व्याख्या द्वारा कभी भी जीविकोपार्जन न करे।

"सबसे बढ़कर, वह वेद के शुद्ध भाव को बिगाड़कर उससे सांसारिक स्वार्थों और विकारों के पक्ष में कूट तर्क के सूत्र न निकाले।

डी० लायोलार्जी, आप क्या कहते हैं ? यह शिक्षा बहुत दूर से आई है। )

"और, जब उसका अंतकाल आ पहुँचे, तब वह लोगों से कहे कि मुझे चटाई पर लिटाकर राख से ढाँप देना, और उसके अंतिम शब्द मनुष्य-मात्र* के लिये ईश्वर से प्रार्थना हो; क्योंकि वह आप तो जगत्पिता की गोद में चला जायगा, परंतु मनुष्य-जाति कष्ट भोगती रहेगी।"

* इस उज्ज्वल आशा की ईसाई मृत्यु पर कही हुई आत्मश्लाघा और दबकी हुई अहंता के साथ तुलना कीजिए !

दूसरे समयों के ब्रह्मा के पुरोहित ऐसे ही थे ; उनकी जीवन-क्रिया यह थी—पहले, ईश्वरोपासना और शिक्षा; दूसरे पवित्र वेद, परमात्मा की महिमा और सनातन सचाइयों का चिंतन।

पहले वे पुरोहित होते थे, फिर उसके पश्चात् परिव्राट् बन जाते थे। इसलिये यह संसार उनके लिये एक निर्वासन और प्रायश्चित्त का स्थान था, जो उन्हें किसी दूसरे जन्म में परमानंद की प्राप्ति कराता था।

एक सज्जन, जिसके जीवन के तीस वर्ष भारत में व्यतीत हुए थे, और जिस पर ऐसे विषयों में पक्षपात का संदेह भी नहीं हो सकता, गंभीर न्याय-भाव रखने के कारण, पुरातन ब्राह्मणों के विषय में हमारे-जैसे ही विचार प्रकट करने में नहीं रुक सका।

सुनिए, पादरी डूबाइस ( Dubois ) अपनी Moeurs des Indes-नामक पुस्तक में उनके विषय में क्या कहते हैं—

'न्याय, करुणा, श्रद्धा, अनुकंपा, निःस्वार्थता आदि सभी सद्-गुण वास्तव में उनमें पाए जाते थे, और वे दूसरों को भी उपदेश और उदाहरण द्वारा उनकी शिक्षा देते थे। इसी कारण हिंदू लोग, कम-से-कम विचारों में, उन्हीं नैतिक नियमों को मानते हैं, जिनको हम मानते हैं ; और यदि वे एक दूसरे के प्रति मनुष्यों के सारे पारस्परिक कर्तव्यों का पालन नहीं करते, तो उसका कारण यह नहीं कि वे उनसे अनभिज्ञ हैं।"

ये शब्द हैं, जिनको क्राइस्ट ( ईसा ) का पुरोहित कृष्ण के पुरोहित के विषय में कहने से नहीं डरा। फिर भी उसे ब्रह्म-विद्या, दर्शन-शास्त्र और नीति के उन बहु-संख्यक ग्रंथों का पता नहीं, जो पूर्व-युग हमें दे गए हैं, और जिनको खोजने में अब हम संस्कृत के अध्ययन की सहायता से समर्थ हुए हैं।

उसके सिद्धांत, उसका धार्मिक-विश्वास निस्संदेह उसको इस

विषय में प्रशंसा के अधिक शब्द कहने से रोकता था; परंतु वह क्या कहता, यदि उसे उसके सारे विश्वास और उसकी उपासना के सारे अनुष्ठान प्राचीन ब्राह्मण-धर्म में मिल जाते ?

सरलता, त्याग और श्रद्धा के अनेक युगों के पश्चात् प्रभुता का बीज पौराणिक हिंदू-धर्म ( Brahminism ) के हृदय में उबलने लगा। जब पुरोहितों ने जाति पर एक बार आधिपत्य प्राप्त कर लिया, तब वे समझ गए कि पूर्ण प्रभुता—क्या नागरिक और क्या धार्मिक, क्या लौकिक और क्या पारलौकिक—का प्राप्त करना असंभव नहीं, और उन्होंने राजनीतिक शक्ति को प्रधान धार्मिक अधिकार के सामने झुकाने का काम आरंभ कर दिया।

इस ग्रंथ के प्रथम खंड में मैं दिखला चुका हूँ कि उन्होंने इस काम में जाति-पाँति की बाँट, और लोगों को शनैः-शनैः पाशविक अपकर्ष और अतीव निर्लज्ज धर्म-भ्रष्टता में डुबाकर किस प्रकार कृतकार्यता प्राप्त की।

मैं समान रूप से यह भी दिखा चुका हूँ कि शताब्दियों की अबाध्य प्रभुता के अनंतर वे अपने देश पर चढ़ आनेवाले शत्रुओं को रोकने में, और, विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ाने के लिये, उस जाति में पुनः जीवन का संचार करने में अशक्त हो गए, जिसको उन्होंने चिरकाल से कार्य को आरंभ करने की शक्ति, स्वतंत्रता और फलतः सारे शौर्य से वंचित कर रक्खा था।

यह उन लोगों की दुर्दशा का खेदजनक उदाहरण है, जो धर्म-बुद्धि को पुरोहित से अभिन्न समझते हुए उसकी प्रभुता के इतने अधीन हो जाते हैं कि उनमें विचार की स्वतंत्रता, आत्मा की स्वाधीनता और आत्मसम्मान कुछ भी नहीं रह जाता।

सारे धर्म में सहिष्णुता और विचार की स्वतंत्रता को रोकनेवाला एक पुरोहित ही है, जो उन्नति और स्वाधीनता के विरुद्ध यत्न करनेवाला एक योद्धा-मात्र है।

हिंदुओं को पुरोहित-वर्ग ने धर्मभ्रष्ट किया था; परंतु वह आप भी नैतिक अपकर्ष से न बच सका; और जिन शास्त्रों का प्रयोग उसने किया था, वही उसके विरुद्ध काम में लाए गए।

आजकल के ब्राह्मण-पुरोहित अपना आभास-मात्र हैं। वे अपनी दरिद्रता, अपनी निर्बलता, अपनी बुराइयों और अपनी यथार्थ जीर्णावस्था में, भूत काल की स्मृति के नीचे, कुचले गए हैं। उनमें से कुछ एक को छोड़कर शेष सबमें असीम अभिमान भरा पड़ा है, जो खेद से कहना पड़ता है, उनके अपकर्ष और निष्प्रयोजनता के साथ एकताल है।

इन लोगों में अब न आत्मसम्मान है, और न माहात्म्य। जनता की अवहेलना से यह ब्राह्मण-वर्ण अब तक चिरकाल का मिट गया होता, यदि भारत विशेष रूप से स्थिरता का ( लकीर का फ़क़ीर ) देश न होता।

यद्यपि सर्वसाधारण पर उनका अधिकार अब तक भी बड़ा है, परंतु उच्च वर्णों के समझदार लोग, इसको स्वीकार न करके, इनको एक व्यवसाय-शून्य श्रेणी से बढ़कर और कुछ नहीं समझते, जिनका भरण-पोषण और रक्षण करने के लिये वे पूर्व-संस्कार द्वारा विवश हैं।

किसी दिन सायंकाल घूमते-घूमते किसी नगर या गाँव में निकल जाइए। जहाँ से आपको ढोलक और नरसिंघे के बजने का शब्द आता सुनाई दे, वहाँ पहुँच जाइए। वहाँ बालक की उत्पत्ति, विवाह या लड़की के युवा होने का उत्सव मनाया जा रहा होगा। घर के बरांडे के नीचे और सीढ़ियों के ऊपर दृष्टिपात कीजिए। वे दरिद्र भिखारी, जो अपने आपमें पेचोताव खाते हुए उच्च स्वर से चिल्ला रहे हैं, वे ब्राह्मण हैं, जो इस संस्कार के उपलक्ष्य में पकाए हुए भात को खाने के लिये आए हैं।

यह राजस्व उनका देय है, और वे इसे समाज की सभी श्रेणियों पर लगा देते हैं। इसके विना न कोई पारिवारिक त्योहार और न कोई सार्वजनिक उत्सव हो सकता है। और, उनमें यह रीति प्रचलित है कि जिन थालियों में उन्हें भोजन दिया जाता है, उन्हें वे घर ले जाते हैं।

प्रायः ये थालियाँ लोहे या पीतल आदि किसी निकृष्ट धातु की होती हैं; परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अभिमान और दिखलावे से प्रेरित होकर कोई-कोई राजा ब्राह्मणों को सोने और चाँदी के थालों में भोजन परोसते हैं, और इस प्रयोजन के लिये लाखों रुपए ख़र्च डालते हैं। ब्राह्मण इस पर संतुष्ट होकर उदार राजा की प्रशंसा में पूर्वीय अत्युक्तियों के ढेर लगा देते हैं; परंतु बहुत कम ऐसा होता है, जब उन्हें पीछे-से अलग-अलग न करना पड़ता हो; क्योंकि धन को बाँटते समय उनमें झगड़ा हो जाता है, और आपस में डंडा चलने लगता है।

परंतु इस भ्रष्ट वर्ण के कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिन्होंने अपने को दृढ़ रूप से इससे जुदा कर लिया है। कुछ ब्राह्मण पुरातन धर्म की ओर संपूर्ण रूप से लौट आए हैं, और इस प्रकार उन्होंने अपने अधिकार के खो जाने पर अपने को सांत्वना दी है। दक्षिण-भारत में आप-को बहुत-से ऐसे ब्राह्मण-पुरोहित मिलेंगे, जो अपना सारा समय पठन-पाठन और ईश्वरोपासना में ही व्यतीत करते हैं। वे लोगों के सामने, जो उन्हें ऋषियों के समान पूजते हैं, सभी सद्‌गुणों का अतीव पूर्ण उदाहरण उपस्थित करते हैं। कुछ एक ने इससे भी बढ़कर छलाँग मारी है। उन्होंने माता-पिता तथा मित्रों को छोड़ दिया है, और वर्तमान दुःखों के विरुद्ध सिर उठाकर वे मनुष्य-मात्र की समता के प्रचार तथा विदेशियों के विरोध द्वारा स्वदेश के पुनरुद्धार में लग गए हैं।

योरपियनों के संसर्ग से उन्होंने यह मालूम कर लिया है कि हमारी

दुर्बलता और हीनता का कारण हमारी बद्ध जड़ता और जाति-पाँति की बाँट ही है। वे दासता के जुए को उतार फेकने के लिये बड़े व्यग्र हो रहे हैं। इसलिये वे अपने देश-बंधुओं की नाड़ियों में बहनेवाले उत्साहहीन रक्त को पुनर्जीवित करने और उनको सामान्य शत्रु के विरुद्ध मिलाने का यत्न कर रहे हैं।

ये सब अशक्त प्रयत्न हैं। इनका फल शायद भविष्य में कुछ निकले; वर्तमान काल में तो इनके कारण इनके करनेवालों पर सारी जाति उँगली उठा रही है, वे अपने परिवारों से निकाले जा रहे हैं, और उनकी संतान तक उनसे अपना संबंध तोड़ रही है।

ब्राह्मणों के साथ-साथ क्रमशः एक और वर्ण भी उठ रहा है। यह पहले ही दक्षिण-भारत के एक बड़े भाग पर फैला हुआ है। किसी दिन लौकिक आधिपत्य में ब्राह्मणों से बढ़ जाने की इसकी महत्त्वाकांक्षा बड़ी सावधानी से छिपाई होने पर भी प्रकट है। उसका नाम कोमुती ( Commouty ) जाति है। यह धर्मोन्मत्त लोगों का एक समूह है, जो अपने स्वार्थ के लिये देश में पौराणिक हिंदू-धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहा है। इसने वास्तविक प्रभाव डालना आरंभ कर दिया है।

केवल शाक-भात पर निर्वाह करने और अपने कठिन आचार के दिखलावे से जनता को ठगने से इस जाति के लोगों का धन-बल सभी देशों में जल्दी ही बहुत बढ़ जायगा।

सारा वाणिज्य उन्हीं के हाथ में है ; वे बड़ी-बड़ी सभाओं द्वारा एक दूसरे को सहारा देते हैं, पूँजी इकट्ठी करते और व्यवसाय को एकतंत्री करते हैं। निश्चय ही वे एक भयंकर शक्ति बन जायँ, यदि अँगरेज़ कर के बहाने उनको गूँदते न रहें; क्योंकि उनका उद्देश्य भारत में फिर पूर्ण रूप से वही पुरोहितशाही स्थापित करना है, जो इस देश को इतनी प्यारी है।

ब्राह्मण-पुरोहितों ने इस अभागे देश को ऐसा पशु बना दिया है कि यहाँ की जनता, यदि इसे अपने आप पर छोड़ दिया जाय, अपनी सारी शक्ति किसी ऐसे आंदोलन में लगा देगी, जो इसे फिर ब्राह्मण-शाही के अधीन कर देगा—यदि यह दशा न होती तो आज इँगलैंड का कठोर हाथ इस पर शासन न करता, और न भविष्य में ही इसके भाग्य में रूस द्वारा—जो एक शताब्दि से भी अधिक काल से हिमालय के ऊपर से भारत के उर्वर मैदानों को ईर्ष्या-पूर्ण दृष्टि से देख रहा है, और उनको लेने के लिये अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है—शासित होना लिखा जाता।

मैं इस अध्याय में उस घोर धर्म-भ्रष्टता का अधिक वर्णन नहीं करूँगा, जिसमें याजकीय वर्गों ने, धर्म-बुद्धि का दुरुपयोग करके, भारत को फँसा दिया है। इस विषय की अधिक गहरी खोज मैं पुरातन पूजा को निकालकर उसका स्थान आप लेनेवाले संस्कारों और पर्वों का वर्णन करते समय करूँगा।

# बीसवाँ अध्याय

## प्राचीन पौराणिक धर्म के यज्ञ और संस्कार

आधुनिक धर्मों की तरह, प्राचीन धर्म में भी पूजा की दो रीतियाँ थीं—

एक रीति से, यज्ञों और विधियों के नाम से परमेश्वर के आगे मनुष्य प्रार्थना और व्रत करते थे।

दूसरी रीति से, महायज्ञों के नाम से, आस्तिक लोगों को विशेष कर्म, विशेष प्रायश्चित्त या शुद्धियाँ करनी पड़ती हैं। सारांश यह कि इससे उनका आध्यात्मिक जीवन, उनका परमेश्वर के साथ संबंध, सुव्यवस्थित होता है।

मैं अभी यह दिखलाऊँगा कि पुरातन पौराणिक हिंदू-धर्म में कृष्ण के उत्तराधिकारियों ने कौन-कौन-से यज्ञों और संस्कारों की व्यवस्था की थी।

इस पुस्तक के प्रथम खंड में मैंने इस प्रकार लिखा है—

सर्वमेध-यज्ञ

वेदों के कथनानुसार, ब्रह्मा ने अपने को सृष्टि के लिये बलिदान कर दिया। परमेश्वर ने हमारे पुनरुद्धार के लिये और हमें हमारे दिव्य-स्रोत की ओर ले जाने के लिये न केवल अवतार ही धारण किया, और कष्ट ही सहन किए, वरन् उसने हमें अस्तित्व में लाने के लिये अपने आपका बलिदान भी कर दिया। हंबोल्ट (M. de Humboldt) महाशय कहते हैं—"यह कितना श्रेष्ठ विचार है ❀, जिसे हम सभी प्राचीन धर्मपुस्तकों में वर्णित पाते हैं।"

---

❀ मनुष्य की अभिमान से तनी हुई मूर्खता, अविद्या और वृथाडंबर को परितुष्ट करने के लिये ईश्वर की आत्महत्या की फिर यह विकट कल्पना ?

इसलिये पवित्र पुस्तकें कहती हैं—

"ब्रह्मा आप ही यजमान और आप ही बलि हैं, इसलिये जो याजक प्रतिदिन प्रातःकाल सर्वमेध यज्ञ ( सार्वत्रिक यज्ञ, सृष्टि का सांकेतिक ) कराता है, वह परमेश्वर को नैवेद्य देने से अपने को दिव्य यजमान, अर्थात् ब्रह्मा, के साथ मिला देता है; प्रत्युत अपने पुत्र कृष्ण के रूप में जो हमारी मुक्ति के लिये, पृथ्वी पर मरने आया था, बलि बनकर स्वयं ब्रह्मा ही इस गंभीर यज्ञ को संपन्न करता है।"

इस प्रकार इस सर्वमेध यज्ञ में याजक वेदी पर सृष्टि के और कृष्णावतार के सम्मान ईश्वर को नैवेद्य चढ़ाता और प्रार्थना करता है।

हम शीघ्र ही रोमन कैथोलिक ईसाई कल्पना को मास (Mass) के यज्ञ के साथ यही सांकेतिक अर्थ लगाते हुए पावेंगे।

ब्राह्मणों के धर्म में यह प्रक्रिया सबसे अधिक महत्त्व रखती है। जब तक याजक प्रतिदिन अपने दोषों की पूरी परीक्षा और विधि-पूर्वक उनकी शुद्धि न कर ले, वह आगे नहीं चल सकता।

दूसरे यज्ञ सब गौण हैं; वे कभी तो स्वर्ग में जानेवाले धर्मियों के सम्मान के लिये, और कभी फ़सलों और फलों की रक्षा के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करने के लिये किए जाते हैं।

यज्ञ की सामग्री यह होती है—मंत्रपूत तैल, शोधित जल, धूप और कुछ अन्य सुगंधियाँ, जो सोने की तिपाई पर रखकर वेदी पर जलाई जाती हैं।

नैवेद्य घृत से चुपड़ी हुई चावल के आटे की रोटी होती है, जिसे ब्राह्मण ( याजक ) ईश्वर को चढ़ाता और मंत्रों द्वारा पवित्र करने के पश्चात् खा लेता है। बाद को जब पौराणिक धर्म ने विशुद्ध सिद्धांतों और सरल यजनों को केवल दीक्षितों और पारदर्शियों के

लिये ही परिरक्षित कर दिया, और जनता वर्णों में विभक्त कर दी गई, तब नीच लोग पशुओं के बलिदान द्वारा ईश्वर-पूजा करने लगे। यज्ञ में मारे हुए ये पशु, संस्कार के उपरांत, सहायकों में बाँट दिए जाते थे, और इस भोजन से उनके छोटे-छोटे और अज्ञान-पूर्वक किए हुए पाप दूर हो जाते थे।

इस दूसरे काल से ही मिसर ने शिक्षा पाई थी, और मूसा ने पूजा की विधियाँ सीखी थीं। हम इन सब बातों का पहले ही पर्याप्त वर्णन कर चुके हैं, इसलिये अब दुबारा उनका उल्लेख न करेंगे।

### संस्कार

**जल से नवजात बालक की शुद्धि**

जन्म के उपरांत तीन दिन के अंदर-अंदर बालक पर जल छिड़कना, अर्थात् उसे पवित्र गंगा-जल द्वारा, अथवा यदि गंगा-जल पास न हो, तो देवालय में ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत शुद्धि के जल से शुद्ध करना चाहिए।

यह धार्मिक रीति भारत में बहुत पुरानी है; यह वैदिक काल से चली आ रही है। स्वयं कृष्ण ने अपनी मृत्यु के पहले गंगा-स्नान के लिये आकर इसकी प्रतिष्ठा की थी। अभी तक हिंदुओं में इसका मान है, व इसे ठीक प्राचीन ढंग से मनाते हैं।

भारत के धर्म-ग्रंथ उच्च स्वर से कह रहे हैं कि बालक पर जल छिड़कने का तात्पर्य मूल-अपराध के धब्बे को धो डालना है।

जो भी हो, यदि हम इसे एक सादा स्नान समझें—यह व्यवस्था धर्म की ठहराई हुई है, और ब्राह्मण द्वारा संपन्न होती है—तो इतनी ही बात इसे संस्कारों में गिनने के लिये पर्याप्त है।

इसके अतिरिक्त यह धार्मिक रीति जुदा नहीं; संस्कार का जल, जिसने बच्चे को पवित्र किया है, उसके सारे जीवन में, जब कभी इसका प्रयोग किया जाता है, सदा उसे शुद्ध करता रहता है।

निस्संदेह ईसा से सारे पूर्वी धर्मों ने प्रक्षालन की पद्धति ग्रहण की है।

उपनयन-संस्कार

इस विषय पर कोई टिप्पणी न करते हुए हम यहाँ दो उद्धरण ही देते हैं, एक वेद से और दूसरा मनु से—

अथर्ववेद—

"सोलह वर्ष की आयु के पहले, पवित्र तेल के विलेपन, यज्ञोपवीत और सावित्री-मंत्र द्वारा जो अपनी शुद्धि को दृढ़ नहीं करता, उसे वेद-निंदक समझकर जाति से निकाल देना चाहिए।"

जनता के वर्णों में विभाग और प्राचीन सिद्धांतों के विपर्यय के होते भी ब्राह्मणों ने इस संस्कार को सुरक्षित रक्खा, और इसका अधिकार शूद्रों, दासों और पतितों के सिवा और सब श्रेणियों को दिया।

मनुस्मृति, जो उनकी स्वार्थ-सिद्धि के लिये संक्षिप्त और विकृत की गई है, इस प्रकार कहती है (अध्याय २, श्लोक ३८-३९)—

"सोलह वर्ष पर्यंत ब्राह्मण का, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय की और चौबीस वर्ष तक वैश्य की सावित्री द्वारा पवित्र किए हुए उपनयन को ग्रहण करने की अवधि है।"

"इन अवधियों के उपरांत इन तीनों वर्णों के युवक उपनयन-संस्कार न होने से दीक्षा के अयोग्य हो जाते हैं, और बहिष्कृत (व्रात्य) होकर शिष्टों द्वारा निंदित ठहरते हैं।"

इन दो पाठों को मिलाने से हमें मालूम होता है कि यह उपनयन संस्कार बच्चे के जन्म पर किए जानेवाले पहले संस्कार, का अर्थात् जन्म के अनंतर तीन दिन के अंदर-अंदर जल द्वारा शुद्धि के दृढ़ी करण, का सातत्य था।

शुद्धि और स्नान— पापप्रकाशन—

पौराणिक हिंदू-धर्म के अनुसार, पृथ्वी पर रहने से मनुष्य में कई

प्रकार के दोष—कुछ तो आत्मा में, और कुछ शरीर में—आ जाते हैं।

शरीर के दूषण, अपनी घोरता के अनुसार, कुछ तो सादे पानी से, कुछ शुद्धि के जल से और कुछ संयम तथा निवृत्ति से दूर हो जाते हैं।

इस विषय पर हम यह कह देना चाहते हैं कि उन यातनाओं की कल्पना करना बड़ा कठिन है, जो तपस्वियों ने अपने लिये नियत की थीं, और जिनको उनके उत्तराधिकारी फ़क़ीर भारत में अभी तक अपने लिये कर्तव्य ठहराते हैं।

आत्मा के मैल प्रार्थना से, प्रायश्चित्त से, गंगा की तथा उन स्थानों की यात्रा से, जो कृष्ण के जन्म तथा मृत्यु द्वारा पवित्र हो चुके हैं, धुल जाते हैं।

यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि इस चूस लेने-वाले धर्म के राज्य में, जिसने अंत को अपने पारदर्शियों के आत्मा और शरीर, दोनों पर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया कि उनके दैनिक जीवन के अतीव क्षुद्र व्यवहारों को नियमबद्ध कर दिया, मनुष्य को अपने दोषों का विचार करने की उससे बढ़कर आज्ञा न थी, जितनी कि उसे वेद पर शंका करने की थी।

क्योंकि मनु ( अध्याय पहला ) कहता है—

"ब्राह्मण का जन्म न्याय का सनातन अवतार है; ब्राह्मण का जन्म न्याय की व्यवस्था के लिये होता है; क्योंकि अपने विचारों में वह अपने को ईश्वर से मिला देता है।"

"यह ब्राह्मण, संसार में आने से, पृथ्वी की उच्चतम पंक्ति में स्थान पाता है; वह सब प्राणियों का सर्वोपरि स्वामी है। नागरिक और धार्मिक नियमों के भांडारों की रक्षा का ध्यान रखना उसी का काम है।"

धर्म का निर्णेता होने से ब्राह्मण सभी के पापों और सारे अपराधों को जानता था, और अपराधी को बताता था कि प्रायश्चित्त किस प्रकार करने चाहिए।

प्रति दिन प्रातःकाल, यज्ञ के उपरांत, जो लोग अपने को दूषणार्ह अनुभव करते, वे देवालय में पवित्र सरोवर के निकट इकट्ठे हो जाते, और वहाँ ब्राह्मणों की पंचायत में सबसे बूढ़े ब्राह्मण के सामने अपने अपराधों का अंगीकार करके अपने लिये दंडाज्ञा प्राप्त करते।

अपने पापों का वर्णन करने के उपरांत पाप-प्रकाशन का सूत्र इस प्रकार होता था—

"पवित्र ब्राह्मणो, ईश्वरीय श्रुति के रक्षको, आप प्रायश्चित्त के संस्कार जानते हैं। मुझे बताइए कि मैं क्या करूँ।"

प्रधान ब्राह्मण इस प्रकार कहता था—

"परमात्मा द्वारा प्रबुद्ध होकर हमने निश्चय किया है, और तुम्हें इस-इस प्रकार करना चाहिए ...।"

तब, अपराध की घोरता के अनुसार, यह धर्म-सभा स्नान, उपवास, संयम, अर्थदंड, ईश्वर के लिये नैवेद्य, ईश्वर-प्रर्थना या तीर्थ-यात्रा का दंड देती थी।

जो पाप किसी भी प्रायश्चित्त से दूर न हो सकते थे ( देखिए प्रथम खंड का पाँचवाँ अध्याय ), उनके लिये जाति से आंशिक अथवा पूर्ण बहिष्कार का दंड मिलता था। जाति से निकाले हुए लोग ( व्रात्य ) ही पतित होकर अस्पृश्य बने।

ऊपर दिए सूत्र के 'संस्कार' शब्द की व्याख्या मनु के टीकाकार, प्राग्देशीय-भाषा-पंडित लायसीलीउर डस्लान चंपस ( Loiseleur Deslonchamps ) की टीका से बढ़कर और कहीं न मिलेगी।

वह कहता है—

"संस्कार विशेष रूप से पहले तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य—के लिये पावन प्रक्रियाएँ होती हैं। विवाह अंतिम संस्कार है।"

इसलिये हम प्रकट रूप से अपने पापों का स्वीकार करने के उपरांत ब्राह्मण-पुरोहित द्वारा हिंदुओं के पापमोचन को संस्कार के नाम से पुकारने में सचाई पर हैं।

हम आपको शीघ्र ही आरंभिक काल के ईसाइयों को यह रवाज ग्रहण करते दिखावेंगे। निस्संदेह उनके पहले उपदेष्टाओं ने मिसर और पूर्व में भारत के अनेक ऐतिह्यों का अध्ययन किया था।

पौराणिक धर्म में विवाह भी एक संस्कार माना जाता था; वेद का नीचे दिया वाक्य इसकी इस प्रकार प्रतिष्ठा करता है—

"ब्रह्मा ने मनुष्य-जाति की उत्पत्ति के लिये पुरुष और स्त्री को बनाकर विवाह को उत्पन्न किया; दूसरे, ईश्वरीय कार्य की स्मृति में स्त्री-पुरुष के संयोग को न्याय ठहराने के लिये भी, ब्राह्मण के मंत्रों द्वारा इसका पवित्र किया जाना आवश्यक है।"

लायसीलीउर डसलान चंपस ( Loiseleur Deslonchamps ) की ऊपर उद्धृत टीका के अनुसार, जिसको हम ठीक मानते हैं, विवाह अंतिम संस्कार है; क्योंकि यह बात बड़ी विचित्र है कि मनुष्य की मरणासन्न* अवस्था में हिंदू ब्राह्मण प्रत्यक्ष रूप से बीच-बचाव नहीं करता। ऐसी दशाओं में पौराणिक धर्म-कार्य करने का अधिकार, रोगी के सबसे बड़े पुत्र या निकटतम संबंधी को दे देता था, और धर्म-पुस्तकों के अनुसार अंत्येष्टि-कर्म का संपन्न करना उसका कर्तव्य ठहराया जाता था।

"मृत्यु के समय पुत्र की प्रार्थना ही पिता के लिये स्वर्ग का द्वार

* ईसाई याजक ब्राह्मण-याजकों से चालाक निकले। उन्होंने मरणासन्न के बिछौने को अपने परिश्रम के लिये अतीव उपजाऊ क्षेत्र पाया।

खोलती है।" संक्षेप से कहें, तो पौराणिक धर्म के संस्कारों की संख्या पाँच है—

पहला—परमेश्वर के सभी सेवकों में से संस्कृत सेवक, पुरोहित के तेज सबना। पुरातन धर्म में ब्राह्मण को किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी, इसका अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि यह संस्कार किसी प्रकार संपन्न किया जाता था।

दूसरा—नवजात का गंगा-जल अथवा शुद्धि के जल से स्नान।

तीसरा—ब्राह्मण का सोलह वर्ष, क्षत्रिय का बाईस वर्ष और वैश्य का चौबीस वर्ष की आयु में उपनयन, अर्थात् नवजात के जन्म पर जो शुद्धि की गई थी, उसका दृढ़ीकरण।

चौथा—प्रकट रूप से पापों का अंगीकार करने से पापमोचन।

पाँचवाँ—विवाह।

इस अंतिम संस्कार के विषय में मैंने बहुत कम कहा है। इसका कारण स्पष्ट है।

यह बात निर्विवाद है; क्योंकि यह एक ऐसी मोटी सचाई है, जिसको सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं कि सभी प्राचीन समाज विवाह को एक धार्मिक बंधन समझते थे।

---

# इक्कीसवाँ अध्याय

## आधुनिक समय के पौराणिक उत्सव और यज्ञ

आजकल के हिंदुओं को अपने प्राचीन धर्म का केवल हलका-सा संस्कार है। ब्राह्मण लोग, श्रेष्ठतम और पवित्रतम सिद्धांतों को स्वेच्छानुसार बिगाड़ने के उपरांत, स्वयं भी अपनी बारी मे उस नैतिक अपकर्ष में डूब गए हैं, जिसको उन्होंने अपने अधिकार की रक्षा के लिये तैयार किया था*। जब बाहर के आक्रमणों ने उनकी राजनीतिक शक्ति को नष्ट कर डाला, तब उन्होंने अपने मंदिरों की शरण ली, अपने उत्सवों और यज्ञों का संख्या को बढ़ाया, और अपने धार्मिक अधिकार को बनाए रखने के लिये आडंबर और शोभा में एक दूसरे से स्पर्धा करने लगे।

हिंदू-उत्सव के वर्णन मे यह मालूम करना दिलचस्पी से ख़ाली न होगा कि ब्राह्मणों ने, अपनी प्रभुता के दिनों में सारी नागरिक और धार्मिक स्वतंत्रता का बहिष्कार करके, जनता को कहाँ तक दासता के गहरे गर्त में गिरा दिया था, और वह भी ईश्वर के नाम पर, जो

---

* पौराणिक धर्म का भ्रष्टता चाहे कितनी ही क्यो न हो, परंतु इस दयालु और अतिपानकी सिद्धांत का गढना मानव-भ्रष्टशीलता-रूपी खेती के पश्चिमी किसानो के लिये ही बाकी रह गया था कि अतीव घोर पापी ("चाहे तुम्हारा पाप इतना घोर हो, इत्यादि-इत्यादि।") यदि अंत मे पश्चात्ताप कर ले (जैसा कि अदम्य अंत:करण के कोड़े खाकर बूढ़े पापी सदा ही करने लगते है), तो वह उस निश्छल, ओछे और प्राय: तिरस्कार के योग्य "धर्मात्मा से जिसे पश्चात्ताप का प्रयोजन नहीं", निन्नानवे बार अधिक ईश्वर को प्यारा है।

एशिया की तरह योरप में भी, सभी याजक-वर्गों का भारी बहाना बना रहा है।

उसी स्वतंत्रता का हमारे यहाँ से भी बहिष्कार कर दीजिए, और फिर देखिए कि यदि हम ठीक पूर्वी अपकर्ष के-से अतलतल में नहीं गिरते, तो इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि हम मध्य-कालीन दासता, राजा और प्रजा की धार्मिक पराधीनता, पाखंड शासन-सभा के प्रधान टार्क्यूमेडा ( Torquemada ) और हाथ में सूली का चित्र लेकर यातना पहुँचानेवाले उसके जल्लादों के हाथ में तो अवश्य पड़ जायँगे।

हिंदू-धर्म के उत्सवों की अतीव सरल और नाम-मात्र सूची देना भी मेरे लिये सर्वथा असंभव है। परंतु वे सब एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, और जिस मंदिर में वे मनाए जाते हैं, उसके ऐश्वर्य, और भक्तों की चढ़ाई हुई भेंट के अनुसार उनके साथ थोड़ा या बहुत आडंबर और गंभीरता होती है।

देवी-देवतों और वीरों की संख्या इतनी बढ़ा दी गई है कि यदि उनके जत्थे बनाकर भी, जितनों का एक दिन में गुज़ारना संभव है, उतने प्रतिदिन गुज़ार दिए जायँ, तो भी वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन उन सबकी पूजा के लिये अपर्याप्त हैं।

पौराणिक हिंदू-धर्म ईश्वर की कल्पना को प्रायः पूर्ण रूप से खो बैठा है, और उसकी पूजा के स्थान में उसने देवतों और ऋषियों की पूजा जारी कर दी है। जो धर्म तर्क की कसौटी पर चढ़ने से डरते हैं, उनका ऐसा ही अंत होना अनिवार्य है।

हम उदाहरण की रीति से दक्षिण-भारत के अंतर्गत चलंब्रम ( चिदाम्ब्रप ? ) के उत्सव को लेते हैं, जो वर्तमान कुसंस्कारों के बीच में भी अभी तक उच्चता का रूप रक्खे हुए है।

यह उत्सव मई मास की अमावास्या के पाँच दिन पूर्व आरंभ हो-कर उसके पाँच दिन उपरांत समाप्त होता है। इस सारी अवधि में

भारत के सभी भागों से सहायता के लिये आए हुए यात्रियों तथा भक्तों के अनंत समूह को एक भी मिनट के लिये विश्राम और शांति नहीं मिलती।

पहले आठ दिन मंदिर के भीतरी भाग में बिताए जाते हैं। मंदिर के भीतर केवल उच्च वर्ण के हिंदुओं को ही जाने की आज्ञा होती है। साधारण जनता मंदिर के आँगन में पड़ी दूर से ही संगीत और पवित्र मंत्रों का उच्चारण सुनकर संतुष्ट रहती है।

पहला दिन शिव के अर्पण है, और सृष्टि पर उसके उपकारों को मनाने में ही लगाया जाता है। उसी के प्रताप से प्रलय से वह अंकुर निकलता है, जो मनुष्य के लिये उपयोगी चावल, सुगंधित पुष्प और अपने पल्लवों से पृथ्वी की शोभा बढ़ानेवाले विशाल वृक्ष उत्पन्न करता है।

रात-भर वे प्रकृति और परमेश्वर के गुह्य संयोग के गीत गाते और महात्मा कार्त्तिकेय ( Cartignay ) के स्तोत्र से बाल-रवि को प्रणाम करते हैं। इस महात्मा की प्रार्थना से ही पृथ्वी का कायमोंग असुर ( Kayamongasaura ) [ तारकासुर ? ] से छुटकारा हुआ था; क्योंकि यह हाथी के सिरवाले दैत्य के रूप में मनुष्य-जाति को सताने आया था।

दूसरा दिन पूर्वजों की आत्माओं के लिये प्रार्थना करने में लगाया जाता है। रात को उन्हें भात, मधु, घृत और फल भेंट किए जाते हैं। एक बार पितरों को देने से इन भोज्यों में सब मलिनताओं को दूर कर देने का गुण आ जाता है।

वे सब पदार्थ सहायकों में बाँट दिए जाते हैं। उनको, इन्हें खाने के उपरांत, चट-पट जाकर पवित्र सरोवर में डुबकी लगानी पड़ती है। यह सरोवर मंदिर के ही एक पार्श्व में होता है।

तीसरा दिन पोलियारों ( Paulears ) अर्थात् ग्रामों

और खेतों के रक्षक देवतों के लिये, जो एक प्रकार के गृह-देवता होते हैं, यांचा में व्यतीत होता है। रात को भक्तों द्वारा लाई हुई इन देवतों की प्रतिमाओं की स्तुति की जाती है। फिर भक्तजन उनको उठाकर अपने घरों में या अपने खेतों की सीमाओं पर रख देते हैं, ताकि वे उनकी रक्षा करते रहें।

चौथा दिन और उसका रात कृष्णा ( Tir cangv ? ) नदी के कीर्तन के लिये रक्खे जाते हैं। जो लोग दरिद्रता या दुर्बलता के कारण अपने जीवन में कम-से-कम एक बार भी गंगा की यात्रा करने में असमर्थ हैं, उनके लिये कृष्णा का जल गंगा-जल का-सा ही पावन गुण रखता है।

पाँचवाँ दिन चढ़ावा चढ़ाने का है। उत्सुक भक्त जत्थे-के-जत्थे बाँधे चावल, तैल, और चंदन लेकर डेवढ़ी में आ घुसते हैं। इस चंदन का बुरादा बनाकर सोने की तिपाइयों और बहुमूल्य पात्रों में जलाया जाता है।

धनाढ्य हिंदुओं में इस बात की स्पर्द्धा उत्पन्न करने की विद्या में कि वे उत्तमोत्तम उपहार देने में एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करें, ब्राह्मण लोग बहुत निपुण हैं।

छठे दिन वे प्रार्थना करते हैं कि जिन लोगों ने दान करने में विशेष नाम पाया है, उनके कार्यों में कोई पिशाच विघ्न-बाधा न उपस्थित करे। और, अगले दिन, सूर्योदय के साथ ही, एक ब्राह्मण इस बात की घोषणा करता है कि इस वर्ष के कौन-कौन-से दिन शुभ और कौन-कौन-से अशुभ हैं।

सातवाँ दिन, जो विशेष रूप से उन स्त्रियों के लिये है, जो अभी तक गर्भवती नहीं हुईं, उन्हें सुखी संतान देने के लिये शिव से प्रार्थना करने में व्यतीत किया जाता है। जो स्त्रियाँ अपने बाँझपन की समाप्ति की विशेष रूप से अभिलाषिणी होती हैं, उन्हें सारी रात, ईश्वर की रक्षा में, मंदिर में बितानी पड़ती है!

तब ब्राह्मण लोग अंधकार से, और उस स्थान से उत्तेजित होनेवाले उद्वेग से लाभ उठा—सब मिलकर उन स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते और वह रात भैरवी-चक्र और कामादेश में व्यतीत करते हैं। तब वे इन डरपोक और सुगमता से क़ाबू में आ जानेवाली श्रद्धालु स्त्रियों के मन में यह विश्वास बैठाते हैं कि रात को उनके पास शिव के भेजे हुए देवता आए थे।

बहुत बार ऐसा भी होता है कि परदेसी लोग इन ब्राह्मणों को बहुत-सा धन देकर उस रात गुप्त रीति से मंदिर में चले जाते हैं, और उच्चतम वर्ण की तथा रूपवती स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं।

आठवाँ दिन सारा उस विकट रथ को सँवारने में व्यतीत होता है, जिसमें अगले दिन शिव की भारी मूर्ति को रखकर मंदिर की यात्रा कराई जाती है। इस रथ को शिव के पुजारी और भक्त ही खींचते हैं।

नवें दिन, सवेरे ग्यारह बजे, तोपों, बाजों और अग्निक्रीड़ा का शब्द होते ही दो सहस्र हिंदू जमघट में से दौड़कर देवता के रथ के साथ जा जुतते हैं। यह रथ स्तूप के समान ऊँचा और रूपकात्मक प्रतिमाओं से आच्छादित होता है।

अकस्मात् एक अमित जयघोष वायुमंडल को कंपायमान कर देता है। नर्तकियाँ भीड़ को पीछे हटाती हुई नाचती चलती हैं। पुरोहित पवित्र मंत्रों को मधुर स्वर से गाते जाते हैं। सहस्रों धूपदानियों से उठनेवाला सुगंधित धुँआ वायुमंडल को भर देता है। रथ अपनी जयसूचक-यात्रा आरंभ करता है। एक, दो, तीन जयघोष सुनाई देते हैं, जनसमूह वाह-वाह की ध्वनि करता है। यह ध्वनि कुछ ऐसे साधुओं पर की जाती है, जो देवता के रथ के नीचे लेटकर अपने को कुचल डालने के लिये आते हैं। पहियों के नीचे से रक्त की

धारा बहने लगती है, और अपने प्राणों को उसी जोखिम में डाल-कर भक्त लोग कपड़े का टुकड़ा ले उस नर-रक्त में भिगोने के लिये दौड़ते हैं, और उसको एक बहुमूल्य वस्तु समझकर बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखते हैं।

जब रथ मंदिर के गिर्द घूम चुकता है, तो उस दिन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, और दूसरे दिन की रात के महान् उत्सव की तैयारी के लिये कुछ विश्राम की आवश्यकता होती है।

साधुओं और संन्यासियों के दर्शनार्थ मंदिरों के आँगनों और हातों में प्रवेश करने का परदेसी के लिये यही समय है।

संन्यासी भिखारी यात्री होते हैं, जिन्होंने अपने एक-से-एक विचित्र व्रतों को पूरा करने के लिये गंगा की यात्रा की होती है।

किसी ने तो अपने शरीर के साथ दूरी को मापने के लिये गंगा की यात्रा की होती है। किसी ने अपने हाथों और घुटनों के बल चल-कर इस यात्रा को समाप्त किया होता है। फिर कई ऐसे भी होते हैं, जो अपने दोनों पैरों को इकट्ठा बाँधकर उछलते-उछलते ही वहाँ तक पहुँचे हैं, या जो यात्रा में केवल हर तीसरे दिन ही खाते और सोते रहे हैं। याद रहे कि चलंब्रम से गंगा की निकटतम धारा कोई छः सौ कोस है।

परंतु यह तो तुच्छ है, साधुओं का धर्मोन्माद इन सब लोगों की मूर्खता से भी बहुत बढ़ा हुआ है। ये साधु अगम्य रूप से बैठे अत्यंत भीषण वेदनाओं और अतीव भयानक यातनाओं के बीच हँसते रहते हैं। उस पहिए पर दृष्टिपात कीजिए, जो बड़े वेग से घूम रहा है, और जिसके साथ लगे हुए पाँच-छः मनुष्य अपने रक्त से पृथ्वी को लाल करते जा रहे हैं। ये साधु हैं, जिन्होंने अपनी जंघा, अपने नितंब, अथवा अपने कंधे में से लोहे के काँटे गुज़ारकर अपने को लट-काया हुआ है।

उनके पास ही लोहे की लंबी-लंबी नोकों से जड़े हुए पटड़े पर एक और साधु बैठा है, ये नोकें उसके मांस में घुसी हुई हैं।

तनिक उस मनुष्य को भी देखिए, जो एक नली की सहायता से रक़ाबी में से थोड़ा-थोड़ा सूप चूस रहा है। उसने मौन-व्रत धारण किया है, और अपने इस व्रत का तोड़ना असंभव बना देने के लिये उसने अपने होठों को गरम-गरम लोहे से जलाकर इकट्ठा सी दिया है, और मध्य में केवल एक छोटा-सा छिद्र रक्खा है, जिसमें से केवल तरल भोजन ही अंदर जा सकता है।

उसका पड़ोसी साधु थाली में से पशुवत् ही भोजन खा सकता है। कई वर्षों से वह अपने हाथों से काम लेने में अशक्त है; क्योंकि उसने उनको नारियल की रस्सी से इस प्रकार इकट्ठा बाँधा है कि दाएँ हाथ के नाख़ून, बाएँ हाथ की हथेली में और बाएँ हाथ के दाएँ हाथ की हथेली में घुस गए हैं। नाख़ून बढ़ते-बढ़ते मांस और पट्ठों को चीरकर पार हो गए हैं, और दोनों हाथ एक दूसरे के साथ जुड़ गए हैं।

कैसा भयंकर अंगच्छेदन है! दो पग और चलकर हम इस दृश्य से घबरा उठेंगे। परंतु चलो ज़रा आगे चलें। वह देखिए, इससे भी अधिक भीषण दंड भोगा जा रहा है; पर न कोई शिकायत है और न रोना-पीटना। कहना पड़ता है कि इन लोगों ने दुःख को जीत लिया है।

पृथ्वी पर लेटा हुआ वह जड़ पिंड क्या है, जो यदि कभी-कभी साँस लेता न दिखाई देता, तो हम उसे निर्जीव ही समझ लेते? इस की बाँहें और टाँगें मरोड़ी हुई हैं। इसके न नाक है और न कान। इसके होंठ मसूड़ों के किनारों तक कटे हुए हैं, जिससे दाँत बिलकुल नंगे दिखाई देते हैं। कैसा भीषण दृश्य है! इस लोथ के जीभ नहीं। यह मृत्यु का सिर दिखाई देता है। क्या यह सचमुच मनुष्य है?

पास ही इस स्त्री को देखिए, जिसमें स्त्री-चिह्न कोई नहीं, उसने इन सब चिह्नों को जला दिया या काट डाला है। उसका शरीर एक विस्तीर्ण व्रण-मात्र है—आधा गला हुआ है और कीड़े उसे खा रहे हैं।

एक और साधु धधकते हुए कोयलों के बिछौने पर लेटा हुआ है। वह इनको अपने रक्त और मांस से बुझावेगा।

तालाब के निकट, जो देवतों और ऋषियों की मूर्तियों को धोने और पवित्र स्नान के काम आता है, एक साधु लड़कियों की राशि के नीचे, जो कम-से-कम दो तीन सौ किलोग्राम ( १ किलोग्राम प्रायः एक सेर के बराबर होता है—अनुवादक ) होगी, चात्कार कर रहा है। एक और साधु गले तक पृथ्वी में दबा हुआ सूर्य की चिलचिलाती धूप को उस्तरे से ख़ूब मुँड़ी हुए खोपड़ी पर झेल रहा है।

आओ, अब हम यहीं ठहर जायँ। आँखें थक गई हैं, और लेखनी ऐसे दृश्यों का वर्णन करने से इनकार करती है।

तब लोगों को ऐसी-ऐसी घोर यातनाओं में पड़ने के लिये कौन विवश कर सकता है? यदि वे वस्तुतः यह समझते हैं कि हम इस प्रकार अपने को परमेश्वर की दृष्टि में प्रिय बनाते हैं, तो यह कैसा धर्मोन्माद और अनर्थक श्रद्धा है! यदि यह केवल इंद्रजाल है, तो कैसा आत्मसंयम और निर्भीकता है!

कहते हैं, ब्राह्मण लोग, जिनका उद्देश्य ये साधु जनता को चकित-स्तंभित करके पूरा करते हैं, इन अभागों को इन कामों के लिये बहुत छोटी आयु से ही सिखाते हैं, और उनको निर्जन स्थान में रखकर, उन्हें अमर पारितोषिक का वचन देकर, उनके शरीर को पशु-तुल्य जघन्य और उनकी आत्मा को धर्मोन्मत्त बना देते हैं।

दसवें दिन की रात को उत्सव का अंत होता है। इस दिन शिव की मूर्ति देवालय के तालाब पर विहार करती, और इसकी सात बार परिक्रमा करती है।

मैं इस दृश्य की आश्चर्य-जनक और विषम विलक्षणता का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सका। यह लाखों हाथों से चलाई गई नाना रंगों की बंगाली अग्निक्रीड़ा के बीच सहसा ऐसे फूट पड़ता है, मानो इंद्रजाल की शक्ति से बनाया गया हो।

सुनहरी तिपाइयों से उठनेवाले धुँए से वायुमंडल अंधकारमय हो जाता है। इन तिपाइयों पर धूप की गोलियाँ निरंतर जलती हुई अपने गिर्द घूमती रहती हैं, जिससे रात में आग का एक चक्कर बन जाता है। चौंधियाया हुआ जन-समूह इन कामों को देख पागल होकर ईश्वर के सम्मान में कूदने और चिल्लाने लगता है। कभी-कभी कुछ पल के लिये बंगाली आतशबाज़ी चलने से बंद हो जाती है। उस समय पूर्ण अंधकार छा जाता है। देवता की विशाल मूर्ति ही, जो ख़ूब जगमगा रही होती है, पानी के ऊपर चुपचाप बहती रहती है। उसके पाँवों में नर्तकियाँ अतीव मनोहर भाव से लेटी रहती हैं। तब अतीव उज्ज्वल अग्नि भभक उठती है, और उसके साथ ही उन्मत्त जय-जयकार होने लगता है।

जब सातवीं परिक्रमा समाप्त होने लगती है, तो गीत चिल्लाहट में बदल जाते हैं। यह प्रलाप अपनी परा काष्ठा को पहुँच जाता है। स्त्री, पुरुष और बच्चे सब अपने को उस जल से पवित्र करने के लिये, जिसको अभी शिव ने पार किया है, तालाब में कूद पड़ते हैं।

उस अछूत पर शोक है, जिसने मंदिर के द्वार में प्रवेश करने का साहस किया है। यदि ऐसे अवसर पर वह पहचाना जायगा, तो अवश्य ही उसकी बोटी-बोटी नोच डाली जायगी।

जोश इतना बढ़ा हुआ होता है कि यदि मंदिर का ब्राह्मण पुजारी ईश्वर के नाम पर इस प्रक्रिया में सहायता देनेवाले योरपियनों को भी बुरा बताकर जन-समूह को भड़का दे, तो उस प्राचीर में से एक भी योरपियन जीता बाहर न निकले।

प्रातःकाल कोई चार बजे शिव को फिर बड़े आडंबर के साथ मंदिर के गुह्य अभ्यंतर में ले जाकर आगामी वर्ष निकालने के लिये रख दिया जाता है। जलती हुई आग हौले-हौले बुझ जाती है, पवित्र नरसिंघों और तुरहियों के शब्द के साथ जन-समूह क्रमशः बिखर जाता है, परदेसी वापस आ जाता है, और अपने मन में उत्पन्न होनेवाले चित्तक्षोभों का निवारण करने में वह पहले-पहल असमर्थ होता है।

उत्तर-भारत, अर्थात् बंगाल, के सबसे बड़े रौनक़दार उत्सव दक्षिण के उत्सवों के सामने कुछ भी नहीं।

दक्षिण में, जहाँ मुसलमानी आक्रमण के पैर कम दृढ़ता से जमे हैं, जहाँ उमर और मुहम्मदअली की सांप्रदायिक असहिष्णुता ने मंदिर नहीं गिराए और तलवार और अर्द्धचंद्र के नियम के सामने आत्माओं को नहीं झुकाया गया, आप देखेंगे कि ब्राह्मण-प्रभुत्व ने अभी तक पुराने गौरव को कुछ-न-कुछ सुरक्षित रक्खा है।

यहाँ कुछ विद्वान् ब्राह्मणों के हृदय में धार्मिक ऐतिह्यों को शरण मिली है। ये लोग आनेवाले पुनरुदय की आशा में इन बहुमूल्य न्यासों की रक्षा कर रहे हैं।

वहाँ बड़े-बड़े स्मृतिस्तंभ हैं, विशाल भग्नावशेष हैं, पचास फ़ीट ऊँचे संगमरमर में खुदा हुआ एक महान् परमेश्वर है। वहाँ वस्तुतः उस प्राचीन पौराणिक सभ्यता के भग्नावशेष हैं, जिसने सारे एशिया, यूनान, मिसर, यहूदिया और रोम में जीवन का संचार किया था। वहीं हम बार-बार कहते हैं, वहीं हमारे अध्ययन और अन्वेषण का क्षेत्र है।

जो भी थोड़े से योरपियन पंडित भारत में गए हैं, वे सब-के-सब कलकत्ते और बंगाल में ही जा बैठे हैं, जहाँ हिंदू योरपियन लोगों के संसर्ग से दूकानें खोलकर चावल तथा नील के व्यापारी बन गए हैं।

वे इस बात को नहीं देख सके कि उत्तर-भारत पर से हिंदूपन की छाप मिट चुकी है, वहाँ मंदिरों का स्थान मसजिदों ने और राजों के राज-भवनों की जगह अँगरेज़ी कोठियों ने ले ली है, और वे उन सारे आक्रमणों के रण-क्षेत्र को देख रहे हैं, जिन्होंने भारत को खंड-खंड कर डाला है, और जिनके स्थान पर अब योरपियन हथकंडे अपना काम कर रहे हैं।

बंगाल के उत्सवों में लोगों का वैसा असंख्य समूह एकत्र नहीं होता, जैसा कि हिंदोस्तान के पूर्वी सिरे पर, उदाहरणार्थ कर्णाटक या मलयालय में, देखा जाता है।

प्रत्येक परिवार का अपना-अपना अलग और अपने निराले ढंग का उत्सव होता है। इस भिन्नता में वृथा गर्व का बड़ा हाथ है।

उच्च वर्णों के लोग नीच वर्णों के लोगों के साथ और धनाढ्य लोग निर्धनों के साथ किसी प्रकार का भी मेल-जोल नहीं रखते। लोग जब स्वर्ण और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत प्रतिमा के जुलूस को देखें, जिसके पीछे रेशमी और काशमीरी कपड़ों से सुसज्जित जन-समूह जा रहा हो, तब वे यह अवश्य कहें कि "यह अमुक बाबू की पूजा है।" यदि हम दिखलावा करें, तो लोगों को यह अवश्य पता लगना चाहिए कि इसके लिये किसने रुपया ख़र्च किया है।

यह किसी क़दर योरपियन गर्व का हिंदू-अभिमान पर पैबंद है। उच्च वर्णों के अनेक लोग सार्वजनिक जुलूस में अपने को दिखलाना भी बुरा समझते हैं, वे अपने नाम पर मूर्ति के साथ जाने के लिये पुरस्कार देकर अपने प्रतिनिधि भेज देते हैं।

बंगाल का एक-मात्र उत्सव, जिसमें कुछ ठाट-बाट और भक्तों की भीड़ होती है, सितंबर की पूजा अर्थात् ब्रह्मा और प्रकृति का पर्व है, परंतु इसमें वस्तुतः कोई भी अपूर्व बात नहीं; यह घृणोत्पादक और लज्जा-जनक परिहास का एक जाल-मात्र है।

यह मानना पड़ता है कि बंगालियों की देवता-पूजन की विधि विलक्षण है; वे इस अवसर पर स्त्रियों और बच्चों का कुछ भी विचार न करके, अतीव गर्ह्य और अश्लील मूर्तियाँ निकालते हैं, और अपने नाटकों में परले दर्जे के गंदे दृश्य दिखलाते हैं। एक बार मैंने गंगा-तीरवर्ती हुगली ग्राम में यह उत्सव इस प्रकार मनाया जाता देखा था—एक स्त्री और एक पुरुष, जो प्रकृति और ब्रह्मा के प्रतिनिधि ठहराए गए थे, एक सार्वजनिक चबूतरे पर जान-बूझकर सतानोत्पत्ति के कर्म को पूरा कर रहे थे, और मुझे निश्चय-पूर्वक बताया गया कि यह उस गर्भ का पूजन है, जो ईश्वर से सृष्टि में हुआ था।

ऐसी सामाजिक पाशविकता में डूबे हुए लोगों से क्या आशा की जा सकती है? और यह बात भली भाँति समझ रखनी चाहिए कि यह दशा धर्म-बुद्धि के दुरुपयोग और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से उत्पन्न हुई है।

विवेक और बुद्धि के शासन से कभी ऐसे भैरवी-चक्र उत्पन्न नहीं हो सकते थे—आत्म-सम्मान और निर्दोष सिद्धांतों की ऐसी विस्मृति नहीं हो सकती थी।

हमें यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिए कि हमारी प्रबुद्ध योरपियन सभ्यताएँ ऐसी जीर्णावस्था उत्पन्न नहीं कर सकतीं। उन्हीं कारणों को यहाँ भी काम करने दीजिए, फिर आप यहाँ भी वही परिणाम देखेंगे।

हमें उन रहस्यों को भूल नहीं जाना चाहिए, जो मध्य-काल में "खीष्ट की मृत्यु" के सहकारियों (The brothers of the Passion) और धर्मानुशासन-सभा के धर्म-पाठकों (Dercs of the basoche) ने मंदिरों के पुण्यालयों तक में संपन्न किए थे, और जो अंत को अपनी अश्लीलताओं के कारण निषिद्ध ठहराए गए थे। और, दुःख से कहना पड़ता है कि ये निषेध राजकीय व्यवस्थाओं से हुए थे, न कि धार्मिक लोगों के इन्हें बुरा बतलाने से।

यदि स्वतंत्र विवेक अपने को प्रतिष्ठित करने में सफलीभूत न हुआ होता, यदि हम बाइबिल-वाक्य के लिये यातना देना और जलाना जारी रक्खे होते, यदि राजों ने, भारत के राजों के सदृश, विना किसी शिकायत और रुकावट के, अभिभावुकता को स्वीकार कर लिया होता, तो हम कहाँ होते ? उत्तर दीजिए, हम कहाँ होते ?

आप कहेंगे कि हम उस युग को पीछे छोड़ आए हैं, और जिन लोगों ने नागरिक और धार्मिक स्वतंत्रता को जीतकर प्राप्त किया है, वे अब पीछे पग नहीं रक्खेंगे !

कौन जानता है ? *

क्या भारत में भी स्वतंत्र विचार, स्वतंत्र विमर्श और स्वाधीनता का युग नहीं था ? याजक-वर्ण ने निरंतर यत्न किया। धैर्य के साथ यह अपने काम पर लगा रहा—युगयुगांतर के परिश्रम से भी यह न थका, और अंत को इसे सफलता हुई।

स्वतंत्रता और धार्मिक स्वेच्छाचारिता के बीच फिर युद्ध छिड़ने की आशंका हो रही है। मैं क्या कह रहा हूँ ? यह पहले ही सब कहीं छिड़ गया है, सन् ८६ के सिद्धांतों के विरुद्ध रोम में थोड़े ही मास में इस युग का सबसे अधिक आडंबरयुक्त आविष्कार होने को है।

आओ, हम इसे देखें—और उससे अपनी रक्षा की तैयारी करें।

---

* कौन जानता है ? जब कि हमारी अतीव सम्मानान्वित न्याय-सभाओं में वेदी की सजावट के परदों और मोमबत्तियों पर स्वर के साथ गाने और घुटनों के बल बैठने पर आदरपूर्वक और यथाविधि विचार किया जाता है।

# बाईसवाँ अध्याय

## हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के अनुसार पृथ्वी पर परमेश्वर का अंतिम अवतार

पौराणिक विश्वास के अनुसार महाप्रलय अर्थात् पृथ्वी के अंत पर आगे लिखी विचित्र घटना होगी—

धर्म-ग्रंथों के टीकाकार रामसरियर के शब्दों में ही सुनिए—

"...सकल सृष्टि के महाप्रलय के कुछ समय पूर्व पृथ्वी पर पुण्य और पाप के बीच अवश्य ही दुबारा युद्ध आरंभ होगा, और पापात्माएँ, जिन्होंने अपने जन्म के समय स्वर्ग में ब्रह्मा के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया था, परमेश्वर से उसकी शक्ति छीन लेने और अपनी स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से अंतिम युद्ध के लिये अपने को उपस्थित करेंगी ।

"तब कृष्ण राक्षसों के राजा को, जो एक घोड़े के रूप में, सारी पापात्माओं की सहायता से, समस्त भूमंडल को विध्वंस और संहार से आच्छादित कर देगा, पराजित करने के लिये फिर पृथ्वी पर आवेगा ।"

यह विश्वास भारत में बहुत फैला हुआ है । कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, चाहे वह किसी भी वर्ण का क्यों न हो, कोई भी ब्राह्मण ऐसा नहीं, जिसकी इस पर श्रद्धा नहीं । यहाँ तक कि याजकों ने तो कुमारी देवांगी के पुत्र की भावी विजय के लिये एक यज्ञ, अश्वमेध, अर्थात् घोड़े का बलिदान, सुप्रतिष्ठित किया है ।

मैं विना किसी टीका-टिप्पणी के सत्य घटना का वर्णन और उल्लेख करता हूँ ।

---

# तेईसवाँ अध्याय

## नारद मुनि का एक वाक्य

"इस युक्ति का कभी आश्रय न लो; 'मुझे इसका पता नहीं, इसलिये यह झूठ है।'

"हमें जानने के लिये अध्ययन करना, ग्रहण करने के लिये जानना, और निर्णय करने के लिये ग्रहण करना चाहिए।"*

भारत के धर्म-ग्रंथों और धार्मिक विश्वासों के इस अध्ययन को बंद करते हुए मैं भी सभी विपक्षियों से यही कहता हूँ।

मेरा विचार करने के पहले, पूर्व की प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन कर लो, मुझे न किसी विवाद से, और न किसी प्रकाश ही से संकोच है।

---

* 'ऐसे विचार कभी नहीं सुने!' यह वह रूप है, जिसमें हमारे समय के सरोष श्रद्धालु सरलता से अपनी अज्ञता की घोषणा करते हैं।

## उपसंहार

### भारत में ईसाई पादरियों की दुर्बलता और निरर्थकता

यदि, जैसा कि पादरी डूबाइस (Rev. Father Dubois) ने कहा है, न्याय, दयालुता, श्रद्धा, करुणा, निःस्वार्थता, वस्तुतः, सभी सद्‌गुण प्राचीन ब्राह्मणों में पाए जाते थे।

यदि, समान रूप से उसके साथ यह कहना भी सत्य है कि हिंदू भी उन्हीं नैतिक सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं, जिनको हम मानते हैं, तो हमें भारत में अपने पादरियों की पूर्ण विफलता की चाभी मिल जाती है। इस असिद्धि को उनमें से भी बहुत-से ऐसे मनुष्य स्वीकार करते हैं, जो इसका कारण बताने की या तो परवा नहीं करते, या उनमें इसके लिये साहस नहीं है।

एक दिन एक ब्राह्मण के साथ मैं इन विषयों पर विचार कर रहा था। उसने मुझसे कहा—"मैं अपना धर्म क्यों बदलूँ?

"हमारा धर्म यदि तुम्हारे धर्म से बढ़िया नहीं, तो उसके समान तो है ही। तुम अपने धर्म को केवल अठारह सौ वर्ष का बताते हो, परंतु हमारा धर्म सृष्टि के आदि से निरंतर चला आ रहा है।

"तुम्हारे मतानुसार ईश्वर को तुम्हें धर्म देने के लिये कई प्रयत्न करने पड़ते हैं, और इस प्रकार तुम उसे घटा देते हो। हमारे विश्वासा-नुसार, उसने हमें उत्पन्न करते ही अपने धर्म का प्रकाश कर दिया।

"जब कभी मनुष्य-समाज सच्चे मार्ग से विचलित हो जाता है, तब उसे पुरातन धर्म पर वापस लाने के लिये वह अपने को प्रत्यक्ष करता है।

"उसका अंतिम अवतार कृष्ण-रूप में हुआ था। वह संसार को

नवीन धर्मों की शिक्षा देने नहीं, प्रत्युत मूल-पाप को मिटाने और आचरणों को शुद्ध करने आया था।

"जिस प्रकार तुमने आदिम और हेवा की उत्पत्ति के हमारे ऐतिह्य को ग्रहण किया है, वैसे ही तुमने इस अवतार को भी ग्रहण कर लिया है।

"संसार की समाप्ति के पहले, हम अभी एक और अवतार के आने की प्रत्याशा कर रहे हैं। यह कृष्ण का अवतार होगा, और राक्षसों के राजा को, जो घोड़े का रूप धारण किए होगा, मारने के लिये आवेगा। जो कुछ तुमने मुझे अभी अपने अपोकलिपस (Apocalypse) के विषय में बताया है, उससे मैं समझता हूँ कि तुमने यह भविष्यद्वाणी हमसे ली है।

"तुम्हारा धर्म हमारे धर्म की तलछट, उसका अभिज्ञान-मात्र है; फिर मुझे इसे ग्रहण करने को क्यों कहते हो?

"यदि तुम सफल होना चाहते हो, तो मुझे वे सिद्धांत न सिखलाओ, जो हमारे सभी धर्म-ग्रंथों में पाए जाते हैं, और मुझे उस आचरण की शिक्षा न दो, जो हमारे भारत में उस समय से है, जब कि योरप ने अभी सभ्यता के प्रकाश से आँखें भी नहीं खोली थीं।"

उसका यह सारा कथन ठोस सचाई थी, और इसमें उत्तर के लिये कोई गुंजायश ही न थी।

तब आप इन लोगों को क्या देंगे? क्या पूजा का एक प्रकार? क्या बाह्य शिष्टाचार? वे तो केवल दृश्य अभिव्यक्तियाँ हैं, धर्म का मूलाधार नहीं हैं, और जब मूल एक ही हो, तब फिर क्या करना होगा?

इसमें संदेह नहीं कि हिंदू अपने पुरातन धर्म को भूल गए हैं, और कृष्ण के आचरण की पवित्रता उनके कार्यों में नहीं मिलती; परंतु उनकी धर्म-भ्रष्टता अज्ञान का परिणाम नहीं; उन्हें अपने मतों और आत्मा के सारे महान् सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान है।

योरप को अपने झगड़ों और अपनी सब प्रकार की आकांक्षाओं के होते पत्थर फेकने के लिये इतना तैयार न हो जाना चाहिए। उसके लिये नीति-शिक्षक बन बैठना बहुत बुरा होगा*।

निस्संदेह वर्तमान काल के हिंदुओं ने ईश्वर-पूजा का स्थान अतीव कुसंस्कारात्मक अनुष्ठानों को दे रक्खा है। फिर बाक़ी क्या रह गया? उनके पूर्वजों को धन्यवाद है, जिन्होंने ईश्वर को छोड़कर लोकोत्तर कर्मों के करनेवालों, देवों, ऋषियों, मुनियों, और देवदूतों का पूजन आरंभ कर दिया है।

और तब क्या? क्या हमारे यहाँ सेलट ( Salette ) और अन्य स्थानों के लोकोत्तर कर्म और ऐसे सिद्ध नहीं, जो लँगड़ों, बहरों, अंधों को, गंडमाला और बिवाई को चंगा कर देते हैं?.........फिर हिंदू अपने क्यों न रक्खें?

एक दिन मुझे त्रिचनापली ( जो भारत के पूर्वी किनारे पर एक बड़ा नगर है ) के निकट एक छोटे-से गाँव में जाने का अवसर मिला। वहाँ एक नवागत पादरी ईसाई बनाने के लिये मनुष्य ढूँढ रहा था। ऐसी अवस्थाओं में जैसा कि रवाज है, एक ब्राह्मण धर्म-पंडित उसके पास आकर कहने लगा कि जिस भी धर्म-विषय पर आपकी इच्छा हो, जनता के सामने मुझ से वाद-प्रतिवाद कर लीजिए।

पादरी तामिल-भाषा अच्छी तरह समझता था। उसने स्वीकार कर लिया। यदि वह अस्वीकार करता, तो लोकमत में वह गिर जाता, और जिस भी हिंदू के साथ वह धर्म-विषय पर बात करता,

* वॉन श्लेगल ( Von Schlegel ) कहता है कि "विश्वस्त सूत्रों से ईसाई-जातियों का एक ऐसा आलेख्य तैयार करना मुश्किल नहीं, जो आधुनिक काल की महान् नैतिक श्रेष्ठता के विषय में हमारे मन से किसी प्रकार भी मिलता न हो।"

वह उसे अमोघ रूप से यह उत्तर देता—"तुम हमारे ब्राह्मण के साथ विवाद करने से क्यों डरते हो ?"

शास्त्रार्थ के लिये आगामी रविवार नियत किया गया। हिंदू लोग इन विवादों को, इन वाक्-युद्धों को बहुत पसंद करते हैं; स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी इकट्ठे होकर बड़े अनुराग से सुनते हैं, विवाद से उत्तेजित हो जाते हैं, और आप कठिनता से ही विश्वास करेंगे, परास्त मनुष्य के पीछे बड़ी निर्दयता से हू-हू करते हैं। इस विषय में वे ब्राह्मण और पादरी, किसी का भी पक्षपात नहीं करते।

इस पर आपको उस समय कम आश्चर्य होगा, जब आपको यह पता लगेगा कि कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, चाहे उसका वर्ण या पद कुछ ही क्यों न हो, जो वेदों के सिद्धांतों को न जानता हो, और जिसे पूर्ण रीति से लिखना और पढ़ना न आता हो।

एक हिंदू कहावत है कि वह मनुष्य ही नहीं, जो अपने विचार को अल्ले ( लिखने के लिये ताड़ का पत्र ) पर लिख नहीं सकता।

रविवार आया, सारा गाँव एक विशाल बर्गद की सुहावनी छाया के नीचे एकत्र हो गया*। यह वृक्ष मानो एक प्राकृतिक व्याख्यान-भवन था। मैं दोनों विपक्षियों से कुछ पग के अंतर पर बैठ गया, और विवाद आरंभ हुआ।

जो परिणाम अवश्यंभावी था, वह मैं उनके पहले ही प्रश्नोत्तर से समझ गया।

ब्राह्मण ने तीक्ष्ण और चतुर बुद्धि से तत्काल ही बड़ी निपुणता के साथ विवाद को आरंभ किया, और उनमें इस प्रकार विचित्र कथनोपकथन हुआ—

---

* यहाँ से लेकर इस परिच्छेद के अंत तक का सारा भाग अँगरेजी अनुवाद मे नहीं है—सन्तराम

ब्राह्मण—आप क्या हैं ? कहाँ से आए हैं ? आपको किस बात का प्रयोजन है ?

पादरी—मैं पादरी ( पुरोहित ) हूँ। मैं समुद्रों के पार से तुम्हें सच्चा परमेश्वर बताने आया हूँ।

ब्राह्मण—आपने इतनी दूर से यहाँ आने का कष्ट उठाया है, इसलिये आपको हमारे लिये बहुत उत्तम पदार्थ लाने चाहिए थे। पर आप सच्चा परमेश्वर क्यों कहते हैं ? क्या, आप अनेक परमेश्वर मानते हैं ? मैं तो सभी लोकों और सभी जातियों के लिये केवल एक ही मानता हूँ।

पादरी—मैं भी एक ही मानता हूँ। उसी के नाम से मैं बोलता हूँ और कुसंस्कार से उत्पन्न हुए झूठे ईश्वरों के साथ युद्ध करने लगा हूँ।

ब्राह्मण—आप हमारे अंदर प्रचार करने आए हैं; क्या आप समझते हैं कि जिस ईश्वर की हम उपासना करते हैं, वह सच्चा ईश्वर नहीं ?

पादरी—आपने सच्ची बात कह दी।

ब्राह्मण—किंतु तब आपका कौन-सा परमेश्वर है ? मनु भगवान् हमारे परमेश्वर का इस प्रकार लक्षण करते हैं—"जो अनादि काल से है, जिसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया, जो ज्ञान ( मन ) द्वारा ग्रहण किया जाता है, जो इंद्रिय-ग्राह्य नहीं, जिसके अवयव नहीं, जिसके इंद्रियाँ नहीं, जो अनंत है, सर्वशक्तिमान् है, सचराचर जगत् का स्रष्टा है। और जिसका रहस्यमय एकत्व ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के तीन व्यक्तियों का बना है," वह हमारा परमेश्वर नहीं, मेरा उसे अपना कहना ठीक नहीं; परमेश्वर किसी एक मनुष्य, एक जाति, अथवा एक समाज का नहीं। वह सभी भूतों का परमेश्वर है। क्या आप मेरी इन बातों को कुसंस्कारों का परिणाम कहते हैं ?

पादरी—नहीं; यदि आप एक और अद्वितीय परमेश्वर, ब्रह्मांड के स्वामी को मानते हैं, तो हम आपके साथ सहमत होने के लिये सर्वथा उद्यत हैं। केवल इतनी बात है कि परमेश्वर के विषय में आपने जो कल्पना बनाई है, मेरी पूरे तौर पर वैसी नहीं। आप अनवरत रूप से ईश्वर के एकत्व का वर्णन करते हैं, और फिर उसी को अशेषतः बाँटते हैं। आपके धर्म-ग्रंथों के अनुसार आपका ईश्वर कर्म नहीं करता; वह अपनी शक्ति को, दाहने और बाएँ नियुक्त करता है, पहले उसे देवों को देता है, इन देवों के फिर अपने प्रतिनिधि हैं। इनका नाम महर्षि अत्रि, अंगिरस्, पौलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस्, वशिष्ठ, भृगु और नारद हैं। सारांश यह कि तुम्हारी ब्रह्म-विद्या ईश्वर के एकत्व को पीछे से केवल तहस-नहस कर डालने के लिये ही स्वीकार करती प्रतीत होती है।

ब्राह्मण—मैं समझता हूँ, आप जो कुछ कह रहे हैं, शुद्ध भाव से कह रहे हैं। परंतु आप भारी भूल में हैं। क्या कभी धार्मिक विश्वासों का आधार काव्यमय परिकथाओं को बनाया जा सकता है? क्या आप समझते हैं, जो लोग अपने प्राचीन काल के महात्माओं का सम्मान करते हैं, वे उन्हें ईश्वर के तुल्य बना देते हैं?

ब्रह्म के उपासक उसके सिवा और किसी को नहीं मानते, वे केवल उसी का पूजन करते हैं। इसमें बात ही क्या है, यदि उसने सत्ताएँ उत्पन्न की हैं, और अपने देवताओं के विशेष-विशेष कार्य सिपुर्द किए हैं; क्योंकि हमारे मतानुसार तो प्रत्येक वस्तु उसकी शक्ति का ही अवतार है।

आपकी युक्तियाँ आपके ही विरुद्ध जाती हैं; क्या आपके धर्म में फ़रिश्ते, पैग़ंबर, और महात्मा नहीं हैं?

आप हमारे धर्म-ग्रंथों के विस्तार में क्यों जाते हैं? वे तो प्रायः ऐसे रूपक हैं, जिनको आप समझ नहीं सकते।

आप हमारे ऐतिह्यों को, जो उतने ही पुराने हैं, जितना कि यह संसार पुराना है, उनका अध्ययन तथा अनुशीलन किए बिना ही, तहस-नहस कर डालने का क्यों यत्न कर रहे हैं ? देखिए, मैं आपके दृष्टांत का अनुकरण नहीं करता। यद्यपि मेरा आपसे धर्म-भेद है, पर मैं आपके धार्मिक विश्वासों पर चोट नहीं करता।

पादरी—इसका लाभ आपको नीति-शास्त्र में मालूम होगा।

ब्राह्मण—क्या आपका तत्त्वज्ञान कोई ऐसी बात बताता है, जो हमारे तत्त्वज्ञान में नहीं ? क्या आपने कृष्ण-अर्जुन-संवाद और देवयानी के दिव्य पुत्र की श्रेष्ठ शिक्षाएँ पढ़ी हैं ?

क्या आपको विश्वास है कि हमें अच्छे और बुरे की पहचान नहीं, और आपका हमें वे बातें बताने के लिये समुद्र पार करके आना आवश्यक था, जिनको हम वैसी ही अच्छी तरह से जानते हैं, जिस प्रकार आप ? क्या हमारा धर्म एक-दूसरे को सहायता देना नहीं सिखलाता ? क्या हम दीन-दुखियों से घृणा करते हैं ? हमारी सड़कों पर जगह-जगह सराएँ बनी हुई हैं। वहाँ पथिक और रोगी लोग विश्राम कर सकते और अपने सुख की प्रयोजनीय सामग्री पा सकते हैं।

क्या हम आपसे भी अधिक उत्तम रीति से अपने माता-पिता तथा पूर्वजों के पैर नहीं पूजते ? हम उनके लिये सदा शोक करते हैं, और प्रति वर्ष हम इस लोक में उनका जन्म तथा मरण, जो दूसरे जीवन में उनका जन्म है, मनाते हैं।

इन शब्दों पर सारा जन-समुदाय 'ठीक है, ठीक है' बोल उठा। ब्राह्मण का हाथ पादरी से ऊपर होने लगा।

पादरी ( बड़े आवेग से )—आप सब यह दिखला रहे हैं कि हमारे पास बाइबिल-जैसा पवित्र तत्त्वज्ञान है, फिर आप इसके अनुसार कर्म क्यों नहीं करते ? परमेश्वर ने जो दिन तुम्हें दिए हैं, उन्हें

अतीव निर्लज्ज विकारों को तृप्त करने में, अपने आपको अत्यंत धृष्ट विषयासक्ति में लिप्त रखने में क्यों बिताते हो? अपने बच्चों को बहुत छोटी आयु से ही चोरी, झूठ और व्यभिचार में क्यों पड़ने देते हो? क्या तुम प्रत्याशा करते हो कि इस प्रकार लोग ईश्वर के नियम के अनुकूल बनेंगे?

तुमने अपनी स्त्रियों को क्या बना रक्खा है? विलास की सामग्री, पशु, भक्ति और प्रीति में अक्षम, दासियाँ, जिनको तुम गाय-भैंसों की तरह ख़रीदकर बंद कर रखते हो।

तुम जो प्रभु के भेजे हुए प्रकाश को हटाते हो। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने अपराधों के कारण दुःख पाओगे। जब अंतिम दिन आवेगा, तुम्हारे अच्छे और बुरे कर्म तोले जायँगे, तब परमेश्वर तुमसे मुख मोड़ लेगा, और तुम अभियुक्तों में ठेल दिए जाओगे।

पादरी इसी विषय को लेकर बड़ी देर तक बोलता रहा; जोश से वह घबरा-सा गया, और अपने मूल-विषय को भूल गया। तब उसने विवाद बंद कर दिया। वह इस प्रकार उपदेश करने लगा, मानो किसी रोमन कैथोलिक गिरजे में खड़ा हो। श्रोतागण उसके शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सकते थे।

इसलिये जब ब्राह्मण ने बोलना आरंभ किया, तो मैं समझा कि पादरी अपना स्थान छोड़कर जाने लगा है।

ब्राह्मण—आपके अन्याय-संगत आक्रमणों से आपकी पोल खुल रही है। आपका हमारे यहाँ आने का उद्देश वह नहीं, जो आपने पहले बताया था। परमेश्वर के सेवक को क्रोध नहीं करना चाहिए। पवित्र शब्द मधु की तरह मीठे निकलने चाहिए, जिनसे सुननेवाले विष्णु के प्रिय कमल की-सी मधुर सुगंधि से सुगंधयुक्त हो जायँ।

जिन विषय-भोगों की आप बात करते हैं, और हम पर दोषारोपण करते हैं, क्या आप कभी उनमें सम्मिलित हुए हैं? क्या आप कभी

हमारे घरों के भीतर गए हैं ? क्या आप जानते हैं कि वहाँ गार्हस्थ्य अग्नि के रक्षक महर्षियों की मूर्तियों के नीचे क्या होता है ? आप हमारी स्त्रियों की तुलना दासियों के एक दल से करते हैं। उनके लिये बनाया हुआ महर्षि मनु का नियम पढ़िए, तब बोध हो जाने के कारण आपकी राय अधिक न्याय-संगत हो जायगी।

आपको न हमारे नियमों का पता है, और न हमारे रीति रवाजों का ही, इस पर भी आप हमें फटकारते हैं ! आपकी बातें यहाँ लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकतीं। जाइए, बंबई, मदरास, और कलकत्ते में अपने लोगों को उपदेश दीजिए। हमारी अपेक्षा उन्हें इसकी अधिक आवश्यकता है। आप उन्हें प्रतिज्ञा-भंग करते, अपने को धनाढ्य बनाने के लिये हिंदुओं को धोका देते, और हमसे लूटे हुए धन के साथ अपने विषय-भोग के लिये हमारी युवती कन्याएँ ख़रीदते पावेंगे। यदि आप भारत की कुछ सेवा करना चाहते हैं, तो उन्हें जाकर कहिए कि वे हमारे सामने ऐसे दृष्टांत उपस्थित न करें। हम उस धर्म को बुरा समझते हैं, जो ऐसे भ्रष्ट लोगों को न रोकना जानता है और न दंड देना ही।

इतना कहकर ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ। श्रोताओं ने प्रशंसा-सूचक ध्वनि की, और बड़े ही आदर और सम्मान के साथ वे उसे उसके घर लिवा ले गए।

मैंने ऐसे विवाद सदा इसी प्रकार ही समाप्त होते देखे हैं।

यह बहुत ठीक है कि भारत शताब्दियों से अपभ्रंश से चिल्ला रहा है, और इस समय स्त्रियाँ केवल विषय-भोग का साधन हैं; परंतु भूतकाल में उनका बड़ा सम्मान और आदर था। धर्म को रीति-रवाजों ने परास्त कर दिया है; पर अभी तक वह वैसा-का-वैसा विद्यमान है, और ब्राह्मण लोग धर्म ( क़ानून ) की शरण लेते हैं। हिंदुओं के नैतिक सिद्धांत वही हैं, जो हमारे हैं। फिर सिद्धांतों के

आधार पर उन्हें नीचा दिखाने का यत्न क्यों ? दुर्भाग्य से यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि सत्य घटनाओं पर विवाद करते हुए यदि कोई परख और विचार से काम लेना आरंभ कर दे, तो भी ब्राह्मण के पास प्रबल शस्त्र हैं; क्योंकि यह बात सर्वथा सत्य है कि योरपियन लोग भारतीय प्रजा के सामने आचार और शुद्ध व्यवहार के बड़े ही खेदजनक उदाहरण उपस्थित करते हैं।

मुट्ठी-भर ईसाइयों के बीच भी, जिनका पाँच-छठा भाग पेरिया ( पतित ) लोगों का है, जो बीस करोड़ से भी अधिक हिंदुओं में बिखरे पड़े हैं, एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता, जो सच्चे हृदय से नवीन धर्म का माननेवाला हो। उनको ईसाई बनाने के लिये पादरियों को विवश होकर क्या-क्या यत्न करने पड़ते हैं ? एक को वे रुपया या दो रुपया मासिक की वृत्ति देते हैं, तो दूसरे को उदरपूर्ति के लिये पर्याप्त चावल, और ज्यों ही वे वृत्ति और चावल देना बंद करते हैं, ईसाई अतर्द्धान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, वे अपनी जाति के सभी रीति-रवाज और जन्म, विवाह, मृत्यु तथा पूर्वजों की पूजा के सभी ग़ैर-ईसाई संस्कार बराबर करते रहते हैं। इनसे उन्हें रोका नहीं जा सकता। दूसरे विवश होकर अछूत लोगों को 'वर्ण'वाले लोगों के पास जाने से रोकना और उन्हें गिरजों में बंद रखना पड़ता है, नहीं तो सभी नए ईसाई तत्काल भाग जायँगे।

यहाँ तक कि कई गिरजे उच्च वर्णों के हिंदुओं ने इस शर्त पर बनाए हैं कि इन दीन अपांक्तेयों को उनमें प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी जायगी, और पादरियों ( मिशनरियों ) ने न केवल इस शर्त को स्वीकार ही किया है, बरन् इसका पूरा-पूरा पालन भी किया है।

एक दिन पांडिचेरी से कुछ मील के अंतर पर एरियनकूपम्

( Ariancoupam ) नामक गाँव के एक छोटे-से गिरजे में मैंने प्रवेश किया। मेरे साथ मेरा एक अछूत नौकर भी अंदर गया। उसको देखते ही सारे हिंदू रुष्ट होकर उठ खड़े हुए; प्रक्रिया बंद कर दी गई; जो पादरी कार्य करा रहा था, वह मेरे पास आकर कहने लगा कि यह गिरजा वर्णवाले लोगों का है, आपके अछूत नौकर को यहाँ आने का अधिकार नहीं।

इस नवीन सिद्धांत के ईसाई प्रचारकों के इस भाव पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, और मैं शीघ्र ही वहाँ से चला आया।

क्या वे वस्तुतः ईसा के, हाँ, उसके, जो पीड़ितों की उन्नति और निर्बलों की रक्षा के लिये आया था, प्रतिनिधि हैं, जो ऐसे नीच छल करते हैं ?

मैं यह विना किसी पक्षपात के सच सच कह रहा हूँ। मैं ललकार-कर कहता हूँ कि जो मनुष्य भारत में निवास कर चुके हैं, उनमें से कोई भी मेरे कथन की सत्यता का खंडन करके दिखावे।

परंतु जिस बात से मुझे और भी अधिक दुःख होता है, वह कर्नाटक के ईसाई जुलूसों में ईसा, मरियम और महात्माओं का दृश्य है, जहाँ वे, मूर्तियों के किसी आंतरिक यंत्र-व्यापार के द्वारा, ग़ैर ईसाई मूर्तियों के नीच स्वाँगों की नक़ल करते हुए हाथ-पैर हिलाते और एक प्रहसन का अभिनय करते हैं।

जब मैंने एक पादरी से कहा कि ऐसे कुसंस्कारों से आपके धर्म को कुछ भी लाभ न होगा, तब उसने यह उत्तर दिया—

"हिंदू एक बालकों की जाति है। ब्राह्मणों के अनुयायियों के वैभव के साथ मुकाबला करने के लिये हम उन्हें स्वाँग द्वारा फुसलाने पर विवश हैं। उन लोगों के जुलूसों का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है; उनके देवतों की मूर्तियाँ गुप्त कमानियों द्वारा कार्य करती हुई अपने आसनों पर जीती-जागती प्रतीत होती हैं। अपने संस्कारों में हमें भी ऐसा ही करना पड़ता है। इसके विना हम ब्राह्मणों से हीन

समझे जायँगे, और इस देश में, जहाँ कल्पना बहुत बड़ा कार्य करती है, यह एक भारी आशंका होगा।"

मैंने साहस करके पूछा—"पादरीजी, क्या ये ठीक वही मालाबारी अनुष्ठान नहीं, जिनकी रोम में ऐसी घोर निंदा की जाती थी?"

उसने मेरी ओर से पीठ फेर ली।

निस्संदेह पाठक इस विषय का कुछ-न-कुछ समाधान अवश्य चाहते होंगे।

भारत में बाइबिल का प्रचार करने के लिये सबसे पहले जज़ूइट (Jesuits) संप्रदाय के पादरी आए थे। उन्होंने आते ही देखा कि साधारण साधनों से यहाँ कुछ भी सफलता न हो सकेगी; यहाँ उनके सामने कोई भोंदू और असभ्य लोग नहीं, वरन् एक सर्वथा सभ्य जाति थी, जो अपने धर्म, अपनी रीति-नीति को सब वस्तुओं से उत्तम समझती थी।

तब इन जेज़ूइटों ने हिंदुओं-जैसे वस्त्र धारण किए, और लोगों को यह बताना आरंभ किया कि हम ब्राह्मण हैं, और लोगों को उनके प्राचीन धर्म की भूली हुई बातें फिर से स्मरण कराने के लिये पश्चिम से आए हैं। ये पादरी जाति-पाँति, संस्कारों, मूढ़ विश्वासों और पक्षपातों का न केवल सम्मान ही करने लगे, वरन् उन्होंने इन्हें ग्रहण कर लिया, अपना लिया, और अपने को हिंदुओं के साथ ऐसी अच्छी तरह से मिला दिया कि उन्हें लोगों को अपना पक्षावलंबी बनाने में सफलता प्राप्त हो गई।

उनकी इस सफलता पर कई प्रतियोगी ईसाई संप्रदायों ने रोम के न्यायालय में उन पर आक्षेप किया कि उन्होंने अपने धर्म को ऐसे कामों में लगाकर, जिनसे उसके सिद्धांतों की पवित्रता दूषित हो गई है, भ्रष्ट कर दिया है।

पोप ने जेज़ूइटों की गंभीरता-पूर्वक निंदा की, और मालाबारी

अनुष्ठानों के नाम से उनकी व्यवहार-रीति के बहिष्कार की घोषणा की, और देश की व्यवहृत और स्वभावों के लिये जो स्वीकृति इन जेज़ूइटों ने लोगों को दे रक्खी थी, उसे रोमन कैथोलिक सिद्धांतों के विपरीत बताकर रद्द कर दिया।

उनकी जगह नए ईसाई प्रचारक भेजे गए। उन्हें आज्ञा दी गई कि अपने अग्रगामियों के सभी कामों को उलटा दो, और ईसाई हिंदुओं को बाइबिल के धर्म में लाओ।

ईसाई प्रचारक, जिन्होंने अपने लाभ के लिये जेज़ूइटों के अधिकार की जड़ काटी थी, ख़ूब जानते थे कि जब तक गिरजों को बंद कर देने और मुट्ठा-भर नए ईसाइयों को हाथ से खो देने ही की इच्छा न हो, तब तक जिस तरह जेज़ूइटों ने किया था, उसके विपरीत और किसी रीति का अवलंब करना संभव नहीं। वे तो केवल जेज़ूइटों को ही मात करना चाहते थे। जब उन्हें इसमें सफलता हो गई, तो उन्होंने झट वही मालाबारी अनुष्ठान ग्रहण कर लिये और और भी अधिक खुली स्वीकृति दे दी।

इसी प्रकार देश की रीतियों के लिये उन्होंने जो वेष ग्रहण किया था, वह प्रायः सर्वथा हिंदू वेष है; और संस्कारों में जो बिबियाना-टोपी ( Bonnet ) वे पहनते हैं, वह ब्राह्मण पुरोहितों की टोपी के साथ बिलकुल मिलती है।

हाँ, मैं कह रहा था, वे अछूतों को अलग बंद रखते थे, और केवल इतने पर ही संतुष्ट न होकर उच्च वर्णों के लोगों के साथ बात-चीत करते समय यह भी दंभ करते थे कि हम उन दीन निष्कासितों को गर्ह्य जीव समझते हैं।

क्या कोई इस पर विश्वास करेगा? वे उन कुसंस्कारों को छोड़कर पीछे नहीं पलटे, जो पौराणिक हिंदू-धर्म का सार हैं; वे प्रकट रूप से कभी गो-मांस न खाते थे।

आप जानते हैं, हिंदू लोग इस जंतु का पूजन करते हैं, और उनके प्राचीन नियम गउओं का वध करनेवालों के लिये कठोर दंड की आज्ञा देते हैं।

इससे भी अधिक, यदि वे किसी ऐसे ज़िले में रहते थे, जहाँ के लोग कभी किसी प्रकार का भी मांस नहीं खाते, तो वे उनकी नक़ल करते थे, और उनके सदृश चावल और वनस्पति पर ही निर्वाह करते थे।

उनमें से एक ने एक बार मुझे बताया कि जब हम अकेले होते हैं तब कभी-कभी मुर्ग़ा मार लेते हैं, परंतु बहुत कम। यदि हमें कोई देख ले, तो हमारे ईसाई हमसे अलग हो जायँ।

उसके इस कथन में झूठ का लेश-मात्र भी नहीं। आपको एक भी ऐसा ईसाई प्रचारक न मिलेगा, जो भारत में निवास कर चुका हो, और फिर हमारे शब्दों का खंडन करने का साहस कर सके।

अभी तक और भी ऐसे प्रश्न हैं, जिनको मैं उठा सकता हूँ, परंतु वे ऐसी सूक्ष्म बातों का वर्णन करते हैं, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता।...

मैं नहीं जानता कि भारत के लिये भविष्य के गर्भ में क्या कुछ है, परंतु जिस बात का मुझे निश्चय है, वह यह है कि इस रीति से आप उसका पुनरुद्धार नहीं कर सकते।

---

# चौथा खंड

## ईसाई कल्पना का हिंदू-मूल

यदि मैं ईसाइयों के कथोलिक मत का माननेवाला हूँ, तो मुझे यहूदी बनकर आरंभ करना चाहिए, और यदि मैं यहूदी हूँ, तो शीघ्र ही पौराणिक हिंदू-धर्म को ग्रहण करना चाहिए

पाठक के प्रति

धर्म अपने सिद्धांत लोगों पर डालते हैं, अपने नियमों के नीचे आत्मा को झुकाते हैं, अपने आश्रितों के लिये विचार और निर्णय की स्वतंत्रता का निषेध करते हैं, और परमेश्वर के नाम पर उस सारे विचार का, जिस पर उनका अधिकार नहीं, और सिर नवाने और विश्वास करने की स्वाधीनता के सिवा शेष सारी स्वाधीनता का बहिष्कार करते हैं।

समान रूप से, परमेश्वर के नाम पर, विवेक दूसरे सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है, जैसा कि विचार और कर्म में व्यक्ति की स्वतंत्रता पुण्य और न्याय के मार्गों पर परीक्षा और विचार द्वारा मनुष्य-समाज की प्रगति; क्योंकि यही भविष्य को भूत के कुसंस्कारों और अवरोधों से छुड़ा सकती है।

भौतिक विज्ञान जब तक धार्मिक कल्पना के ठहराए हुए सिद्धांत के पीछे चलता रहा, तब तक बराबर उससे भूलें होती रहीं। नीति-शास्त्र ने भी यदि अपना संबंध रहस्य और ईश्वरीय ज्ञान से न तोड़ लिया, तो इसकी भी उससे कुछ अच्छी दशा न होगी।

हमें रहस्य और ईश्वर-प्रत्यादेश को भगवान् की बुद्धिमत्ता और अनंत शक्ति के अनुपयुक्त समझकर लात मारकर परे हटा देना चाहिए, और उन अमर सचाइयों के बल पर, जो परमदेव ने हमारे अंदर रक्खी हैं, हमें उस संग्राम में पड़ने से नहीं डरना चाहिए, जो हमें अवश्य ही विवेक के जयशाली और मुक्त शासन में ले जायगा।

तब हम परमात्मा और उसकी पूजा को मानवीय दोष के उन सब क्लेशों, उन सब निर्बलताओं से अलग कर देंगे, जिनके साथ मनुष्य छः सहस्र से अधिक वर्षों से ईश्वर का संबंध जोड़े चला आ रहा है।

सभी स्वतंत्र बुद्धिवालों का ऐसा ही उद्देश्य होना चाहिए।

---

# पहला अध्याय

## सरल स्पष्टीकरण

हम सारे प्राचीन समाजों पर प्राचीन भारत का प्रभाव सुस्पष्ट रीति से दिखला चुके; ईरान, मिस्र, यहूदिया, यूनान, और रोम के नैतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक और धार्मिक ऐतिह्यों को उस महान् पुरातन स्रोत से निकाला हुआ सिद्ध कर चुके; मूसा की पुस्तक को मिस्र और सुदूर पूर्व की धर्म-पुस्तकों मे लिया हुआ प्रमाणित कर चुके। अब हम ईसा और उसके प्रेरितों को, चाहे एशिया से या मिस्र से, वेदों के पुरातन ऐतिह्य तथा कृष्ण की शिक्षा और कर्त्तव्यानुराग प्राप्त करने, और उन श्रेष्ठ तथा पवित्र सिद्धांतों की सहायता से प्राचीन संसार का, जो ज़रा और भ्रष्टता से सब कहीं जीर्ण हो रहा था, पुनरुद्धार करने का प्रयत्न करते दिखलावेंगे।

हमने हिंदुओं की सृष्टि-उत्पत्ति का, कुमारी के गर्भवती होने का, परित्राता कृष्ण के जीवन तथा मृत्यु का सरल और ज्यों-का-त्यों वर्णन दिया है, और यथासंभव सारी टीका-टिप्पणी इस पुस्तक के अंतिम भाग के लिये परिरक्षित रक्खी है; क्योंकि वहाँ हमें एक बार फिर, आवश्यक रूप से, इन सब विषयों को लेना पड़ेगा।

उपाख्यान और अचंभे को उच्च करके ऐतिहासिक सचाई तक पहुँचा देने की असाध्यता, और क्राइस्ट की मूर्ति के इर्द-गिर्द मध्यकाल ने जो कुसंस्कारों और चमत्कारों के ढेर लगा रक्खे हैं, उनको दूर करके उसका सच्चा स्वरूप प्रकट करने की अभिलाषा ने ही मुझमें थोड़े-से आगे के पृष्ठ लिखने का विचार उत्पन्न किया है।

यशू को ईश्वर समझने से उसकी श्रद्धेयता को गिराने का नीच

आनंद मुझसे दूर है ; एक उच्चतर प्रयोजन मुझे प्रोत्साहित कर रहा है; मैं सभी निर्व्याज विश्वासों का सम्मान करता हूँ, चाहे मेरी बुद्धि उनको ग्रहण करने से इनकार ही क्यों न करे।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं विवेक-बुद्धि के सिवा और किसी को अपना पथ-प्रदर्शक, और आत्म प्रकाश के सिवा और किसी प्रकाश को न स्वीकार करूँगा और न कर ही सकता हूँ।

परमात्मा ने मुझे एक मशाल दी है, और मैं उसके पीछे चला हूँ।

भूत सिवा विनाश, अंधकार, असहिष्णुता, और स्वेच्छाचारिता के और कुछ नहीं। आओ, हम अपने मार्ग को बदल लें, और देखें कि भविष्य क्या बनाता है।

---

# दूसरा अध्याय

## ईसा का इतिहास लिखनेवालों द्वारा वर्णित ईसा-चरित की असंभावना

महान् ईसाई तत्त्ववेत्ता का जीवन-चरित, जैसा कि उसके इतिहास-लेखकों और उसके प्रेरितों ने हम तक पहुँचाया है, संदिग्ध प्रमाण कूट रचनाओं का एक जाल है, जो लोक-कल्पना को प्रभावित करने और अपने नवीन धर्म को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने के लिये बनाया गया है।

यह मानना पड़ेगा कि यह क्षेत्र बड़ी अद्भुत रीति से तैयार किया गया था, और इन लोगों को सुधार के लिये अपना धन और जीवन दे डालनेवाले भक्तों को ढूँढने में बहुत कम कठिनता हुई।

सब कहीं मूर्तिपूजा मृत्यु-शय्या पर लेट रही थी; जूपीटर की वेदियाँ तो निस्संदेह थीं, पर उपासक कोई न था; पीथागोरस ( Pythagoras ), अरस्तू, सुक़रात और अफ़लातूँ सब-के-सब चिरकाल से इसे अपने हृदय-मंदिर से बाहर निकाल चुके थे। सिसरो को यह देखकर आश्चर्य होता था कि दो पुरोहित बिना हँसे एक दूसरे को कैसे देख सकते हैं। गत दो पीढ़ियों में, पिर्हो ( Pyrrha ), सिमन, सेक्सटस एंपीरिकस ( Sextus Empiricus ) और एनेसीडिमस ( Enesidemus ) का किसी भी चीज़ में विश्वास न था; लक्रीशस ( Lucretius ) ने अभी प्रकृति पर पुस्तक लिखी थी, और आगस्टस के समय की सभी महान् आत्माएँ, जो इतनी भ्रष्ट हो चुकी थीं कि सरल सिद्धांतों और पुरातन ज्योतियों की ओर वापस नहीं आ सकती थीं परंतु तर्क पर दृढ़ थीं, अतीव पूर्ण संशय तक पहुँच चुकी थीं, और ईश्वर तथा मनुष्य के भावी अदृष्ट को भुलाकर सुख का जीवन व्यतीत करती थीं।

दूसरी ओर वे पुरानी और मरणासन्न धर्मविधाएँ जनता की आत्मा पर एक परित्राता की कल्पना, जो प्राचीन भारत ने सभी जातियां को दी थी, छोड़ गई थीं, और श्रांत जनता अपने विनष्ट विश्वासों का रिक्त स्थान भरने, और संशय और आशा के अभाव से जड़ बनी हुई शक्ति को पुष्ट करने के लिये किसी नई चीज़ की प्रतीक्षा कर रही थी।

इस समय एक दरिद्र यहूदी, जनता की एक नीचतम श्रेणी में उत्पन्न होने पर भी, अध्ययन और चिंतन में पंद्रह वर्ष व्यतीत करने के उपरांत, इस जरा और जड़वाद के युग के पुनरुद्धार का यत्न करने से नहीं डरा।

जिस शुद्ध और सरल आचरण का उसने उपदेश दिया, और इस नवीन प्रत्यादेश के नीचे प्राचीन संसार ने जिस उत्सुकता के साथ अपने को रूपांतरित किया, उसे सब कोई जानता है। हमारा उद्देश्य ईसा की शिक्षा का निरूपण करना नहीं; हमारा काम तो केवल उसके मूल को ढूँढ़ना, और यह देखना है कि किस परि-शीलन से यह सुधारक अपना सुधार करने में समर्थ हुआ था।

जिस घड़ी से हम अवतार का मानने से इनकार करते हैं, और उसे केवल एक मनुष्य समझते हैं, चाहे वह मनुष्य कितना ही उच्च और प्रतिभाशाली क्यों न हो, हमें उसका अग्रगामी ढूँढ़ने का अधिकार है, जैसा कि हमने बुद्ध, ज़र्दुश्त, मिसर के मेनस और मूसा के अग्रगामी ढूँढ़े हैं।

हमारे लिये तो निर्विवाद है कि ईसा, संसार के रंग-मंच पर आने के समय तक, अर्थात् तीस वर्ष की आयु तक अपने को अपने इस आत्म-निरूपित उद्देश्य के लिये अध्ययन द्वारा तैयार करता रहा था।

अपना काम आरंभ करने के लिये वह तीस वर्ष की आयु तक

क्यों ठहरा रहा? यदि वह ईश्वर था, तो वह अपने यौवन और पुरुषत्व के जीवन के बारह या पंद्रह वर्ष क्यों निश्चेष्ट बैठा रहा? वह बचपन से ही क्यों न उपदेश करने लग गया, जो निस्संदेह उसके ईश्वरत्व का प्रमाणित करने की एक अतीव प्रत्यक्ष रीति होती।

यह सच है कि हमें बताया गया है कि बारह वर्ष की आयु में उसने मंदिर में एक बार पूर्व-पक्ष का प्रतिपादन करते हुए यहूदी विद्वानों को चकित कर दिया था; परंतु कौन-से पूर्व-पक्ष का? उसके इतिहास-लेखकों ने इसकी सूचना हमें देना उचित क्यों नहीं समझा? क्या इस बात का, दूसरी बहुत-सी बातों की तरह, उनकी कल्पना की ही उपज होना अधिक संभव नहीं?

तब अंत को हम पूछते हैं कि वह बारह वर्ष से लेकर तीस वर्ष की आयु तक क्या करता रहा? इस प्रश्न का उत्तर पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हूँगा।

ईसा के पक्षपातियों के मौन में हमें केवल एक अभिप्रेत विस्मरण देख पड़ता है; क्योंकि अन्यथा सचाई का बताना, और अस्पष्टता की उस धुंध को, जिसमें उन्होंने इस विशाल रूप को ढाँपा हुआ है, छिन्न-भिन्न करना आवश्यक होता। सचाई यह है कि ईसा ने और उसके साथ ही उसके सबसे अधिक चतुर शिष्यों ने भी, जिनको उसने अपने परिभ्रमणों में अपने साथ मिला लिया था, इस अवधि में, मिसर में, प्रत्युत शायद भारत में भी, उन धर्म-पुस्तकों का अध्ययन किया था, जो केवल दीक्षितों के लिये ही शताब्दियों से रक्षित पड़ी थीं।

इसी रीति से क्राइस्ट (ईसा) ने पुरातन ऐतिह्यों का ज्ञान प्राप्त किया, और कृष्ण के आचरण तथा प्रयोजकत्व का अध्ययन किया। उसके सुपरिचित संवादों तथा शिक्षाओं में उन्हीं का प्रत्यादेश है।

मैं समझता हूं, स्वतंत्र विचारकों ( नास्तिकों ) की छावनी से भी मुझे आश्चर्य और विस्मय का ध्वनि उठता सुनाई दे रही है।

इसलिये हे तर्क-युक्तिवादियो, मैं केवल तुम्ही को सम्बोधन कर रहा हूं; क्योंकि ज्यों ही आप मतवादियों के पक्ष को स्वीकार करना छोड़ दें, त्यों ही उनके साथ किसी भी प्रकार का वाद-प्रतिवाद करना असंभव हो जाता है।

यदि आप ईसा के ईश्वरत्व में विश्वास नहीं रखते, तो मुझे उसके अग्रगामियों का पता चलाते देख आपको क्यों आश्चर्य होता है? उसका जन्म एक बे-समझ, क्योंकि वह बहुत कम संस्कृत थी, जाति में हुआ था, इसलिये वह केवल अध्ययन के द्वारा ही अपने को स्वदेश-बंधुओं से इतना उच्चतर कर सका कि उसने वह महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसको हम जानते हैं। हाँ, ईसा मिस्र में गया, हाँ, ईसा ने अपने शिष्यों के साथ पूर्व में अध्ययन किया। जो नैतिक क्रांति उन्होंने संपन्न की, उसका तर्कसंगत समाधान केवल यही है। परंतु प्रमाणों की भी कमी नहीं, मेरे इस मत पर, जिसे मैं केवल एक अनुमान नहीं, प्रत्युत एक ऐतिहासिक सत्य मानता हूँ, व्यवस्था देने के पहले प्रमाणों की प्रतीक्षा कर लीजिए।

ऐसे शब्दों से मत आरंभ कीजिए; मैं ऐतिहासिक सत्य कहता हूँ, क्योंकि यदि, मेरे सदृश ही, आप सृष्टिक्रमबाह्य, विस्मयोत्पादक, और प्रत्यादिष्ट बातों को नहीं मानते, तो केवल स्वाभाविक कारणों का अध्ययन करना ही शेष रह जाता है; और यदि हम और आप दोनों को अपनी पहली परीक्षाओं में एक ऐसा अधिक प्राचीनवाद मिला है, जो प्रत्येक बात में ईसा और उसके प्रेरितों के वाद से मिलता है, तो क्या हमें यह परिणाम निकालने का अधिकार नहीं कि इन शेषोक्त लोगों ने उन्हीं पुरातन स्रोतों से अपना प्रत्यादेश प्राप्त किया था?

क्या प्राचीन काल की सभी महान् आत्माएँ मानसिक संस्कृति के लिये मिसर में नहीं जाती थीं? क्या यह प्राचीन भूमि उस युग के सभी विचारकों, सभी दार्शनिकों, सभी ऐतिहासिकों और सभी वैयाकरणों का आश्रय नहीं बन रही थी। तब वे वहाँ क्या करने जाते थे? सिकंदरिया के उस विशाल पुस्तकालय में क्या भरा हुआ था, जिसके विध्वंस से सीज़र ने भावी संतानों के तिरस्कार के लिये अपने माथे पर कलंक का टीका लगा लिया?

यदि इस देश के प्राचीन गेलिन्थ, चमकते हुए आकाश-दीपक के सदृश, सारे बुद्धिमानों और सारे विचारकों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करते थे, तो पीछे से ब्रह्मसाक्षात्कारवादियों (Neo—Platonicians) ने वहाँ अपना प्रसिद्ध संप्रदाय क्यों स्थापित किया?

यूसुफ़ और मरियम के पुत्र ने भी लहर का अनुकरण किया; मिसर समीप था, और वह वहाँ शिक्षा पाने के लिये चला गया। प्रत्युत मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उसके माता-पिता ही बचपन में उसे वहाँ ले गए थे, और जैसा कि उसके इतिहास-लेखक कहते हैं, वह चाहे कुछ ही बहाना बनाया जाय, वहाँ से तब तक वापस नहीं आया, जब तक कि उसके मन में यहूदियों में अपने सिद्धांत का प्रचार करने का विचार उत्पन्न नहीं हुआ।

ईसा के विषय में अपना मत अधिक पूर्ण रीति से प्रकट करने के पहले यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्रेरितों द्वारा वर्णित उसके जीवन-चरित की, यथा-संभव संक्षेप से, परीक्षा कर ली जाय।

मरियम (मेरी), जो यूसुफ़ की भार्या होने पर भी अभी कुँआरी थी, त्रिमूर्ति के तीसरे व्यक्ति, पवित्र आत्मा के कार्य से गर्भवती हो गई, और बाइबिल की काल-गणना के अनुसार, सृष्टि-संवत् ४००४ के दिसंबर मास की २५वीं तारीख़ को ईसा का जन्म हुआ।

जन्म पर जिसके विषय में भविष्यद्वक्ताओं ने पहले ही बता रक्खा था, अनेक अद्भुत बातें हुईं; अलौकिक प्रत्यादेश से प्रेरित होकर गडरिए और पूर्व के तीन मजूस, नवजात के पूजन के लिये बैतुलहम में आए।

यरूसलम के राजा हीरोद ने 'मसीह' के प्रादुर्भाव से डरकर, क्योंकि कुछ भविष्यकथनों में बताया गया था कि मसीह उसे राज-सिंहासन उतार देगा,सेबैतुलहम और उसके इर्द-गिर्द के सारे देशों के दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चे मरवा डाले।

एक देवदूत के चेतावनी देने पर, अपने बच्चे को हत्या से बचाने के लिये, यूसुफ़ और मरियम मिसर में भाग गए, और हीरोद की मृत्यु के पश्चात् ही वहाँ से वापस आए। बारह वर्ष की आयु में ईसा ने मंदिर में अपने पांडित्यपूर्ण उत्तरों से पंडितों को चकित कर दिया।

तीस वर्ष की आयु में, बपतिसमा देनेवाले जोहन से जोर्दन के जल में आप बपतिस्मा लेने के उपरांत, वह अपना कार्य आरंभ करता है, और अपने शिष्यों-सहित प्रचार करता हुआ यहूदियों के नगरों में घूमता है। उसके परिभ्रमणों के तीन वर्षों में उसके साथ बहुत-से चमत्कार जोड़ दिए जाते हैं।

उसने कना ( Cana ) के विवाह पर पानी की मदिरा बना दी, नाइम ( Naim ) की विधवा के पुत्र लाज़रस को, उसकी मृत्यु के तीन दिन उपरांत, जिला दिया, लँगड़ों को चंगा कर दिया, अंधों की आँखें ठीक कर दीं, बहरों को श्रवण-शक्ति प्रदान की, और जिन व्यक्तियों में पापात्माएँ ( भूत ) घुसी हुई थीं, उनको उन से मुक्ति दिलाई।

फरीसियों और यहूदी पुरोहितों ने उस पर अपने को राजा बनाने के उद्देश्य से जनता को उत्तेजित करने का दोष आरोपित

किया, जिस पर वह पकड़ा जाकर यहूदिया के रोमन शासक पांटियस पाइलेट के सिपुर्द किया गया। उसने उसे यहूदियों के बड़े आचार्य कैफ़स (Caiphas) के पास भेज दिया। कैफ़स ने सन्हेंद्रिम (Sanhedrim) अर्थात् प्राचीनों की सभा द्वारा उसका विचार कराकर उसके लिये मृत्यु-दंड की आज्ञा दिलाई। दो चोरों के बीच एक सूली के साथ बँधा हुआ, अपने बाधकों को क्षमा करके, वह मर गया।

अपने शिष्यों को दिए हुए वचन के अनुसार मृत्यु के तीन दिन उपरांत वह फिर उठा, और पुनरुत्थान के चालीस दिन पीछे, अपने शिष्यों को घूम-घूमकर नए धर्म का प्रचार करने की आज्ञा देते हुए, वह आकाश पर चढ़ गया।

ईसा के इतिहास-लेखकों के अनुसार उसके जीवन की प्रधान घटनाएँ ऐसी ही हैं। जनता को मुग्ध करने और अनुयायी बनाने के प्रत्यक्ष उद्देश्य से सृष्टि और तर्क के नियमों के विरोधी चमत्कारों और आश्चर्यों से ईसा को परिवेष्टित करने की दुर्भक्ति की निंदा करने के लिये मुझे सहज बुद्धि विवश करती है।

उनके इस कार्य में कुछ नवीनता भी नहीं। उनके पहले, ऐसी ही सफलता के साथ, दूसरे कितने ही मनुष्यों ने यही कार्य किया था!

हाँ, तो ईसा के ये चरित्र-लेखक मेरी दृष्टि में वंचक-मात्र हैं।

यह मेरा विचार नहीं, मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि इन लोगों ने, निस्संदेह प्रशंसनीय उद्देश्य से, और अपने कार्य की सफलता को निश्चित करने के लिये, अपने सारे अग्रगामियों के सदृश, अपने साथ दिव्य अधिकार जोड़ने के अभिप्राय से इन संदिग्ध प्रमाण-चमत्कारों और अद्भुत बातों का आश्रय लिया था, और इसराएल के पुरोहितों की सौम्य और श्रेष्ठ बलि को परमेश्वर बना दिया था।

हा, यदि मनुष्य-समाज के इतिहास में यह बात जुदा ही होती, तो शायद हम विश्वास करने के विना ही, घुटनों के बल होकर, इस पर विवाद करने तथा इसको अस्वीकार करने से संकोच करते।

आइए, भूतकाल से पूछें।

सदा यही बात होती है कि अतीव दूरस्थ युगों की आलोचना करते समय, भूमंडल पर बसनेवाली भिन्न-भिन्न जातियों की सभी देवोत्पत्तियों में हम पृथ्वी पर परमेश्वर के आगमन की यह आशा पाते हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह आशा पुरातन जातियों की आकांक्षाओं से उत्पन्न हुई थी; क्योंकि वे अपनी न्यूनताओं तथा दुःखों को देखकर स्वभावतः ही श्रद्धा और प्रेम की लहर में जगत् के स्रष्टा परमात्मा से प्रार्थना करते थे। ब्रह्मा के देवा को परित्राता का वचन देने का पुरातन उपाख्यान इन आकांक्षाओं का फल, ईश्वरीय अवतार की संभावना में इस विश्वास का काव्य-मय प्रकटीकरण-मात्र है।

इस व्यापक विश्वास के अनेक परिणाम हुए। कृष्ण अपने को प्रतिज्ञात परित्राता, ईश्वर की संतान विघोषित करता जान पड़ता है, और समग्र भारत उसको ऐसा ही मानकर उसका पूजन करता है।

बुद्ध अपनी बारी से इन्हीं अभियोगों के साथ आता है। ब्राह्मणों द्वारा भारत से बाहर निकाले जाने पर वह तिब्बत, तातार, चीन और जापान में अपने सिद्धांत का प्रचार करने जाता है, और ये देश उसे देवता बना देते हैं, उसे वही मसीह ( जगत्-त्राता ) समझकर स्वागत करते हैं, जिसकी युग-युगांतर से प्रत्याशा की जा रही थी।

इसके उपरांत ज़र्दुश्त ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध ईरान को भड़काकर अपने को ईश्वर का दूत प्रकट करता है, और

जनता को अपने ग्रंथ अथवा धर्म की पुस्तकें देता है, जो उसने परमेश्वर के आदेश से लिखी थीं।

मिसर में मेनस और यहूदिया में मूसा अपने को ईश्वर के दूत और भविष्यद्वक्ता बताकर इस ऐतिह्य को जारी रखते हैं। लोग घुटनों के बल झुकते और विश्वास बनाए रखते हैं।

अंत को क्राइस्ट ( ईसा ) आया। उसका जीवन छोटा था, उसे प्रचार करने के लिये मुशकिल से ही समय मिला था कि झट यहूदियों ने उसे मार डाला। परंतु उसके शिष्य बच रहे। पूर्ववर्ती अवतारों के बनाए हुए मार्ग का अनुगमन करते हुए उन्होंने चमत्कारों और लोकोत्तर बातों द्वारा उसकी स्मृति को प्रतिष्ठित किया, और इस न्यायपरायण मनुष्य को परमेश्वर बना दिया, यद्यपि उसकी अपने जीवन में यह कभी आकांक्षा न थी। परंतु जैसा कि आपको अभी पता लग जायगा, वे चतुर नहीं थे; क्योंकि प्रत्येक बात में हिंदू अवतार की नक़ल करके, उन्होंने हमें अपने प्रत्यादेश का स्रोत मालूम करने की आज्ञा दे दी है, और मिसर तथा पूर्व में उनके पूर्व अध्ययन के सुनिश्चित प्रमाण स्वयं उन्हीं से मिलेंगे।

क्या यह कहा जायगा कि यदि प्रेरितों ने अपना निज का ईश्वर बनाया होता, तो वे अपने विश्वासों के लिये कभी प्राण न देते ?

धर्म में, राजनीति के सदृश, इस युक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं। मार्ग-दर्शक को धर्मवीर बनाने से बढ़कर और कोई बात सुगम नहीं। पीड़न का परिणाम सदा यही होता है कि अपराधी भी उसी भित्ति पर आ पहुँचता है, जिस पर सच्चा मनुष्य होता है, और उसके भी बहुत-से उत्सुक पक्ष-पोषक बन जाते हैं।

मेरी धारणा है, आप नहीं मानते कि कृष्ण परमेश्वर था, बुद्ध भी विष्णु की ही संतान था, और ज़र्दुश्त को उर्मुज़्द ने भेजा था। तब कहिए, इन मनुष्यों के पक्षपातियों ने अपनी श्रद्धा की रक्षा

के लिये कैसे प्राण दिए होंगे, पूर्व की जलती हुई चिताओं को अपने रक्त से कैसे बुझाया होगा, और अपने पीड़कों को कैसे थका दिया होगा ?

मुझे सारी धार्मिक असहिष्णुताओं की सभी बलियों का, पाप के सभी भक्तों का, जो पुण्य के भक्तों के समान ही बहुसंख्यक हैं, रहस्य बताइए ।

मुझे बताइए कि मोहम्मद के पहले और थोड़े-से स्वामि-भक्त अनुगामियों ने भविष्यद्वक्ता की रक्षा करते हुए मक्के में कैसे प्राण दिए, जब कि इस बीच में वह स्वयं लोगों के प्रकोप से डरकर भाग गया ।

अच्छा, अब निकट का उदाहरण लीजिए । क्या आप कैथोलिक पादरी जॉन हस्स की उत्साही मूर्ति को, अपनी छाम्रिक भूलों को वापस लेने से इनकार करने के कारण, कैथोलिक संप्रदाय द्वारा जलाई जाती देखते हैं ?

उसने अपने तईं क्यों नहीं बचाया, जब वह एक ही शब्द से बचा सकता था ?

और, मध्य समयों के यहूदियों का मूसा के धर्म के लिये मरना, जिसको वही कैथोलिक मत, उसका निषेधकरते हुए भी, स्वीकार करता है । और, वौडोइस (Vaudois), ममिसर्ड (Mamisards), सेंट बार्थोलोमियो के प्रोटेस्टेंट, और पाखंड-शासन सभा की घृणित नर-हत्याएँ !

किसी आदर्श के लिये प्राण देनेवालों की एक सूची तैयार कीजिए, साथ ही उसी रात को उसके विपरीत आदर्श के लिये मरनेवालों की भी गिनती कीजिए, फिर कहिए, क्या हम भूल के लिये भी उसी निर्भीकता से प्राण नहीं देते, जिससे सच्चाई के लिये देते हैं ।

निश्चय रखिए, क्रांति के मुखिया उसके लिये मरने में, उस जन-

समूह के सामने, जिसके मत को वे जीत चुके हैं, मृत्यु को ललकारने में कभी संकोच नहीं करते, और प्रेरितगण एक क्रांति के मुखिया थे।

यदि वे चाहते, तो भी उनके लिये सूली, चिता अथवा मल्ल-भूमि से बचना असंभव था। जो ईसाई उन्हें मरता देख रहे थे उन सबसे यह कहना असंभव था कि "हमने तुम्हें धोका दिया है, और सबसे पहले हम ही अपने विश्वासों को वापस लेते हैं।"

इसके अतिरिक्त, अपने अर्थ के लिये जीवनोत्सर्ग करने में क्या उनका कोई प्रयोजन न था, जो उनकी आत्मभक्ति को संतुष्ट करता था। उन्होंने उस आचरण के लिये कष्ट और वेदनाएँ सहन कीं, जिसको उन्होंने पाया था; उन्होंने मनुष्य-समाज के पुनरुद्धार के लिये प्राण दिए, और इसमें—केवल इसी में उनका विश्वास था।

हम सभी प्रकार के मतों के लिये यातनाओं और चिताओं के अभिमुख होते हैं, और सभी धर्मों और पंथों में धर्मवीर हुए हैं, इसलिये क्या मेरा यह मानना ठीक नहीं कि प्रेरितों की मौतें, जो अपनी धार्मिक चेष्टा की बलि थे, ईसा के ईश्वरत्व के विषय में कुछ भी सिद्ध नहीं करतीं?

वह ईश्वरत्व उनके काम के लिये आवश्यक था; सारा अतीत काल उन्हें यह दिखला रहा था कि इसके विना सफलता नहीं हो सकती, और चमत्कार और आडंबर के विना लोगों को आकृष्ट नहीं किया जा सकता। ईसा की मृत्यु के उपरांत क्या उन्होंने अपने में लोकोत्तर कर्म करने की शक्ति का होना प्रसिद्ध नहीं किया? हम किससे यह मानने की प्रत्याशा करते हैं कि पीटर मृतकों को जिलाता, लँगड़ों को चंगा करता और जिन-भूतों को निकालता रहा। अनेकों में से एक उदाहरण लीजिए—"ऐंद्रजालिक सिमन ने, जो स्वयं चमत्कार किया करता था, डीकन फ़िलिप से बपतिस्मा लेने पर, पीटर से प्रार्थना की कि मुझे भी लोकोत्तर कर्म करने की शक्ति प्रदान कीजिए। इस पर

जब प्रेरितों के मुखिया ने उसे शाप दिया, तब उसने अपने को भक्तों की संगति से अलग कर लिया, और अपने तईं भी परमेश्वर का पुत्र बताकर अपनी तरफ़ से प्रचार करना आरंभ कर दिया।

"सम्राट् नीरो के सामने सेंट पीटर को ललकारकर वह अपनी ऐंद्रजालिक शक्ति के प्रताप से, जनता के एक बड़े समुदाय के सम्मुख, आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ गया।

"परंतु सेंट पीटर के परमेश्वर से प्रार्थना करने पर ऐंद्रजालिक सिमन सार्वजनिक चौराहे में गिर पड़ा, और उसकी टाँगें टूट गईं।"

क्या ऐसी असंगतियाँ इस योग्य हैं कि उन पर विचार किया जाय? और क्या कोई सहज बुद्धि रखनेवाला मनुष्य ऐसी हास्यजनक कथाओं में विश्वास प्रकट करने का साहस करेगा?

सिमन में यह ऐंद्रजालिक शक्ति कहाँ से आई? हमें उत्तर मिलेगा कि शैतान से। बेचारे शैतान, ये लोग तेरा कैसा दीन रूप बनाते हैं! शताब्दियों तक तू पृथ्वी पर अपने को जोखिम में डालने, मनुष्यों के शरीरों में प्रतिष्ठित करने, लोकोत्तर कर्म करने और ईश्वर के साथ स्पर्धा करने का साहस करता है........तब एकाएक तू पुलिस की संस्था के सामने लज्जाहीन होकर भाग जाता है··· ·· ···और आज तू श्रीयुत व्यूलॉट (M. Veuillot) और आर्चबिशप डूपनलोप (Archbishop Dupanloup) [लार्ड शेफ़्टसबरी और मिस्टर स्परजन] के प्रयोग के लिये अलंकार से बढ़कर और कुछ नहीं।

अब तक भी इधर-उधर कई चमत्कार दिखानेवाले और मायाकार हैं, परंतु वे अब बड़े-बड़े कामों का साहस नहीं करते; छठा कमरा उनसे काम लेना ख़ूब जानता है।

आओ, हम इन सब चमत्कारों और मायाकारों को तिलांजलि दे डालें, जो मनुष्य-समाज के अंधकारमय युग में ही बढ़ और फूल

सकते हैं, जब कि लोग, स्वेच्छाचारिता द्वारा हतवीर्य और पराजित होकर अपनी आत्मा और उस अमर ज्योति को छोड़, जो स्वयं परमेश्वर ने हमारे पास न्यस्त की है, अधिष्ठाताओं की अन्यत्र तलाश करते हैं। सभ्यता अर्थात् स्वतंत्रता की प्रगति उन सब बातों की समाप्ति कर देती है, जो विचार, परीक्षा और दिन के प्रकाश को सहन नहीं कर सकतीं।

हम अभी यह दिखलावेंगे कि ईसा के प्रेरितों ने, यहूदी धर्म को छोड़ और पूर्व के पुरातन पवित्र ऐतिह्यों से प्रोत्साहित होकर, किस प्रकार अपने नवीन संप्रदाय पर प्राचीन हिंदू-समाज—कृष्ण की सामाजिक पद्धति की शुद्ध और सरल छाप लगाई थी।

सभी प्राचीन जातियों ने श्रेष्ठ वैदिक धर्म को भूलकर, निरंकुश याजकीय पौराणिक धर्म से ही शिक्षा पाई थी। इस पौराणिक धर्म ने वैदिक धर्म के थोड़े-से उज्ज्वल ऐतिह्य ही लिए थे।

इसके विपरीत, प्रेरितों में कृष्ण और वेदों की ओर लौटने की बुद्धिमत्ता थी। मैं इसे उनका सबसे बड़ा गुण समझता हूँ। और, यदि उनमें आश्चर्यजनक बातों को छोड़ देने का साहस न था, क्योंकि संसार अभी विचार की स्वतंत्रता द्वारा पूर्ण पुनरुदय के लिये तैयार नहीं हुआ था, तो वे अपने उस दुस्साहस के कारण हमारी क्षमा के पात्र हैं, जिसके साथ उन्होंने, अपने प्राण और संपत्ति की कुछ भी परवा न करके, उन पवित्र और श्रेष्ठ सिद्धांतों का निर्भयता से प्रचार किया, जो उन्होंने दूसरे कालों की धर्म-पुस्तकों से प्राप्त किए थे।

इन लोगों की ऐसी ही सचाई है। इनकी निर्भयता और भक्ति की हम जितनी भी प्रशंसा करें, थोड़ी है। परंतु हमें सदा इस बात का खेद है कि उन्होंने अपने अग्रगामियों के निस्सार कुसंस्कारों को पाँव के नीचे रौंदने का साहस नहीं किया।

अब इसी प्रणाली की खोज करनी है। कदाचित् मैं अपने सिद्धांतों को वैसा स्पष्ट न कर सकूँ, जैसा कि वे मुझे प्रतीत होते हैं। इस कार्य को दूसरों को जारी रखना चाहिए। संस्कृत को एक अभिजात भाषा बना दो, भारत में एक बढ़िया स्कूल स्थापित करो, और चुने हुए मनुष्य भेजो, जो संसार के सामने वे सहस्रों हस्तलेख निकालकर रख दें, जिन्हें यह प्राचीन देश हमारे लिये छोड़ गया है। फिर हम देखेंगे कि भविष्य कैसे हमारे सिद्धांतों की पुष्टि नहीं करता।

हम इसको फिर दुहराते हैं, यदि वे लोग, जिन्हें हम प्राचीन कहते हैं, आधुनिक जातियों के पूर्वज थे, तो उसी प्रकार प्राचीन भारत भी प्राचीन काल की सभी सभ्यताओं का गुरुदेव था।

---

काफ़ी हो चुकी; यदि संभव है, तो आइए केवल एक क्षण के लिये ही तर्क से काम लें।

क्या कोई गंभीर विचारोंवाला मनुष्य यह मान सकता है कि यदि ईसा ने यहूदियों के सामने वे सारे चमत्कार दिखलाए होते, जो बाइबिल के लेखक उसके साथ ठहराते हैं, तो वे उसका जय-जयकार न करते ?

यदि मेरी बात पूछो, तो मेरा तो यह विश्वास है कि ऐसे आश्चर्य-कर्मों को न माननेवाले बहुत थोड़े मनुष्य निकलते, और ईसा प्रतिष्ठित शासन के विरुद्ध लोगों को भड़काने की चेष्टा करनेवाले नीच मुखिया के सदृश—क्योंकि इसराएल के पुरोहित उसे ऐसा ही समझते हैं—सूली पर न मरता।

हम अब उस युग में नहीं हैं, जब लोकोत्तर बातें भी सृष्टि-नियम के अनुकूल समझी जाती थीं, और बे-समझे लोग उनके आगे सिर झुका देते थे। भला अब कोई मनुष्य हमारे अंदर आवे, जो अपने जीवन के तीन वर्षों में चमत्कारों पर चमत्कार दिखलाता रहा हो, पानी को मदिरा बना देता हो पाँच मछलियों और दो-तीन रोटियों के साथ दस, पंद्रह, बीस सहस्र व्यक्तियों की क्षुधा-निवृत्ति कर देता हो, मृतकों को जिलाता हो, बहरों को कान और अंधों को आँखें देता हो इत्यादि-इत्यादि। फिर देखते हैं कि उसको बदनाम करने की किस फरीसी और किस याजक में शक्ति है।

परंतु इसके लिये मृतक सचमुच ही मृत हो, यदि उसमें से कुछ दुर्गंध आती हो, तो यह लाज़रस की तरह उसके जिलाने में रुकावट न समझी जाय; जिस पानी को मदिरा बनाई जाय, वह सचमुच ही पानी हो; अंधे और बहरे विनय के अंधे और बहरे न हों; और वास्तव में कोई भी बात भौतिक अथवा प्राकृतिक विज्ञान के साथ मेल-मिलाप करनेवाली न हो।

यदि यहूदियों ने ईसा को स्वीकार नहीं किया, तो इसका कारण यह था कि यह गंभीर प्रचारक अपने कर्तव्यानुराग की घोषणा करने और अपने पवित्र उदाहरण से उसकी पुष्टि करने में ही संतुष्ट था; परंतु उस व्यापक शीलभ्रंश में उसका पवित्र जीवन एक दूषण समझा गया और सभी शक्तिशाली शीलभ्रष्ट लोग उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए।

उसकी मृत्यु से सावधान होकर उसके प्रेरितों ने अपनी कार्य करने की रीति को बदल दिया। सर्वसाधारण पर अलौकिक बातों के प्रभाव का अनुभव कर उन्होंने कृष्ण के अवतार का फिर से निर्माण किया, और इसके प्रताप से वे उस कार्य को जारी रखने में समर्थ हुए, जिसमें उनके गुरु की जान गई थी।

कुमारी मरियम के गर्भवती होने और ईसा के ईश्वरत्व का यही कारण है। जीसस ( Jesus ) अथवा यसूह ( Jeosuah ) और जेज़िउस ( Jezeus ) के नामों से, जो हिंदू तथा ईसाई जगत्-त्राताओं ने समान रूप से धारण किए थे, मैं कुछ भी अनुमान नहीं करता।

जैसा कि हम दिखला चुके हैं, जीसस ( Jesus ), यसूह ( Jeosuah ), जोसियस ( Josias ), जोसू ( Josue ) और जेओवह ( Jeovah ) आदि सब नाम दो संस्कृत शब्दों, ज़िउस ( Zeus ) और जेज़िउस ( Jezeus ) से व्युत्पन्न हुए हैं, जिनमें से एक तो परमात्मा को और दूसरा दिव्य तत्त्व को प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त, ये नाम न केवल यहूदियों में ही, प्रत्युत सारे पूर्व में प्रचलित थे।

परंतु कृष्ण और क्राइस्ट के नामों की यह बात नहीं। यहाँ हमें स्पष्ट अनुकरण मिलता है, प्रेरित हिंदुओं से माँगते दिखाई देते हैं। मरियम के पुत्र का जन्म के समय केवल ईसा ( जीसस ) नाम रक्खा

गया था; मृत्यु के उपरांत ही भक्तों ने उसे ख्रीष्ट ( क्राइस्ट ) नाम से पुकारना आरंभ किया।

यह शब्द इबरानी नहीं, यदि प्रेरितों ने देवांगी के पुत्र के नाम को नहीं अपनाया, तो बताइए, यह कहाँ से आ गया ?

संस्कृत में कृष्ण का अर्थ है ईश्वर का दूत, ईश्वर द्वारा प्रतिज्ञात और पवित्र।

हम कृष्ण के हिज्जे Kristna की अपेक्षा Christna अच्छा समझते हैं; क्योंकि संस्कृत के महाप्राण ष को भाषातत्त्व-शास्त्र की रीति से हमारे सादे K की अपेक्षा Ch, जो आप भी महाप्राण हैं, अधिक अच्छी तरह से प्रकट करता है। इसलिये हमने व्याकरण के नियम का पालन करने के लिये ही Ch लिखा है, न कि सादृश्य उत्पन्न करने की इच्छा से।

परंतु यदि कृष्ण का यह विशेषण पूर्ण रूप से हिंदू अवतार पर लागू है, तो यह समान रूप से ईसाई अवतार पर तब तक लागू न होगा, जब तक कि हम नाम को आचरण तथा प्रयोजकत्व-सहित नक़ल किया हुआ न मान लें।

क्या यह कहा जायगा कि यह नाम यूनानी क्रुस्टोस (Christos) से निकला है ? इस बात को छोड़कर कि बहुत-से यूनानी शब्द विशुद्ध संस्कृत हैं, और यह बात इस सादृश्य का भी समाधान करती है, ईसा के लिये, जो जन्म से यहूदी था, और जिसने अपना संग्राम-शील जीवन अपने स्वदेश-बंधुओं में बिताया, और उन्हीं में उसकी मृत्यु हुई, यह यूनानी उपनाम किस लिये चुना गया ? इसका एक-मात्र तर्कसंगत अनुमान यह है कि ईसा का यह नाम पुरातन पौराणिक धर्म के नमूने पर एक नवीन समाज बनाने के लिये ग्रहण की हुई पूर्ण पद्धति का एक भाग था।

---

## चौथा अध्याय

### भारत और यहूदिया में निरपराधों की हत्या

मथुरा के अत्याचारी राजा कंस ने, कृष्ण का निश्चय करने के लिये, जिसके द्वारा उसे गद्दी से उतारा जाने का भय था, उन सब लड़कों को मार डालने की आज्ञा दी, जो उस रात उत्पन्न हुए थे, जिस रात कृष्ण का जन्म हुआ था।

यहूदिया के राजा हीरोद ने, उसी उद्देश्य से, बैतुलहम और उसके इर्द-गिर्द के प्रदेश में दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चे मरवा डाले।

भारत के ग्रंथ, क्या वैज्ञानिक, क्या ऐतिहासिक और क्या धार्मिक, पुराण, शास्त्र, महाभारत, भगवद्गीता, भगवद्-शास्त्र, सब इस घटना की सत्यता की साक्षी देते हैं; परंतु वह वृत्तांत, जिसका समान रूप से हीरोद के साथ संबंध ठहराया जाता है, हमारे पास केवल प्रेरितों द्वारा ही पहुँचाया गया है; अर्थात् केवल उन्हीं लोगों ने हमें इसकी सूचना दी है, जिनका इसको ताज़ा करने में स्वार्थ था।

समकालीन इतिहास ने इस प्रगल्भ अन्याय का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। जिस काल में इस पाप का किया जाना प्रकट किया जाता है, उसमें इसका होना सभी समझदार लोग वस्तुतः असंभव कहते हैं। हीरोद कभी ऐसे बलिदान का उत्तरदायित्व और घृणा अपने ऊपर लेने का साहस न करता।

यह राजा कौन था? केशियश ( Cassius ) और अंटनी ( Antony ) के साथ भाग लेने के कारण अंटनी के कहने पर रोमन सेनेट ( Roman Senate ) ने इसका नाम यहूदिया का

मांडलिक राजा (Tetrarch of Judea) रख दिया था। सर्वथा आधुनिक मृदु भाव का मनुष्य होने के कारण वह समयानुसार रंग बदलना ख़ूब जानता था, और आगस्टस ने उसका राजसिंहासन उसी के पास रहने दिया। परंतु वास्तव में वह एक रोमन गवर्नर-मात्र था, और स्वयं बाइबिल उसको निम्नलिखित वाक्य में कुछ और नहीं समझती—

"उस समय सीज़र आगस्टस की ओर से राज्य के सारे अधिवासियों को गिनने की राजाज्ञा आई। यह पहली मनुष्य-गणना सीरिया के गवर्नर कायरिनस (Cyrinus) ने की, और सब लोग अपने-अपने ग्रामों में लिखे जाने के लिये गए। यूसुफ़ नज़रत (Nazareth) में गया, जो गलीली में है, और आपको अपनी स्त्री मरियम के साथ, जो बच्चेवाली थी, लिखे जाने के लिये दाऊद के नगर बैतुलहम में आया; क्योंकि वह उस जाति का था।......"

यह कैसे माना जा सकता है कि हीरोद ने, जो प्रो-कौंसिल कायरिनस (Consul Cyrinus) के अधीन एक इंपीरियल गवर्नर (अधिराजक शासक) था, क्रूरता का ऐसा निरर्थक और ऐसा मूढ़ कार्य संभवतः किया होगा? क्या आगस्टन-काल में, उस चित्त-प्रबोध और ज्ञान के युग में, एक मूर्ख, क्योंकि उसे और कोई नाम दिया नहीं जा सकता, सैकड़ों, शायद सहस्रों बच्चों ❀ की बाइबिल के कथनानुसार दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चों की हत्या करने का साहस करता है, और एक भी पिता न्याय की भिक्षा माँगने के लिये आकर कायरिनस अथवा सम्राट् के पाँव पर नहीं गिरता, मनुष्यता के नाम पर प्रतिवाद और प्रतिषेध के लिये एक भी बुद्धिमान् अथवा क्रुद्ध व्यक्ति आवाज़ नहीं उठाता? वे माताएँ अपने निरपराध बालकों के मारे जाने पर रोती न थीं?

❀ कुछ प्रमाणों के अनुसार १४०००।

क्या उस समय न्यायपरता और ममता सब कहीं सो रही थी ?

क्या टेसिटस ( Tacitus ) ने, जिसने स्वेच्छाचारी शासकों के अत्याचारों पर घृणा की अमिट छाप लगाई है, ऐसे कलंकों को निंदा के योग्य नहीं समझा ?

कुछ नहीं—सदा मौन की पाप सहायता।......

ईसा के प्रेरितों, तुमने मानवीय श्रद्धालुता पर बहुत ज़्यादा भरोसा किया है, बहुत ज़्यादा विश्वास किया है कि भविष्य तुम्हारी चालों और तुम्हारे मन:कल्पित वर्णनों का पर्दा न फाड़ेगा; तुम्हारे उद्देश्य की पवित्रता ने तुम्हें साधनों के विषय में बहुत ज़्यादा विस्मारक बना दिया है, और एक दूसरे युग की कथाओं को, जिन्हें तुम सदैव के लिये दब गई समझ बैठे थे, फिर से जारी करने में तुमने जनता की श्रद्धा पर अचानक छापा मारा है।

क्या यह आपत्ति की जायगी कि जोसेफ़स ( Josephus ) निरपराधों की इस हत्या का उल्लेख करता है ? यह युक्ति निस्सार है; इस बात को छोड़कर भी कि यह लेखक अपनी दुर्भक्ति के लिये प्रसिद्ध है, वह कुछ भी प्रमाणित नहीं करता, और उस काल के साठ वर्ष उपरांत एक बात को, प्रत्युत एक भूल को, जिसका प्रेरित पहले ही विश्वास दिला चुके थे, केवल दोहरा देता है।

यह एक अलंघ्य सचाई है कि बाइबिलों के प्रकाशन के पहले इस असंगत घटना का, जो यदि हुई होती, तो सार्वत्रिक घृणा की आवाज़ पैदा किए विना कदापि न रहती, कुछ भी चिह्न ढूँढना असंभव है। नहीं, ऐसा भीषण पाप कभी नहीं किया गया।

सभी रोमन कैथोलिक ऐतिहासकों ने मर्मस्पर्शी एकवाक्यता के साथ हीरोद को भावी जातियों के अभिसंपात के अर्पण कर दिया है। अब समय है कि उस पर से उन गर्ह्य दूषणों का एक बड़ा भाग

धो डाला जाय, जो उस पर लगाए जाते रहे हैं, और स्वार्थी लोगों को छोड़कर उसका गौरव उसे वापस दिलाना बड़े पुण्य का कार्य होगा।

उसके जीवन की एक घटना है, जो सभी राजों के लिये उदाहरण के तौर पर उद्धृत की जा सकती है, और जो विशेषतः उस अहंमन्यता और अवपात के युग में हृदय की एक अत्युत्कृष्ट साधुता को प्रकट करती है।

यहूदिया में एक बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। हीरोद ने अपनी प्रजा के दुःखों को दूर करने के लिये अपनी भूमि, अपने घर के बहुमूल्य पदार्थ और अपनी रकाबी बेच डाली।

क्या आप समझते हैं, यह एक बच्चों की हत्या करनेवाले का काम था?

कैथोलिक-इतिहास जब किसी को कलंकित करने लगता है, तो बहुत समीप से नहीं देखता; किंतु यह केवल सुसाध्यता को देखता है, जिसके साथ यह समान रूप से अपने विशेषज्ञों के सारे पापों को क्षमा करने के लिये तैयार है। कैसी-कैसी स्तुति और कैसी-कैसी नीच चाटूक्तियाँ इसने कांस्टेंटाइन पर नहीं लादीं, जिसने अपनी स्त्री तथा पुत्र के रक्त से हाथों को रँगते हुए ईसाइयों की रक्षा की, और विधर्मियों पर अत्याचार किया।

पूर्व के प्राचीन ऐतिह्यों को अति चाटुकारिता से ग्रहण करने से प्रेरितगण यहाँ तक जा पहुँचे थे! उन्हें अत्याचारी कंस के दूसरे संस्करण की आवश्यकता थी, और उनका पवित्र क्रोध हीरोद पर गिरा।

इन सब नीचताओं के फल निकले, और हम जानते हैं कि इतिहास को झुठलाने में उनके उत्तराधिकारी कितने चालाक थे और अब भी हैं।

# पाँचवाँ अध्याय

## हिंदू और ईसाई रूपांतर

कृष्ण, अपने अनुयायियों को, जो उनके विरुद्ध कंस की भेजी हुई बड़ी-बड़ी सेनाओं को देखकर काँप रहे थे, पुनराश्वासन देने के लिये अपनी पूर्ण दिव्य विभूति में उनके सम्मुख प्रकट हुआ।

यह रूप-परिवर्तन न्यायसंगत और समझ में आने योग्य है; यह एक बड़े भय के सम्मुख अर्जुन तथा इस हिंदू-जगत्-त्राता के अन्य अनुयायियों के बैठते हुए हृदयों को खड़ा करने का सर्वोत्तम साधन था।

बाइबिल-लेखकों के अनुसार, ईसा अपने साथ पीटर, जेम्स और जॉन (John) को एक ऊँचे पर्वत पर ले गया, और उनके सामने उसने रूप बदल लिया। "उसका मुखमंडल सूर्य की तरह चमकता था, और उसके वस्त्र हिम के सदृश श्वेत हो गए।"

इस लोकोत्तर कर्म के लिये कोई भी निमित्त नहीं बताया जाता, केवल ईसा पर्वत पर चढ़कर अपने साथियों से कहता है—"जब तक 'मनुष्य का पुत्र' मृतकों में से दुबारा न उठ बैठे, इस दर्शन की बात किसी से न कहना।"

पुनरुत्थान के पहले मत बताना। ईसा लाज़रस को पुनर्जीवित कर देता है, योधशताधीश के पुत्र को चंगा कर देता है, परंतु इस छोटे-से चमत्कार पर यह प्रत्यादेश करता है।

परंतु तनिक न्याय से काम लीजिए। यदि आप जगत्-त्राता हैं, तो अपने उन कामों को, अपनी उन अभिव्यक्तियों को, क्यों छिपाते हैं, जो जनता की आँखें खोल सकती हैं। आप मृत्यु के पश्चात् इन

सारी बातों को प्रकट करने का काम अपने शिष्यों के लिये क्यों छोड़ते हो ?

इसका उत्तर सुगम है, उद्देश्य प्रत्यक्ष है, परन्तु चालाकी भद्दी है ।

इस क्षुद्र चातुर्य पर विचार कीजिए, प्रेरितगण युक्ति के मूल्य का अनुभव करते हैं, और इस बात का ध्यान रखते हैं कि स्वयं ईसा से ही इसका खंडन कराया जाय । विश्वासी पूछ सकते हैं कि हमें समझाइए, हमने ईसा के इन सब चमत्कारों का उल्लेख कभी क्यों नहीं सुना ?

इसका उत्तर बड़ा सरल है । वे कह सकते हैं कि ईसा ने हमें इनके बताने का निषेध कर रक्खा था, और केवल उसकी मृत्यु के उपरांत ही इन चमत्कारों को प्रकाशित करने की हमें आज्ञा मिली है ।

निर्बलों, श्रद्धालुओं और विकलमतियों के लिये तो आपका यह काम ख़ूब है, परंतु दूसरों के लिये आपने क्या किया ?

पर अभी तक इस बात का कोई समाधान नहीं कि वे सहस्रों मनुष्य, जिनका थोड़ी सी मछलियों से पेट भर गया था, और काना (Cana) के बराती चुप कैसे रहे; किस प्रकार.........परंतु हम पुनरुक्ति कर रहे हैं, यह सदा एक ही बात है । ये सब बातें कितनी बासी हैं !

मूसा जब यहोवह के साथ बातचीत करने के लिये पर्वत पर गया, तब उसने मृत्यु-दंड का भय दिखाकर सब इसराएल-वंशियों को आज्ञा दी कि मेरे पीछे कोई न आवे ।

ज़र्दुश्त ने उर्मुज़्द के पास अकेले ही अपने नोस्क लिखे थे !

बुद्ध को जब ब्रह्म के साथ संभाषण करने की इच्छा हुई, तब उसने अपने अनुयायियों को अपने पास से हटा दिया ।

कृष्ण और ईसा ने केवल अपने प्रेरितों के सामने ही रूप परिवर्तन किया, यद्यपि अविश्वास को दूर करने के लिये यह कर्म जनता

के सामने होना चाहिए था। और, इन सब लोगों के नमूने पर, जो प्रकाश से डरते थे, सबसे पीछे आनेवाला मुहम्मद भी ईश्वर से आदेश पाने के लिये अकेला गुहा में जा बैठता है।

परंतु आशा है, ये सब बातें अब बीत चुकीं। अब हमें सदा के लिये इन सब चमत्कार-करनेवालों से, जो अपनी अद्भुत बातों को गढ़ने के लिये पर्दे के पीछे जा छिपते हैं, छुटकारा मिल गया।

पाँच-छः सहस्र वर्ष तक पुरोहित ने अपने स्वार्थ के लिये ईश्वर की कल्पना का अपहार और स्वतंत्रता का बहिष्कार करके संसार पर शासन किया है। इस अपकर्षकारिणी शक्ति की अर्थी निकालने, भूत का परित्याग करने, और एक सच्चे मनुष्यत्ववादी भविष्य को स्थापित करने का यह समय है।

प्राचीन हिंदू-अवतार ने इस भूतकाल को हिलाया, और उसका अनुकरण करनेवालों तथा वागपहारियों की भी कमी नहीं रही। आओ, हम उन अंतिम जड़ों को भी काट डालें, जो स्वतंत्र और यथोचित प्रगति को रोकने के लिये पृथ्वी में से फिर अंकुरित होने की धमकी दे रही हैं।

स्वतंत्रता पुरोहित का अनुकरण नहीं करेगी, न वह उसका बहिष्कार करेगी, किंतु उसे राजनीति और शासन से बाहर निकालकर फिर मंदिर में बैठा देगी, जहाँ से जब कभी वह निकला है, अपकर्ष और शीलभ्रंश का गुप्त साधन बनकर ही निकला है।

---

# छठा अध्याय

## धार्मिक स्त्रिया, निचदर्ला, सरस्वती और मेगडलीन

निचदर्ली और सरस्वती-नामक धार्मिका स्त्रियों के उपाख्यान को बाइबिल के लेखकों ने मेगडलीन के उपाख्यान में पुनर्जीवित किया है, यह सुगमता से पहचाना जाता है।

हिंदू-स्त्रियाँ पूजा के लिये कृष्ण के पास जाती हैं, और लोग उनकी धृष्टता पर कुड़कुड़ाते हैं।

यहूदी-स्त्री उसी उद्देश्य से ईसा के पास जाती है, और 'Apostles' उसे मारकर हटा देना चाहते हैं।

निचदली ( Nichdali ) और सरस्वती कृष्ण के सिर पर सुगंधियाँ डालती हैं।

यही काम मेगडलीन का बताया जाता है।

इन मिथ्या कथाओं में एक-मात्र भेद यह है कि प्रथमोक्त यद्यपि नीचतम जाति की है, पर धार्मिका और निष्कपट है, और संतानवती होने की प्रार्थना करने आती है; परंतु शेषोक्त एक वेश्या है और अपने पापों के लिये क्षमा माँगती है।

यहाँ हिंदू-प्रभाव फिर निर्विवाद है, यद्यपि यह कुछ अर्थहीन विस्तारों से अपने को कम प्रकट करता प्रतीत होता है।

नैतिक सिद्धांत वही है, निर्बल और पीड़ित सब मेरे पास आवें, न्याय जैसा अशरणों के लिये वैसा ही बलवानों के लिये है, जैसा अपराधियों के लिये वैसा ही न्यायपरायणों के लिये है।

ये ऐसे श्रेष्ठ सिद्धांत हैं, जिनके अनुसार कृष्ण के उत्तराधिकारी ब्राह्मणों को जनता का शासन करके ही संतुष्ट हो जाना चाहिए था,

और जिनको ईसा के उत्तराधिकारियों को कभी न भूलना चाहिए था। अब अधिक विचारों की आवश्यकता नहीं। हम पाठकों को उन्हीं युक्तियों की पुनरुक्ति से थकाना नहीं चाहते।

---

# सातवाँ अध्याय

दसवा हिंदू-अवतार, अथवा राक्षसों के राजा के साथ युद्ध करने के लिये कृष्ण का पृथ्वी पर जन्म—सेंट जॉन की इंजील

**एक सरल प्रश्न—**

सारे हिंदू भविष्यकथन इस दसवें अवतार की, अर्थात् कृष्ण के पृथ्वी पर आने की, घोषणा करते हैं। महाप्रलय के पहले, राक्षसों के राजा के साथ, जो घोड़े के रूप में वेश बदले हुए होगा, भीषण युद्ध करके उसे फिर नरक में भगा देने के अभिप्राय से, जहाँ से वह अपनी प्रभुता को फिर प्राप्त करने के लिये बाहर निकलेगा, परमेश्वर अपनी सारी महिमा को लिए हुए प्रकट होगा।

रामसरियर कहता है—"यह संसार पुण्य और पाप की लड़ाई के साथ आरंभ हुआ था, और इसकी समाप्ति भी उसी प्रकार होगी। प्रकृति के विनाश के अनंतर पाप फिर रह नहीं सकता, इसका अभाव हो जाना आवश्यक है।"—तमम्।

मैं इस विश्वास का समाधान करने के लिये कोई बहाना नहीं बनाता; परंतु एक उत्तर पूछता हूँ।

अपने एशिया के पर्यटनों से लौटने पर, अर्थात् ज़र्दुश्त के ब्राह्मणों द्वारा शासित देश की यात्रा से वापस आने पर, सेंट जॉन (योहन्ना) ने अपनी इंजील लिखी थी। क्या यह स्पष्ट नहीं कि वह वहीं यह भविष्य-कथन, जो प्रेरितों को अज्ञात था, जो ईसा पर लागू नहीं, जो उसे हिंदू-अवतार की तरह जगत् की समाप्ति पर घोड़े के वेश में राक्षस-राजा के साथ युद्ध करने के लिये वापस लाता है।

योहन्ना की इंजील, जैसा कि आसानी से देखा जा सकता है,

अपनी अलंकारात्मक शैली से, पशुओं और तत्वों का उल्लेख करने से और सबसे बढ़कर अपनी अस्पष्टता से सर्वथा पूर्व के स्वभावानुरूप अस्पष्ट भाव में है।

यह दूसरा अखंडनीय शब्दचौर्य है। सबका बताना तो संभव नहीं।

# आठवाँ अध्याय

## ईसा शैतान के प्रलोभन में

बाइबिल कहती है कि "उस समय शैतान के प्रलोभन में फँसाने के लिये ईसा को प्रेतात्मा मरुस्थलों में ले गया, और चालीस दिन तथा चालीस रात तक उपवास करने के अनंतर उसे भूख लगी।

"और प्रलोभक ने उसके पास आकर कहा—

"यदि तू ईश्वर का पुत्र है, तो आज्ञा दे कि ये पत्थर रोटियाँ बन जायँ। ईसा ने उत्तर दिया—

"यह लिखा है, मनुष्य केवल रोटी पर ही नहीं, परंतु ईश्वर के मुख से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द से जिएगा।

"तब शैतान उसे पवित्र नगर में ले आया, और मंदिर की चोटी पर चढ़ाकर कहने लगा—'यदि तू परमेश्वर का पुत्र है, तो अपने को नीचे गिरा दे; क्योंकि यह लिखा है कि उसने तुझे अपने देव-दूतों के सिपुर्द कर रक्खा है, और वे तुझे अपनी भुजाओं पर उठा लेंगे, ताकि तेरा पैर किसी पत्थर से न टकराय।'

"ईसा ने उत्तर दिया—

"यह भी लिखा है कि तू अपने प्रभु परमेश्वर को न बहका। शैतान फिर उसे एक बहुत ही ऊँचे पर्वत पर ले गया, और संसार के सारे राज्य दिखलाकर कहने लगा—

"यदि तुम नीचे गिरकर मेरी पूजा करोगे, तो मैं तुम्हें ये सब चीजें दे दूँगा।

"परंतु ईसा ने कहा—

"हे शैतान, इन बातों को छोड़; क्योंकि यह लिखा है

कि तू अपने प्रभु परमेश्वर की पूजा और केवल उसी की सेवा कर।

"तब शैतान उसे छोड़कर चला गया, और तत्काल ही देवदूत आए, और उसकी सेवा करने लगे।"

ईसा के प्रलोभन का उल्लेख करने की इच्छा से मैंने बाइबिल का यह स्पष्ट वाक्य, संक्षेप द्वारा ख़राब हो जाने के डर से, ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया है।

हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों में मुझे इस घटना की अनुकृति नहीं मिली; परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वहाँ यह मिल ही नहीं सकती। आप यह भली भाँति समझ सकते हैं कि उन सारे विषयों की ठीक तौर पर खोज करने के लिये, जिनका इस पुस्तक में वर्णन है, एक मनुष्य की शक्तियाँ अपर्याप्त हैं। और, अधिक महत्त्वपूर्ण अध्ययन के अनंतर मैं निश्चय ही उन अनेक बातों को पुनः उपस्थित करूँगा, जो अभी तक अस्पष्ट अथवा अपूर्ण रूप से प्रकाशित हैं।

इस वाक्य को बाइबिल-लेखकों की विशेष संपत्ति मानकर भी यह हमें उनको वंचना के सुव्यक्त कार्य में ऐसी सुगमता से पकड़ लेने का अवसर देता है कि फिर वे भाग नहीं सकते।

आप इस शैतान को क्या समझते हैं, जो परमेश्वर को बहकाने में लगा हुआ है?

क्या स्वयं परमेश्वर ही अपने को शैतान के हाथों में सिपुर्द कर देता है?

जब ऐसी विकट असंगतियाँ—बुद्धि और परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता के गंभीर परिहास—जनता की श्रद्धालुता के लिये ऐसे साहसपूर्वक उपस्थित किए जाते हैं, तब धर्मोन्माद आत्मा को और विवेक की अतीव साधारण शिक्षा को अपकर्ष के किस गहरे गर्त में न गिरा देगा!

मरुस्थली से मंदिर की चोटी पर, और उस मंदिर से एक पर्वत

पर ले जाए जाने तक ही संतुष्ट न रहकर परमेश्वर, अर्थात् विश्वपति, सारे जगत् का स्रष्टा और परमाधीश शैतान के साथ मिथ्याभियोग और शैतान उसके साथ विनोद करता है !

इन पत्थरों को रोटी बन जाने की आज्ञा देकर खा लो ।

यदि तुम परमेश्वर हो, तो इस मंदिर से नीचे कूद पड़ो ।

मेरी पूजा करो, और मैं तुम्हें सारे भूमंडल का राज्य दूँगा ।

और कैसी विचित्र बात है कि आत्मिक परमेश्वर इन बातों का गंभीरतापूर्वक उत्तर देता है ।

यदि ये सब चेष्टाएँ केवल विचक्षण नहीं, तो आप ऐसी पाखंडताओं की किस नाम से निंदा करेंगे ?

उन मूढ़ विश्वासों के भक्त निस्संदेह तर्क और विचार-स्वातंत्र्य के पक्षपातियों पर सेक्रिस्टों ( Sacrists ) और जेज़ूइटों (Jesuits) के पवित्र कार्य का कीचड़ फेंकें; ईश्वर की उज्ज्वल मूर्ति को उन सब दोषों से, जो मरते हुए भूत के पंथवालों ने गढ़े थे, मुक्त करने की हमारी इच्छा के कारण हमें अनात्मवादी और नास्तिक कहकर निंदा करने का साहस करने के लिये उन्हें धृष्टता और ईर्ष्या का प्रयोजन है ।

क्या सिसरो की व्यंग्योक्ति यहाँ लागू नहीं ? क्या यह हो सकता है कि मार्क या योहन, लूक या मत्ती एक दूसरे को देखकर हँसते न होंगे ?

बहुत पुराने समय में, यदि इन लोगों ने भारत के केवल मूढ़ विश्वासों को ही ग्रहण किया होता, यदि उन्होंने कृष्ण के उस श्रेष्ठ आचरण के दर्शन न किए होते, जिसने पहले समयों को प्रकाशित किया था, तो वे भी वस्ता ( Vesta ), ओसिरिस ( Osiris ) और आईसिस के पुरोहितों के साथ तिरस्कार और विस्मृति के सिपुर्द हो गए होते ।

यह वह आचरण है, जिसने उनको बचाया, जिसने पहले समयों में उनको सफलता प्रदान की, यहाँ तक कि वह दिन आ गया, जब कि उनकी भली प्रकार से सुरक्षित शक्ति ने उन्हें जनता और राजों के नाम आज्ञाएँ निकालने और अपनी प्रभुता की शैली को पुनः प्रतिष्ठित करने में समर्थ बना दिया।

---

# नवाँ अध्याय

ब्राह्मणों की संस्थाओं के नमूने पर प्रेरितों द्वारा संप्रदाय की रचना—ईसाइयों का परमेश्वर—बपतिस्मा—दृढ़ीकरण—पापप्रकाशन—दीक्षा अथवा संस्कार—मुंडन—उपनयन इत्यादि-इत्यादि

हम कह चुके हैं कि ईसा और उसके प्रेरितों ने मिसर तथा पूर्व में अध्ययन किया था, और उन्होंने भारत के धर्म-ग्रंथों के फल से ही क्रांति की थी। इस प्रतिज्ञा की पुष्टि में जो प्रमाण दिए जा चुके हैं, उनमें नवीन तथा अधिक अखंडनीय प्रमाणों की वृद्धि की जाती है।

हम उन सारे चमत्कारों और उन सारे मूढ़ विश्वासों की भौतिक असाध्यता अभी दिखला चुके हैं, जिनके साथ बाइबिल के लेखों ने ईसाई सुधारकों के जीवन को परिवेष्टित कर रक्खा है; क्योंकि हमें यह पता लग गया है कि वे उन्हीं घटनाओं और कार्यों का एक दूसरा संस्करण-मात्र हैं, जिनको प्राचीन भारत कृष्ण के पहले ही ठहरा चुका है। हम अभी थोड़े-से शब्दों में यह दिखलानेवाले हैं कि ईसाई धर्म, उधार लेने की उसी पद्धति को जारी रखते हुए, पुरातन पौराणिक ब्राह्मण-धर्म का केवल एक दूसरा संस्करण है। मूसा, भविष्यद्वक्तागण, सारांश, इबरानी धर्म को ईश्वर की त्रिमूर्ति, पिता, पुत्र और पवित्रात्मा के अर्थों में, जैसी कि वह ईसाई कल्पना में मिलती है, मालूम न थी।

प्रेरितों ने ऐकत्व में यह त्रिमूर्ति का सिद्धांत कहाँ से लिया? ईसा कहीं भी इसे गंभीर सिद्धांत के रूप में प्रकट नहीं करता, वह अपने उत्तराधिकारियों की अपेक्षा परमात्मा के सरल एकत्व का बहुत अधिक पक्षपाती जान पड़ता है।

यह अनुमान न्यायसंगत है कि प्रेरितों ने यह सिद्धांत, दूसरी अनेक याचित चीज़ों के साथ, पूर्व की धर्म-विद्या से ग्रहण किया था।

ब्रह्मा पिता परमेश्वर है; विष्णु कृष्ण में पुत्र का अवतार है; शिव वह आत्मा है, जो सर्व शक्तिमत्ता की अभिव्यक्ति का अधिष्ठाता अर्थात् चेष्टा करनेवाला प्राण है।

यहाँ हिंदू-विश्वास कैथोलिक मत में लाकर प्रविष्ट किया गया है। नक़ल साफ़ दिखाई दे रही है; क्योंकि यह मानना उपयुक्त होगा कि ईश्वरत्व के तीन व्यक्तियों के इस सिद्धांत को प्रेरितों ने गढ़ा, जब कि हिंदू-धर्म, जो न केवल भारत में, प्रत्युत सारे एशिया में फैला हुआ था, इन्हीं विचारों को सहस्रों वर्ष पूर्व प्रकट कर चुका था।

बहुत देर से हम यह भूल गए हैं कि ईसाई मत का जन्म पूर्व में हुआ था, और पश्चिमी जातियों को अपना अनुयायी बनाने के पूर्व वहीं इसका विकास हुआ, और उसके उद्भवों का पता लगाने के लिये हमें वहीं वापस जाना चाहिए।

हिंदुओं के पौराणिक धर्म पर लिखे गए अध्यायों का उल्लेख ही इस बात को दिखलाने के लिये पर्याप्त होगा कि उस धर्म के यज्ञों और महायज्ञों को इस नवीन धर्म ने प्रायः अक्षरशः ग्रहण किया था।

क्या ईसाइयों का बपतिसमा हिंदू-अभिषेक से कोई अलग चीज़ है? इसके मूल को दिखलाना कितना सुगम है।

कृष्ण के पक्षपातियों की गंगा एक पवित्र नदी है, जिसका जल मूल-पाप को धो डालता है। बपतिसमा देनेवाला योहन तथा उसके अनुयायी भी जोर्डन-नदी को पवित्र समझते हैं। इसका जल भी इसी प्रयोजन के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

यह रीति, जो धार्मिक अभिषेकों के देश अंतिम पूर्व में स्वदेश-जात थी, निस्संदेह सारे संसार को ऐसी अच्छी तरह से ज्ञात थी कि प्रेरितों ने अपने पहले महायज्ञों के उपक्रम का पुण्य ईसा को

देने का साहस न करके उसे भी इसी रीति के अधीन कर दिया।

इस कठिनता से निकलने का केवल एक ही साधन था, और वह यह कि ईश्वर की आज्ञा से, यहोवह को ईसा का अग्रगामी ठहराया जाता ; सो उन्होंने ऐसा ही किया।

परंतु यह अग्रगामी किसलिये ? छिः ! मिथ्या विवाद पर्याप्त हो चुका; क्षुद्र प्रश्नों पर विचार करने से क्या लाभ !

सोलह वर्ष की आयु में पवित्र तेल के प्रयोग से अपनी शुद्धि को दृढ़ कराने के लिये हिंदू को मंदिर में जाना पड़ता है।

और, इस प्रक्रिया को नए धर्म कैथोलिक-संप्रदाय ने समान रूप से अपना लिया है।

क्योंकि सब बच्चों को गंगा पर ले जाना मुश्किल है, इसलिये ब्राह्मण गंगाजल के स्थान में शुद्धि का जल काम में लाते हैं। इसको ख़राब होने से बचाने के लिये वे इसमें नमक और सुगंधियाँ घोल रखते हैं।

क्योंकि, ईसाई-समाज की वृद्धि के कारण प्रत्येक नवजात को जार्डन नदी के तीर पर ले जाना वैसा ही असंभव है, इसलिये प्रेरितों ने, हिंदू-रीति का अनुकरण करते हुए, पवित्र जल का व्यवहार ग्रहण किया है।

प्राचीन ब्राह्मण धार्मिक जज ( विचारपति ) होते थे। लोग उनके पास अपने पापों का प्रकाश करते थे, और वे उनके लिये दंड का निर्णय करते थे।

प्रेरित इन्हीं व्यापारों को सगर्व ग्रहण करते हैं, और जैसा कि हमें ज्ञात है, संप्रदाय के आदि काल में केवल प्रकट पाप-प्रकाशन की रीति ही जारी करते हैं।

ईसा के दो शताब्दियों से भी अधिक समय के पश्चात् पादरियों ( बिशपों ) ने इस प्रकट पाप-प्रकाशन को हटाकर एकांत में पापों को

सुनने की रीति ग्रहण की। यह प्रकट पाप-प्रकाशन एक ऐसा गुह्य यंत्र था, जिसकी दुर्वृत्तकारिणी प्रवृत्ति बहुत सुगमता से देख पड़ती है।

ब्राह्मण पुरोहित संस्कृत तैल से अभिषिक्त किया जाता है, उसका सिर मूड़ा जाता है, और उसे पवित्र यज्ञोपवीत दिया जाता है।

प्रेरित भी सामान्य विश्वासियों से अपना भेद करने के लिये यही काम करते हैं।

सामाजिक उपासना हिंदू-धर्म में अभिषेक-संस्कार के रूप में विद्यमान न थी। हिंदू-धर्म-संबंधी अध्ययन में हम देख चुके हैं कि आस्तिकों के लिये यह नियम है कि वे ईश्वर को यज्ञ में चढ़ाए हुए आटे, चावल और फलों को, मंदिर में पुरोहित के साथ मिलकर खाते हैं, और यह पवित्र भोजन सब पापों को दूर कर देता है। परंतु यह नहीं कहा गया कि परमेश्वर उपस्थित है।

इस प्रक्रिया को ग्रहण करते हुए प्रेरितों ने यह अंतिम उपवाक्य जोड़ दिया है, और इसका नाम महायज्ञ (Eucharist—परमेश्वर का रात्रिभोजन) है। फिर भी यह सत्य है कि यह ईसाई रीति हिंदू रीति की नक़ल थी और है। पहले ईसाई आस्तिक इकट्ठे रोटी खाते और मदिरापान करते थे। यह कर्म किसी भी बात में यथार्थ लाक्षणिक 'भोजनदाता' से नहीं मिलता था।

प्रोटेस्टेंट लोग वास्तविक उपस्थित को नहीं मानते, और दो प्रकार से अपना महायज्ञ करते हैं। इस प्रकार वे पहले समयों के सरल व्यवहार की ओर लौटने का अच्छे कारणों के साथ बहाना करते हैं।

अंततः, इन सब याचित बातों को, जो निस्संदेह बहुसंख्यक हैं, परंतु जिनमें से हमने केवल उन्हीं को लिया है, जो अतीव महत्त्वपूर्ण हैं, समाप्त किया जाता है।

लोक-समूह का यज्ञ ( Sacrifice of the Mass ) हिंदुओं के सर्वमेध यज्ञ के सिवा और कुछ नहीं।

और आधुनिक जातियों के पथ-प्रदर्शन के लिये भविष्य की ड्योढ़ी पर यह आदर्श-वाक्य लिख दूँ—

परमेश्वर और विवेक !

---

# दसवाँ अध्याय

पुरातन ईसाई-धर्म के तपस्वी और यती कहाँ से हुए ?

मूर्त्ति-पूजकों और यहूदी-धर्म में साधुओं के मठ बनाकर रहने की रीति बिलकुल न थी।

तब ईसाई-धर्म के प्रारंभिक काल में यतियों और उदासीनों की विपुलता कहाँ से हुई ?

ईसा ने एकांत और समाधि के उस सिद्धांत का उपदेश नहीं दिया, जिसने आरंभिक काल के ईसाइयों को वन में जाकर सब प्रकार के क्लेशों और अनुताप-सूचक दंडों में जीवन व्यतीत करने के लिये फुसलाया था।

बालों का कपड़ा, टाट और शारीरिक दुःख उसके श्रेष्ठ आचरण का कोई भी भाग नहीं।

जिसने परिश्रम को पवित्र बताया है, हम निष्फल तंद्रा को उसके आश्रय में नहीं रख सकते।

जैसा कि हम दिखा चुके हैं, संग्राम-शील जीवन के उपरांत ब्राह्मणों का वह तापस जीवन आता था, जो उनके पद्दाधिकार के प्रयोग के दिनों में लगे हुए सभी धब्बों को धो डालता था।

इसी प्रकार सभी द्विजों को सांसारिक विलासिता, आनंद और ममता का परित्याग कर देने के लिये धर्म विवश करता था।

हिंदू-विचारों के पुनरुत्थान ने ही ईसाई साधुओं के मठों की रीति प्रचलित की।

हमने ऊपर उन सच्चे हिंदुओं के लिये नियत किए हुए नियम दिए हैं, जिनकी इच्छा अपने जीवन को एक-मात्र ब्रह्म के चिंतन में

ही व्यतीत कर देने की होती थी। मनु के निम्न-लिखित वचन ईसाई यतियों पर आश्चर्यजनक रूप से लागू हैं—

"संन्यासी को चाहिए कि नगरों के साधारण भोजन, पुत्र, कलत्र, और अपनी सारी संपत्ति का परित्याग कर दे।

"वह अग्निहोत्र और उसके लिये आवश्यक पात्रों को लेकर वन में चला जाय और इंद्रियों को वश में करे।

"वह मृगों के चर्म अथवा वृक्षों के बल्कल पहने, और प्रातः तथा सायं अपने को शुद्ध करे। जटा, दाढ़ी, शरीर के रोम और नखों को सदा धारण करे।

"अपने अपर्याप्त अन्न में से भी भिक्षा देने का उपाय करे।

"सदा वेदाध्ययन करे, गरमी-सरदी सब धैर्यपूर्वक सहन करे, मन को सदा वश में रक्खे, सब भूतों पर दया दिखावे, सदा देता रहे, ले कभी भी नहीं *।

"केवल फल, मूल और शाक ही खाय।

"नंगी भूमि, काँटों, और पत्थरों पर सोवे।

"सदा, यहाँ तक कि अपने अनित्य शरीर के लिये ग्रामों में भिक्षा माँगते समय भी, संपूर्ण मौन साधे रहे।

"दैवज्ञ बनकर अर्थात् फलित ज्योतिष से अपना पेट न पाले। ( हम देखते हैं कि ये विद्याएँ अब जाती रही हैं, क्या अरब लोग इनको पूर्व से योरप में नहीं लाए थे ? )

"अपने अंगों को वश में रखने, सब प्रकार की ममता और घृणा का त्याग करने, पाप से भागने और पुण्य का आचरण करने से वह अपने को अमरत्व के लिये तैयार करता है।"

फिर मनुस्मृति और कहती है—

* ईसाई धर्म में लेता चाहे सदा रहे, परंतु दे कभी नहीं।

"न मृत्यु की कामना करे और न जीने की, और जिस प्रकार मज़दूर साँझ को अपने स्वामी के द्वार पर शांतिपूर्वक पुरस्कार की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह भी अपने समय की प्रतीक्षा करे।

"और जब उसकी मृत्यु की घंटी बजे, तो वह लोगों से उसी चटाई पर लिटाकर राख से ढक देने की प्रार्थना करे; उसका अंतिम शब्द मनुष्य-मात्र के लिये प्रार्थना हो, जो कि संसार में दुःख पाते रहेंगे, जब कि वह आप जगत्-पिता की गोद में चला जायगा।"

हिंदू और ईसाई * संन्यासियों का ऐसा ही नियम था। उसे उद्धृत करना मानो उसे प्रमाणित करना है। ये शेषोक्त केवल नक़ल करने-वाले ही थे।

इन ब्राह्मण-सिद्धांतों के अतिवाद ने ही वे संन्यासी और फ़क़ीर उत्पन्न किए हैं, जिनकी जीवन-वृत्ति और जिनकी यातनाओं और भया-नक अंगच्छेदन का वर्णन हम कर चुके हैं।

उन्हीं कारणों ने ईसाई-धर्म में भी वही परिणाम उत्पन्न किए, और हम सिमन-स्टाईलाइटस ( Simon-Stylites ), आरीगन ( Origen ) और दूसरे फ़क़ीरों को हिंदू-फ़क़ीरों की स्पर्द्धा करते पाते हैं।

---

* नहीं, डर से दबके हुए ईसाई की अंतिम प्रार्थना अवश्य उसके अपने ही लिये होती है।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## अंतिम प्रमाण

प्रेरितों के समय में भी ऐसे मनुष्य विद्यमान थे जो ईसाई-धर्म को पूर्व की उपज मानते थे, और जिन्होंने हिंदू-धर्म को पूर्ण रूप से वापस लाने के लिये भरसक यत्न किया था।

वे हिंदुओं के अव्यक्त और निश्चल ज़िउस (Zeus) को स्वीकार करते थे जिसके पेट में कि प्रकृति और जीवन के सारे मूल-तत्त्वों का बीज निवास करता था।

तब परमेश्वर स्रष्टा, अर्थात् वर्तमान जगत् का कर्ता बन गया, और उसने अपने आपको सृष्टि में व्यक्त किया।

इस पद्धति के पक्षपाती ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) को नहीं मानते थे; वे मनुष्य-जाति की उत्पत्ति तक पहुँचनेवाले, और अंतिम पूर्व से, जो उनके विश्वासानुसार हमारी जाति का जन्म-स्थान है, सब लोगों को मिले हुए एक निरंतर ऐतिह्य को ही स्वीकार करते थे। इसलिये ईसा मसीह, जिसको वे परमेश्वर का भेजा हुआ मानते थे, पृथ्वी पर सुधार के लिये नहीं, प्रत्युत इस ऐतिह्य के कार्य को पूर्ण करने, और मनुष्य-समाज को पहले युगों के सरल और पवित्र धर्म की ओर वापस लाने के लिये, आया था।

प्रेरितों के समय में फिलो यहूदी (Philo the Jew), डोसिथिउस (Dositheus), केरिनथस (Cerinthus), सिमन जादूगर (Simon the Magician), और मीनेनडर समेरिटन (Menander the Samaritan) इन सिद्धांतों को मानते थे; और पीछे से दूसरी और तीसरी शताब्दियों में कार्पोक्रेटियस

(Carpocratius), बेसीलिडस ( Basilides ), सिकंदरिया के वेलंटीनस ( Valentinus ) और टेशियन (Tatian ) एंटियोक के सटर्निनस ( Saturninus of Antioch ), एडेसा के बार्डेसेनस (Bardesanes of Edessa) ने, और मार्किओन (Marcion ) तथा कर्डन ( Cerdon ) ने, जिन्होंने धर्म-बुद्धि के सच्चे उद्भवों को एशिया में पाने की प्रतिज्ञा की थी, इनका विकास किया।

प्रेरितों ने जब अपना परदा खुलते और अपने काम को आघात पहुँचते देखा, तब उन्होंने सिमन, डोसिथिउस और दूसरों को पाखंड, ईश्वर-निंदक, और शैतान के वशीभूत कहना आरंभ कर दिया, और अपने शिशु-धर्म की सारी धमकियों से उन्हें डराने लगे।

पीछे से जब इन्हीं विचारों ने नवीन युक्तियों के साथ प्रतिष्ठित होने की चेष्टा की तब ईसाई-धर्म राजासन पर बैठने के लिये अपने आत्म-त्याग और दरिद्रता को भूल चुका था, और जो लोग इसकी उत्पत्ति के विषय में प्रश्न करने का यत्न करते थे उन सबको पीड़ित और बहिष्कृत करने के लिये सम्राटों के द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करता था; इस प्रकार उसने उन सारी हत्याओं, सारे निर्वासनों, और सारे विश्वसनों का उपक्रम किया, जिन्होंने मध्य कालों और अधिक आधुनिक समयों को रक्ताक्त किया था।

इस संप्रदाय का सबसे प्रसिद्ध पंडित ओरीगन ( Origen ) यह मानता था कि ऊपर लोकों में आत्माएँ पहले से ही विद्यमान हैं, और वहाँ से वे शरीरों को सजीव करने के लिये नीचे आती हैं, और पृथ्वी पर आकर वे, फिर ईश्वर के साथ जा मिलने के उद्देश्य से अपने पूर्व दोषों को धोती हैं।

उसका यह भी मत था कि नरक का दुःख भी सदा के लिये नहीं। यह सब शुद्ध हिंदू सिद्धांत के सिवा और कुछ नहीं।

हम देखते हैं कि इस पुस्तक की प्रधान कल्पना कल की उत्पन्न हुई नहीं। प्रेरितों के सहयोगी और पहले ईसाई, हमसे अठारह शताब्दियाँ पहले, पूर्व को सभी धार्मिक कल्पनाओं का जन्म-स्थान समझते थे।

इसलिये हम केवल विचार के लिये सारे ऐतिह्यों के प्राचीन ख़ज़ाने को खोदकर निकाली हुई नवीन युक्तियाँ लाए हैं।

---

# बारहवां अध्याय

## भारत में जेज़ुइट संप्रदाय का काम

रेवरेंड फ़ादर्स, जेज़ूइट, फ़्रांसिसकंस ( Franciscans ), विदेशी-मिशन और अन्य समाज भारत में विनाश का कार्य करने के लिये हृदयंगम एकतानता के साथ मिल गए हैं, जिसके लिये प्राग्देशीय-भाषा-पंडितों और सारे शिक्षित संसार को उनकी निंदा करनी उचित है।

जो भी हस्त-लेख, जो भी संस्कृत ग्रंथ उनके हाथ आता है, वे झट उसको निंदित ठहराकर अग्नि के सिपुर्द कर देते हैं। यह कहने का प्रयोजन नहीं कि ये महाशय इस काम के लिये सबसे पहले उसी ग्रंथ को चुनते हैं, जो सबसे पुराना हो और जिसकी प्रामाणिकता निर्विवाद प्रतीत होती हो।

इस असहिष्णुता और मूर्खता के कार्य का क्या उद्देश्य है? क्या यह भारत के थोड़े-से ईसाइयों को इन ग्रंथों के पढ़ने से बचाने के लिये है?

नहीं! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि उनके अनुयायियों में से, जो सदा बहुत ही नीचतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं, एक भी ऐसा नहीं, जो भारत की प्राचीन पवित्र भाषा को, जिसका आजकल केवल विद्वान् ब्राह्मण ही अध्ययन करते हैं, समझने में समर्थ हो।

फिर इसका उत्तर, जो दिया नहीं जायगा, बड़ा ही सरल है। अर्थात्, वे पुस्तक को इसलिये नष्ट करते हैं कि वे इससे डरते हैं, और समझते हैं कि पीछे से हमें कहीं इसका सामना न करना पड़े।

ओह! वे लोग, विशेषतः जेज़ूइट, उन पुस्तकों के मूल्य को, जिनको वे नष्ट करते हैं, ख़ूब जानते हैं। प्रत्येक नवागत को

विधिपूर्वक आज्ञा होती है कि जो कुछ भी तुम्हारे हाथ लगे, उसे नष्ट कर डालो। सौभाग्य से ब्राह्मण इनको अपनी अमित साहित्य-संपत्ति, दार्शनिक और धार्मिक ग्रंथों के गुप्त संग्रह नहीं दिखाते।

इस विनाशक उन्माद का अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि जब तक असाधारण घनिष्ठता न हो, किसी ब्राह्मण को अपने मंदिर की धर्म-पुस्तकें दिखाने के लिये तैयार करना बड़ा ही कठिन हो गया है।

हिंदू-पुरोहित, जो जनता पर अपने प्रभाव को जानता है, जिसका संकेत पाते ही छोटे और बड़े उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, यह समझने से बाज़ रह नहीं सकता कि कैथोलिक पुरोहित का भी अपने देश-बंधुओं पर वैसा ही अधिकार है।

उनका साधारण उत्तर यह होता है—"तुम्हारा इस पुस्तक से क्या काम है? यह तुम्हारी जाति के लिये नहीं लिखी गई, और तुम संभवतः ईसाई पादरियों को देने के लिये ही इसे माँग रहे हो।"

यही कारण है, जो कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी अभी तक संपूर्ण वेदों का संग्रह नहीं कर सकी, और जो प्रतियाँ उसे मिली भी हैं, उनके विषय में भी उसे पूरा विश्वास नहीं; क्योंकि उनमें अनेक परिकल्पित प्रक्षेप पाए गए हैं।

इसमें आश्चर्य ही क्या है! दो शताब्दियों तक यह मूढ़ और निर्दय विनाश-कार्य जारी रहा, और हिंदुओं को शंकाशील होने की चेतावनी मिल चुकी है।

भले पादरियो ( फ़ादर्स ), अब, जब कि तुम हमारे शरीरों को नहीं जला सकते, विचार को जलाने से क्या आशा करते हो?—क्या ज्योति को बुझाना चाहते हो?

भली भाँति निश्चय रक्खो कि तुम्हारे गुप्त और तमोमय कार्यों के होते भी यह ज्योति चमकेगी।

---

## तेरहवाँ अध्याय

मनु का एक वाक्य

"जिस प्रकार सेना का एक अति क्षुद्र सिपाही भी कभी-कभी एक अग्निमय बाण से शत्रु के दृढ़तम दुर्ग को जला देता है, उसी प्रकार एक अति दुर्बल मनुष्य भी, जब वह अपने को सत्य का निर्भय योद्धा बना लेता है, तब मूढ़ विश्वास और प्रमाद की अतीव कठिन प्राचीर को भी गिरा देता है।"

❀ समाप्त ❀

---

# परिशिष्ट

## टिप्पणियाँ

बाइबिल—ईसाइयों का धर्म-ग्रंथ । इसे इंजील भी कहते हैं । इसके दो भाग हैं—पुराना धर्म-नियम और नया धर्म-नियम । नए धर्म-नियम में मत्ती, लूका, मार्क, और योहन-नामक चार मनुष्यों के रचे सुसमाचार हैं

"भारत में बाइबिल" के लेखक ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि ईसाइयों की बाइबिल में जो बातें लिखी हैं, सब भारत की उपज हैं, और यहीं से रूपांतरित होकर ईसा मसीह तक पहुँची थीं।

पृष्ठ ( १३ ) स्पेन अभी मोमबत्तियों—रोमन कैथोलिक संप्रदाय के ईसाइयों में मरियम आदि की मूर्तियों के सामने मोमबत्तियाँ जलाने और उन पर पवित्र जल चढ़ाने की रीति थी, और अब भी है । सन् १८६८ के लगभग, जब यह पुस्तक लिखी गई थी, तब स्पेन में इस प्रथा के विरुद्ध आंदोलन उठ रहा था; परंतु अभी कोई परिणाम नहीं निकला था ।

पृष्ठ ( १३ ) इटली ने अभी—इटली पहले अनेक छोटे-छोटे रजवाड़ों में विभक्त था । ये रजवाड़े सब स्वतंत्र थे । फिर वहाँ इन सब रजवाड़ों को मिलाकर एक राष्ट्र बना देने का आंदोलन चला । सबसे पहले पॅडमोंट-नामक रजवाड़े ने इस एकता के संगठन में अपने अस्तित्व की आहुति दी । फिर धीरे-धीरे सभी रजवाड़े उस महाराष्ट्र में लीन हो गए । परंतु जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी, उस समय अभी कुछ स्वतंत्र रजवाड़े शेष थे । रोम सन् १८७० में इस संगठन में मिला था । इसके मिलने से ही यह एकता पूर्ण हो गई । यह पुस्तक

चूँकि सन् १८६८ में लिखी गई थी, इसलिये ग्रंथकार लिखता है कि इटली की एकता का संगठन अभी पूर्ण नहीं हुआ।

पृष्ठ ( १३ ) रोम एक बड़ी सभा में —जैसा कि ऊपर कहा गया है, रोम अभी संगठन में सम्मिलित नहीं हुआ था। वहाँ रोमन कैथोलिक संप्रदाय के धर्माचार्य पोप का अखंड राज्य था। पोप बुद्धि, विज्ञान और स्वतंत्रता की सभी बातों का विरोध और उन्हें दबाने का प्रयत्न करता था।

पृष्ठ ( १३ ) समाज-बहिष्कार अपनी निःसत्व गर्जनाओं को— यद्यपि महात्मा लूथर के प्रचार से पोप की प्रतिपत्ति बहुत कुछ घट चुकी थी, परंतु फिर भी अभी वह प्रजाओं, राजों और सम्राटों आदि को समाज से बहिष्कृत कर देने की धमकी देकर उनको अपने अधीन करने का निष्फल यत्न करता था। स्मरण रहे, इटली के पोप की एक समय इतनी शक्ति थी कि उससे बड़े-बड़े सम्राट् काँपा करते थे। वह जिसको चाहता, गद्दी पर बैठा सकता और जिसे चाहता, उतार सकता था। उसका वचन ही राज नियम था।

पृष्ठ ( १३ ) अँगरेज़ लाट पादरी—इँगलैंड प्रोटेस्टंट संप्रदाय का अनुयायी है, जिसके प्रवर्तक लूथर ने लोगों को पोप की दासता से छुटकारा दिलाया था। परंतु लाट पादरी लोग लूथर के नाम की आड़ में अपना जाल बिछा रहे हैं। वे सबको एंगलिकन चर्च की शृंखला में जकड़कर अपना दास बनाना चाहते हैं। जिस विचार-स्वातंत्र्य के लिये लूथर ने संग्राम किया था, उसी को वे लोगों से छीनने का यत्न कर रहे हैं। कोलंज़ो के बहिष्कार की घोषणा करना उनके इस भाव का प्रमाण है।

विलियम जान कोलंज़ो एक बिशप और बाइबिल का समालोचक था। इसने सेंट जॉन कॉलेज, कॉम्ब्रिज में शिक्षा पाई थी। इसने गणित-शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखीं। ये पुस्तकें प्रामाणिक समझी जाती हैं। इसने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखीं।

यह सन् १८५३ में नेटाल का बिशप नियुक्त हुआ। वहाँ जाकर इसने ईसाई-धर्म के प्रचार में बहुत परिश्रम किया। जुलू लोगों की भाषा सीखी। सन् १८६२ में इसने "The Pentateuch and the Book of Joshua critically examined"-नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें इसकी निर्भीक आलोचना से कट्टर ईसाइयों में इसके विरुद्ध बड़ी चर्चा होने लगी। इसके बाद कोलंज़ो के विचारों का प्रचार करनेवाले और भी ग्रंथ निकले। सन् १८६३ में बिशप ग्रे ने केपटाउन में कोलंज़ो पर नास्तिकता का अभियोग चला दिया, और उसे पदच्युत कर देने की आज्ञा प्राप्त कर ली। परंतु प्रिवीकौंसिल में अपील करने पर यह आज्ञा रद् कर दी गई। इसका जन्म सन १८१४ में हुआ था

पृष्ठ (१३) आयर्लंड के आर्तनाद को दबा रहा है—आयर्लैंड बहुत देर से स्वतंत्रता के लिये रो रहा है, परंतु इँगलैंड उसकी कुछ परवा नहीं करता। दूसरे आयर्लंड रोमन कैथोलिक है, और इँगलंड प्रोटेस्टेंट।

पृष्ठ (१३) उमर के अनुयायी—टर्की (रूम) अपना सुधार करना चाहता है, ताकि संसार की स्वतंत्र जातियों में उसका अस्तित्व बना रहे, परंतु क़ुरानी रीति-रवाजों के ठेकेदार ख़लीफ़ा और मुल्ला लोग उसे ऐसा नहीं करने देते। जैसे इस समय तुर्कों ने खिलाफ़त और स्त्रियों का परदा उड़ा दिया है, और वे और भी कई प्रकार के सुधार कर रहे हैं, वैसे ही वे सन् १८६८ ई० के लगभग भी करना चाहते होंगे ; परंतु मुल्लाओं के विरोध ने उन्हें कुछ न करने दिया होगा। ग्रंथकार का संकेत उसी ओर है।

पृष्ठ (१३) पोलैंड का अस्तित्व मिट चुका है—पोलैंड को रूस ने हड़प कर लिया है। कोसियस्को पोलैंड का एक देश-भक्त था।

उसने पहले वार्सा में और फिर पेरिस में युद्ध-विद्या सीखी थी। वह लेफेटी के साथ अमेरिका गया, और वहाँ औपनिवेशिकों के साथ मिलकर इँगलैंड के विरुद्ध लड़ा था। युद्ध की समाप्ति पर वह पोलैंड लौट आया, और मेजर जनरल बना दिया गया। सन् १७६४ में वह पोलिश सेना का सेनापति बनाया गया। इसी वर्ष उसने रूसियों को टकलावी पर हार दी, परंतु इसके थोड़े ही दिन बाद वार्सा के निकट उसे रूसियों और प्रशियावालों ने मिलकर हरा दिया। रूसी सेना ६०,००० थी। उसने २१,००० सेना से उनका सामना किया। पोल जान तोड़कर लड़े, परंतु जीत न सके। कोसियस्को घायल होकर ( Finis Poloniae—बस अब पोलैंड का अंत हो गया; 'Freedom shrieked when kosciusko fell—Campbell') कहता हुआ पकड़ा गया। पोल लोग पूर्ण रूप से अधीन कर लिए गए। इस देश-भक्त को सेंटपीटर्सबर्ग में ले जाया गया; परंतु सम्राट् पाल ने उसे छोड़ दिया, और एक जागीर भी दी, जो बाद में इसने वापस कर दी। सन् १७६८ में वह फ्रांस गया। नेपोलियन ने इसे अपनी सेना में लेने के लिए बहुतेरा यत्न किया, परंतु इसने अपना एकांत छोड़ना स्वीकार न किया। सन् १८१५ ई० में पोलैंड का नवीन राज्य स्थापित हो जाने पर इसने सम्राट् अलेग्ज़ेंडर को उसकी वदान्यता के लिये धन्यवाद का पत्र लिखा। सन् १८१६ में यह स्विटज़रलैंड में जा बसा, और कृषि-कार्य में लग गया। एक चट्टान पर से घोड़े के गिर जाने से इसकी मृत्यु हो गई। इसका जन्म, लिथुआनिया में, १७५६ ई० में और मृत्यु स्विटज़रलैंड में १८१७ ई० में हुई।

पृष्ठ ( १४ ) रूस का ज़ार पोप है—रूस का ज़ार इटली के धर्माचार्य पोप के सदृश स्वेच्छाचारी राजा होता था। रूस में राज-सत्ता और धर्म-सत्ता, दोनों उसके हाथ में थीं। इसलिये उसे पोप कहा गया है।

पृष्ठ ( १८ ) सेवोनरोला ( Savonarola, Girolamo. ) यह इटली का एक मंक ( संन्यासी ) था । इसने फ़्लोरेंस नगर में सबके सामने पादरियों के पापाचार और रोमन संप्रदाय के शीलभ्रंश पर धुआँधार भाषण दिए। इस पर पोप ने इसको समाज-च्युत कर दिया, और इसे तथा इसके दो साथियों को प्राण-दंड दिया गया। इनके शव जलाए गए । इसका जन्म फ़रारा में, १४५२ में; और मृत्यु सन् १४९८ में हुई।

पृष्ठ ( १८ ) सर्वेटस ( Servetus Michael )—यह एक प्रसिद्ध धर्म-पंडित और वैद्य था । एरियन सिद्धांत ( Arian doctrine ) ग्रहण कर लेने से इसने केलविन ( Calvin ) को और उसने इसको कई चिट्ठियाँ लिखीं। इससे दोनों में मनोमालिन्य बढ़ गया। सर्वेटस ने अपने मत की पुष्टि में 'Christianismi Restitutio.'-नामक एक पुस्तक छपवाई। परंतु उस पर अपना नाम न दिया। किंतु केलविन को इसका पता लग गया । उसने वहाँ के शासक को इसकी सूचना दे दी। इस पर सर्वेटस को देश-निकाला दिया गया, और उसकी पुस्तक तथा उसकी प्रतियाँ जलाई गईं। इसके बाद उसने नेपल्स में जाकर चिकित्सा करने का विचार किया। वह भेस बदलकर जिनेवा-नगर में से जा रहा था कि केल-विन ने उसे पहचानकर पकड़वा दिया। इस पर क़ानून के ख़िलाफ़ उसे जीते-जी धीरे-धीरे जलाकर मार डालने का दंड दिया गया।

यह बहुत बड़ा विद्वान् था। इसने बतलीमूस ( Ptolemy ) के भूगोल का अनुवाद किया, और वैद्यक पर कई ग्रंथ लिखे। इसका जन्म विल्लेनूवा, अरेगन ( Villanueva, Aragon ) में, १५०९ ई० में और मृत्यु १५५३ में हुई।

पृष्ठ ( १६ ) डूबाइस ( Dubois Guillanme )—यह

कैंब्रेका आर्चबिश, कार्डिनल और फ्रांस का प्रधान मंत्री था। इसकी मृत्यु १७२३ में हुई।

पृष्ठ ( १७ ) कयिन (Cousin Victor)—यह मनोविज्ञान का एक बड़ा उद्भट फ्रांसीसी विद्वान् था। वह पेरिस के Forevlre des Leterst में दर्शन-शास्त्र का अध्यापक था। सन् १८१७ में इसने जर्मनी में जाकर काँट, फ़िशे ( Fichte ), शेलिंग (Schelling) और अन्य दार्शनिकों के ग्रंथों का अध्ययन किया। उसकी अपनी दर्शन-पद्धति की मूलाधार कल्पना यह है कि प्रत्येक पद्धति ठीक, परंतु अपने आप में अधूरी है। जब सब पद्धतियों को मिला दिया जाय, और यथायोग्य रीति से एक दूसरे के साथ जोड़ दिया जाय, तब एक पूर्ण तत्त्वज्ञान-पद्धति बन जाती है। कयिन ने दार्शनिक तथा शिक्षा-संबंधी विषयों पर बहुत कुछ लिखा, और तेरह भागों में अफ़लातूँ के ग्रंथों का अनुवाद किया।

इसका जन्म पेरिस में १७९२ ई० में, और मृत्यु केनस ( Cannes ) में, १८६७ में हुई।

पृष्ठ ( १८ ) स्पेन का दूसरा फ़िलिप—इसका जन्म १५२७ ई० में और मृत्यु १५९८ ई० में हुई। यह बड़ा अत्याचारी राजा था। इसने सन् १५५९ में नेदरलैंड्स से लौटकर एक सार्वजनिक वध किया, और पाखंड-शासन-सभा ( Inquisition ) के अनेक अभागे शिकारों को जीते-जी जला दिया। अपने राज्य से नास्तिकता का सर्वनाश करने का निश्चय करके इसने अपने इटालियन अधिकृत देशों में निर्दयता से आग और तलवार का उपयोग किया।

पृष्ठ १ जीउस, यहोवह, ब्रह्म—रोमन, इबरानी, और हिंदू लोगों के दिए हुए परमेश्वर के नाम।

पृष्ठ इलूसिस ( Eleusis )—प्राचीन काल में सलेमिस की खाड़ी के उत्तरी तट के समीप यूनान का एक नगर था। यहाँ एथंस-

निवासी हर पाँचवें वर्ष एक महोत्सव किया करते थे। यूनान के सारे धार्मिक संस्कारों में यह सबसे प्रसिद्ध था। इसलिये प्रख्याति की रीति से, यह प्राय: 'रहस्य' कहलाता है। यहाँ की प्रत्येक बात में रहस्य होता था।

पृष्ठ ५ बैतलहम—'ईश्वर का घर'। एक नगर का नाम। इस-राएल के समय में यह मूर्ति-पूजा का गढ़ था। इसके खँडहर अब Beitin (बीतिन) कहलाते हैं। यह यरूशलम से कोई दस मील की दूरी पर हैं।

वस्टा—रोमन देवमाला में अग्नि की देवी, राज्य की रक्षिका, और अपनी पुजारिन कुमारियों की प्रतिपालिका।

पृष्ठ ४ थेबस (Thebes)—इबरानी इसे नाएमव, और यूनानी तथा रोमन इसे महान् डिओसपोलिस कहते थे। यह पहले समयों में उत्तर मिस्र की राजधानी थी। इसके विशाल और विस्तृत खँडहर नील के पूर्वी किनारे पर लक्सर (Luxor) और कर्नक (Karnak) में और पश्चिमी तट पर गर्नो तथा मिद्वत-अबू में हैं।

पृष्ठ ४ बेबीलन—यह असिरियन राज्य की राजधानी थी, और बग़दाद से कोई ६० मील की दूरी पर जेहूँ-नदी के तट पर बसी हुई थी। इसके पीतल के १०० द्वार थे। इसकी दीवारें शिलाजीत से जोड़ी हुई थीं। उनकी परिधि ६० मील, मोटाई ८७ फ़ीट और उँचाई ३५० फ़ीट थी। जेहूँ-नदी के तट के साथ-साथ दो और दीवारें थीं। दो प्रासाद थे। इनमें से एक 'संसार का विस्मय' कहलाता था। यह नेबूकडनज़र (Nebuchadnezzar) ने बनवाया था। इसके अंदर ही प्रसिद्ध झूलनेवाला बाग़ था। इसमें सबसे विख्यात भवन नगर के उत्तर-पूर्व में 'बेल' का मंदिर था। यह एक आठ मंज़िल का शंकु के रूप का भवन था। इसके

ऊपर 'बेल' ( Bel ) की एक ४० फ़ीट ऊँची सुवर्ण की मूर्ति, एक ४० फ़ीट लंबी सोने की मेज़, और सोने की अन्य वस्तुएँ रक्खी थीं। ईसा के ५३८ वर्ष पूर्व कायरस ( Cyrus ) ने जेहूँ का जल एक नई नहर में डालकर नदी को सुखा दिया, और रात के समय सेना को सूखी हुई नदी से गुज़ारकर इस नगर पर अधिकार कर लिया। पीछे से इसे महान् सिकंदर ने ले लिया, और उसकी मृत्यु भी यहीं होने के कारण यह प्रसिद्ध हो गया।

पृष्ठ ५ निनवह् ( Nineveh )—प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध नगर था। यह टिगरिस नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ था। यह कोई २,००० वर्ष तक असिरिया-राज्य का प्रधान नगर रहा। इसके संबंध में सबसे पुराना। ऐतिहासिक लेख सृष्टि-उत्पत्ति की पुस्तक है। इसकी नींव ईसा से कोई २,३४७ वर्ष पूर्व रक्खी गई थी, परंतु इसे सबसे अधिक समृद्धि और ऐश्वर्य सेना-चरिब ( Sennacherib ) और असुर बनीपाल के काल में प्राप्त हुआ। इन राजों ने बड़े-बड़े विशाल और सुंदर भवन बनाए थे, जिनके भग्नावशेष भारी-भारी मूर्तियों और बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित पाए गए हैं। कहते हैं, नगर के इर्द-गिर्द एक १०० फ़ीट ऊँची दीवार थी। ऊपर से यह इतनी चौड़ी थी कि उस पर तीन रथ इकट्ठे साथ-साथ चल सकते थे। इसमें दो-दो सौ फ़ीट ऊँचे १,५०० बुर्ज थे। इस दीवार के अंदर का क्षेत्रफल ६० मील था। इस नगर की खुदाई से जो बहुत-सी मूर्तियाँ, चित्रित पट्टिकाएँ और अन्य सुमनोरंजक वस्तुएँ निकली हैं, उनसे इसके भवनों की विशालता और विद्याओं में उन्नति का पता चलता है। असुर बनीपाल के पुस्तकालय से बढ़कर उस समय और कोई पुस्तकालय न था। इसकी पुस्तकें चिकनी मिट्टी पर मुद्रित थीं। उनमें वंशावलियाँ, बड़े महत्त्व के ऐतिहासिक लेख, क़ानूनी-पत्र, व्यापार-संबंधी विज्ञप्तियाँ, ज्योतिष की गणनाएँ, व्याक-

रण और कोष थे। इनमें से कुछ के टुकड़े मिले भी हैं। असिरियन लोगों को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। उनका सबसे बड़ा मान-मंदिर निनवह में था। वे सोने के आभूषण बनाना, हीरे का काटना और काँच का बनाना जानते थे। यहाँ व्यापार भी बहुत होता था। कहते हैं, इनका वाणिज्य एक ओर भारत से लेकर दूसरी ओर इँगलैंड तक फैला हुआ था। असुर बनीपाल की मृत्यु के पश्चात् इस नगर के ऐश्वर्य का ह्रास होने लगा, और थोड़े ही वर्ष उपरांत (ईसा के कोई ६२५ वर्ष पूर्व) बेबीलोनियन और मीडीज़ (Medes) लोगों ने इस पर अधिकार करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

पृष्ठ ११ होमर—यूनान का एक बड़ा पुराना और प्रसिद्ध कवि था। इसने इलियड और ओडेसी-नामक दो महाकाव्य लिखे थे। इसकी मृत्यु ईसा से कोई ८५० वर्ष पूर्व हुई।

वर्जिल—यह रोमन कवि था। इसने Eclogue, Georgies और एनीड (Eneid)-नामक काव्य लिखे। शेषोक्त ग्रंथ इसने ग्यारह वर्ष में समाप्त किया था। वह इसे दुहराने भी न पाया था कि उसका ईसा से १९ वर्ष पूर्व देहांत हो गया।

सॉफ़ोक्लिस—करुण-रस-प्रधान नाटक लिखनेवाला एथेंस (यूनान) का एक कवि। कहते हैं, इसने १३० नाटक लिखे थे, और बीस बार प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। इसके अब पूरे नाटक केवल सात Antigon hlecha, Trachiniæ, Œdipus, Rex, Ajaxe, Teiloctes, और Œdipus Coloneus—ही मिलते हैं। इसका जन्म ४९५ ई० पू० और मृत्यु ४०६ ई० पू० में हुई।

यूरीपिडीस—यह यूनान का एक करुणा रस प्रधान नाटक लिखने-वाला कवि था। यह अनेक्सागोरस दार्शनिक और प्राडिकस अलंकार-शास्त्री का शिष्य था। इसने दो बार विवाह किया; परंतु दोनों स्त्रियों से ही इसे सुख न हुआ। इसी से इसके ग्रंथों में स्त्रियों की घोर

निंदा पाई जाती है। इसका पहला नाटक "Peliaoles" था। एक दिन यह शाम को मकदूनिया-राज्य के एक जंगल में घूम रहा था कि शिकारी कुत्तों ने इसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसके ७५ नाटकों में से अब केवल १६ ही मिलते हैं। इसका जन्म ४८० ई० पू० और मृत्यु ४०७ ई० में हुई।

प्लौटस ( Ploutus Maccius )—एक लैटिन प्रहसन लिखनेवाला नाटककार। इसे लैटिन और यूनानी साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान था। नीच कुल में उत्पन्न होकर भी इसने अपनी विद्या के प्रताप से नाटक लिखने में ख़ूब नाम पाया था। इसके १३० नाटकों में से अब केवल २० ही मिलते हैं। इसका जन्म कोई २५४ ई० पू० और देहांत १८४ ई० पू० में हुआ।

टेरेंस—एक रोमन नाटककार और हास्यरसपूर्ण कविता लिखने-वाला। यह पहले एक क्रीतदास था, परंतु इसकी चमत्कारिणी बुद्धि पर मोहित हो इसके स्वामी ने इसे स्वतंत्रता दे दी। इसने यूनान में जाकर वहाँ के साहित्य का ख़ूब अध्ययन किया, और उसके अच्छे-अच्छे प्रहसनों का लैटिन में अनुवाद कर डाला। कई लोग कहते हैं कि इसकी मृत्यु शोक के कारण हुई थी; क्योंकि इसने यूनान में रहते हुए भी नेडर के १०८ नाटकों का अनुवाद करके रोम भेजा था; परंतु वे रास्ते में ही समुद्र में खो गए। इसके प्रसिद्ध नाटक Eunuchus, Phormio, और Adelphius हैं। इस-का जन्म कोई १६५ ई० पू० और देहांत १५६ ई० पू० में हुआ।

सुक़रात—यूनान का एक विख्यात तत्त्ववेत्ता। यह सद्गुणों के प्रचार से व्यापक सुधार करने का यत्न करता था। इसके विचारों की स्वतंत्रता और संवादों के प्रबल वाक्प्रवाह के कारण इसके अनेक शत्रु बन गए। फिर सुक़रात पर पाँच सौ की सभा में एथेंस के युवकों को बिगाड़ने, धर्म में नवाचार घुसेड़ने और देवतों की हँसी

उड़ाने का दोष लगाया गया। इनके लिये उसे मृत्यु-दंड की आज्ञा मिली। थिओरा ( Theoria )-नामक पर्व के कारण एक मास तक यह आज्ञा रुकी रही। यह समय उसने अपने मित्रों के साथ उच्च विषयों पर संवाद करने में व्यतीत किया। उसे कारागार से भाग जाने की सलाह दी गई, और उसका भाग जाना भी बड़ा सुगम था; क्योंकि जेलर ने भी अनुमति दे दी थी। परंतु उसने बड़ी ही उदारता से भागने से इनकार कर दिया, और कहा—"मैं मृत्यु से बचकर कहाँ जा सकता हूँ ?" जब उत्सव समाप्त हो गया, तब उसने पूर्ण शांति के साथ विष का प्याला पी लिया, और कुछ मिनट के उपरांत उसकी आत्मा उसके पांचभौतिक शरीर से निकल गई। इस प्रकार उस सुक़रात का प्राणांत हुआ, जिसको आकाश-वाणी ने यूनान का सबसे बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य ठहराया था। एथेंस-निवासियों को अपनी कृतघ्नता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ; उसके शत्रुओं से सब कहीं घृणा होने लगी, और वे बड़ी बुरी मौत मरे। इस महात्मा का जीवन-वृत्तांत और उसकी शिक्षा उसके दो परम शिष्यों, ज़ेनोफन तथा अफ़लातूँ, द्वारा हम तक पहुँची है।

इसका जन्म एथेंस नगर में ४६९ ई० पू० में और मृत्यु ३९९ ई० पू० में हुई।

पीथागोरस—एक यूनानी दार्शनिक था। इसने मिसर में जाकर अध्ययन किया था। जब वह एशिया के एक बड़े भाग का भ्रमण करने के उपरांत स्वदेश लौटा, तब समोस ( Samos ) का राज्य पोलीक्रेटस ( Polycrates ) के हाथ में चला गया था, इसलिये वह इटली के अंतर्गत करोटोना में चला गया। वहाँ उसने दर्शन पढ़ाने में ख़ूब नाम पाया। उसके पास देश के सभी भागों से विद्यार्थी आते थे। विद्यार्थियों को पहले पाँच वर्ष तक परीक्षा के तौर पर मौन-व्रत धारण करना पड़ता था। इसके उपरांत उसे अपनी सारी संपत्ति

साझी पूँजी में डाल देनी पड़ती थी। उसके कोई ३०० शिष्य थे, और वे सब अपने को धर्म-भाई समझते थे। उसने लोगों के आचरण का बहुत कुछ सुधार किया। वह सूर्य को विश्व का केंद्र और पृथ्वी को अन्य लोकों सहित उसके गिर्द घूमती हुई मानता था। वह पुनर्जन्म तथा निरामिष भोजन का प्रचार करता था। जन्म समास में कोई ५८० ई० पू० में और मृत्यु कोई ५०० ई० पू० में हुई।

अफ़लातूँ ( प्लेटो )—विख्यात यूनानी दार्शनिक था। इसका पहला गुरु वैयाकरण डायोनिसियस था। इसके पश्चात् उसने अरिस्टन-नामक पहलवान से व्यायाम-विद्या सीखी। इसके कंधे चौड़े और शरीर बलवान् था। इससे अरिस्टन ने इसका नाम प्लेटो रक्खा था। इसका पहला नाम इसके दादा के नाम पर अरिस्टोक्लीस था। फिर वह संगीत और कविता सीखने लगा, और उसने ओलिंपिक खेलों के लिये कुछ छंद बनाए भी; परंतु सुकरात का लंबा संवाद सुनकर उसने वे सब जला दिए और वह उसका शिष्य बन गया। अफ़लातूँ कोई दस वर्ष तक सुक़रात का शिष्य रहा। फिर सन् ३९९ ई० पू०-में उसकी मृत्यु पर वह एथेंस को छोडकर ज्ञान की तलाश में भिन्न-भिन्न देशों में घूमने लगा। कायरीन ( Cyrene ) में उसने भूमिति-विद्या और गणित की अन्य शाखाओं का अध्ययन किया। वहाँ से वह मिसर पहुँचा। यहाँ तेरह वर्ष रहकर उसने पुरोहितों की सब विद्या सीखी। फिर सिसली द्वीप में वहाँ के आश्चर्यों, विशेषतः एटना पर्वत, को देखने गया। सिसली में उसका साईरेक्यूस ( Syracues ) के अत्याचारी डायोनिसियस ( Dionysius ) से परिचय हो गया। परंतु दुर्भाग्य से इसने उसे रुष्ट कर दिया, इसलिये डायोनिसियस ने स्पार्टन दूत को, जिसके जहाज़ में अफ़लातूँ स्वदेश जा रहा था, फुसलाकर अफ़लातूँ को एजिना ( Ægina ) में दास के रूप में बिकवा दिया। परंतु उसे ख़रीदनेवाले ने उसे स्वतंत्र कर

दिया। तब वह एथेंस में आकर अकेडिमिया ( Academeia ) के उद्यान में शिक्षा देने लगा। इसी से इसका तत्त्वज्ञान अकेडिमिक कहलाता है। अफ़लातूँ की सबसे बड़ी पुस्तकें ये हैं—

'फ़ीडो' ( Phœdo )—यह कथनोपकथन के रूप में है। इसमें सुक़रात के अंतिम समय का बड़े ही हृदयद्रावक शब्दों में वर्णन है।

'रिपब्लिक' -इसमें सामाजिक नीति के उच्चतम सिद्धांत की व्याख्या है।

'टिमिउस' (Timeous)—यह तत्कालीन वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान का संक्षेप है।

इसका जन्म एथेंस में ४२९ ई० पू० में और मृत्यु ३४७ ई० पू० में हुई।

अरस्तू ( Aristotle )—विख्यात यूनानी तत्त्ववेत्ता। इसका जन्म ३८४ पू० ई० में हुआ था। इसका पिता मक़दूनिया का राजवैद्य था। ३६७ ई० पू० में वह एथेंस में आकर अफ़लातूँ का शिष्य बन गया। ये दोनों कोई बीस वर्ष तक इकट्ठे रहे। ३४२ ई० पू० से ३४० तक वह महान् सिकंदर का अध्यापक रहा। इस काल में उसने नाना प्रकार के प्राणियों के पाठ की सामग्री संगृहीत की। ३३४ ई० पू० में उसने स्वतंत्र तर्क की शिक्षा देना आरंभ किया। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् उस पर नास्तिकता और मक़दूनिया का पक्ष लेने का दोष लगाया गया। इस कारण उसे एथेंस छोड़ना पड़ा। इसी देश-निकाले की अवस्था में, ३२२ ई० पू० में उसका देहांत हो गया।

लिवियस टाइटस—एक उद्भट रोमन ऐतिहासिक था। ऐसा जान पड़ता है कि यह रोम में रहता था, और आगस्टस का परम मित्र था। उसने उसे अपने पोते क्लाडियस ( Claudius ) का शिक्षक नियत किया था। उसका इतिहास वास्तव में १४२ ग्रंथ-खंडों में था; परंतु अब उनमें से केवल तीस ही मिलते हैं। यह इतिहास रोम

की प्रतिष्ठा से आरंभ होकर जर्मनी में सन् ६ ई० पू० में ड्रूसस ( Drusus ) की मृत्यु के साथ समाप्त होता था।

इसका जन्म पटेवियम में, ५९ ई० पू० में और मृत्यु सन् १८ में हुई।

सेलस्ट ( Sallust, Caiud Crispus )—एक ऐतिहासिक। इसने वैयाकरण अटीयस फ़िलोलोगस ( Atteius Philologus ) से शिक्षा पाई थी, और रोम में अनेक पदों में गुज़रने के उपरांत वह क्रमशः क्वीस्टर ( Quæstor ) और ट्रीब्यू (पंच) बन गया। वह बड़ा भ्रष्टचरित्र था। माईलो की स्त्री के साथ व्यभिचार करने के कारण उसे शिष्ट सभा की सभासदी से निकाल दिया गया; परंतु सीज़र ने उसे फिर सदस्य बना दिया, और नूमीडिया का शासन दे दिया। रोम में वापस आकर उसने एक बड़ा शोभन प्रासाद बनवाया, और वहाँ अपना अवशिष्ट जीवन भोग-विलास में बिता दिया। आश्चर्य है कि ऐसा मनुष्य साहित्य के लिये समय निकाल सकता था। इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। उसको केटिलाइन ( Catiline ) के षड्यंत्र का इतिहास और जगरदाइन ( Jugurthine ) के युद्धों का इतिहास ऐतिहासिक साहित्य में उच्च स्थान रखते हैं।

इसका जन्म एमिटर्नम में, ८६ ई० पू० में और देहांत रोम में ३४ ई० पू० में हुआ।

टेसीटस ( Tacitus Caius Cornatius )—एक रोमन ऐतिहासिक, जिसके वंश का कुछ पता नहीं। ऐतिहासिक के रूप में इसने अमर जीवन प्राप्त किया है। इसके इतिहासों का बहुत थोड़ा भाग अब प्राप्त है। 'जर्मनों के आचार-व्यवहार' पर उसकी पुस्तक तथा उसका लिखा उसके ससुर एग्रीकोला का जीवन-चरित्र पूर्ण है। ये ग्रंथ बड़ी ही प्रशंसा के पात्र हैं; परंतु टिबरियस के शासन-काल का इतिहास उसका सर्वोत्तम ग्रंथ है। उसकी लैटिन भाषा बड़ी ही शुद्ध और ललित है।

इसका जन्म कोई सन् ४५ में और मृत्यु कोई १३० में हुई।

डिमास्थनीज़—यूनान का सबसे बड़ा वाग्मी। यह एथेंस के एक धनाढ्य कवच बनानेवाले का पुत्र था। बचपन में ही पिता का देहांत हो जाने के कारण इसके अभिभावकों ने इसकी संपत्ति का एक बड़ा भाग दबा लिया था, और सत्रह वर्ष की आयु में उसने अपना अभियोग आप लड़कर उन पर विजय पाई। जब उसने पहले-पहल सार्वजनिक सभाओं में बोलना आरंभ किया, तब उसे इतनी सफलता नहीं हुई, क्योंकि उसके फेफड़े दुर्बल, उसका उच्चारण अस्पष्ट और उसकी भावभंगी भद्दी थी। तब वह कुछ वर्ष के लिये सार्वजनिक जीवन को छोड़कर बड़े परिश्रम तथा धैर्य से अपने दोषों को दूर करने लगा। वह पर्वत पर चढ़ते समय, समुद्र-तट पर, और समुद्र की लहरों की गर्जना में वक्तृता करता और मुँह में पत्थर के टुकड़े डालकर भाषण करने का अभ्यास करता। अच्छा हाव-भाव प्राप्त करने के लिये वह दर्पण के सामने अभ्यास करता। उसे एक कंधे को सिकोड़ने का स्वभाव था। इसे दूर करने के लिये वह उसके ठीक ऊपर, जहाँ वह खड़ा होता था, एक तीक्ष्ण तलवार रख लेता था। इस विद्या के तत्त्व उसने इसीउस ( Isoeus ) से सीखे थे, और अफ़लातूँ के व्याख्यान भी सुने थे। उसे अभी तत्काल भाषण देना नहीं आया था, इसलिये वह वक्तृताओं को बड़े परिश्रम के साथ एक गुफा में तैयार किया करता था, जिससे उसके विपक्षी प्रायः उसे छेड़ा करते थे कि उनसे दीपक की गंध आती है। उसने सभी प्राचीन लेखकों के ग्रंथ अनेक बार पढ़े थे। विशेषतः जिसे थूसाईडिस ( Thucydides ) का इतिहास कहते हैं, उसे कोई आठ-दस बार नक़ल किया था। इस प्रकार शैली तथा हाव-भाव के सभी दोषों को दूर कर चुकने पर वह सत्ताईस वर्ष की आयु में फिर सर्वसाधारण के कामों में प्रकट होने लगा। कुछ वर्ष वकालत

करने के उपरांत वह सरकारी नौकर हो गया, और उसने राज्य के उच्चतम पद प्राप्त किए। इस समय मकदूनिया के फ़िलिप के अतिक्रम ने यूनान की सभी रियासतों, विशेषतः एथेंस को घबराहट में डाल दिया। अपने देश-वासियों को इस भय का सामना करने के लिये तैयार करने में डीमास्थनीस सबसे आगे था। वह फ़िलिप के यशस्काम संकल्पों को अपनी वक्तृताओं में खूब रंग चढाकर वर्णन करता था। जब फ़िलिप एटिका पर आक्रमण करने लगा, तो डीमास्थनीस को दूत बनाकर भेजा गया, ताकि बीओशियन लोगों (Bœotians) को कह-सुनकर अपनी सहायता के लिये तैयार करे। इसमें उसे सफलता हुई। फ़िलिप के मरते ही डीमास्थनीस ने मकदूनिया राज्य को कुचल डालने का अच्छा अवसर पाया। उसके उद्योग से यूनान की रियासतों में एक नवीन संघ बन गया, और ईरानियों से फ़िलिप के पुत्र सिकंदर के साथ युद्ध करने के लिये प्रार्थना की गई। परंतु सिकंदर की प्रबल चेष्टा और उसके थीबस (Thebes) को भीषण दंड देने से यह संघ टूट गया। एथेंस-निवासियों ने विजेता के कोप को फेर देने के लिये एक दूत-समूह भेजा, जिनमें एक डीमास्थनीस भी था; परंतु वह डर के कारण रास्ते में से ही लौट आया। यह उन वाग्मियों में से एक था, जिनको सिकंदर चाहता था कि वे मेरे सिपुर्द कर दिए जायँ, परंतु डिमेडस (Demandes) ने इस बलि के बिना ही राजा को शांत कर दिया।

अब डीमास्थनीस का प्रभाव घट रहा था। ईसचिनस (Æschines) ने इससे लाभ उठाकर उस पर चीरोनिया (Chæronea) पर उसके आचरण के विषय में दोषारोपण कर दिया; परंतु वागीश्वर ने उसका ऐसी उत्तमता से प्रतिवाद किया कि वह साफ़ छूट गया, और उसके शत्रु को देश-निकाला मिला। परंतु इसके थोड़े ही समय पीछे डीमास्थनीस पर सिकंदर के हारपेलस

( Harpalus )-नामक जर्नल से, जिसने सिकंदर के विरुद्ध विद्रोह किया था और एथेंसवालों को उसके अधिकार के विरुद्ध सिर उठाने के लिये उभारा था, एक सोने का प्याला और बीस टेलंट (१टेलंट = ४००पौंड ) लेने का अपराध सिद्ध हुआ। दंड से बचने के लिये वह एजिना ( Ægina) को भाग गया। वहाँ वह सिकंदर की मृत्यु तक रहा। फिर उसके देश-भाइयों ने उसे बड़े आदर से वापस बुला लिया। परंतु यह भाग्य-परिवर्तन क्षणिक ही था। उसने सिकंदर के उत्तराधिकारी एंटीपेटर के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। एंटीपेटर ने एथेंसवालों को हराया, और उनसे डीमास्थनीस को सिपुर्द कर देने के लिये कहा। डीमास्थनीस कुछ मित्रों सहित कलौ-रिया ( Colouria ) में पोसीडन ( Poseidon ) के मंदिर में भाग गया, और वहाँ विष खाकर मर गया। एथेंस-निवासियों ने उसकी स्मृति में एक मूर्ति स्थापित की, और उसके ज्येष्ठ पुत्र को सरकारी ख़र्च पर पाला-पोसा। डीमास्थनीस की वाग्मिता अपने बल तथा गौरव के लिये प्रसिद्ध है। इस वाग्मी की वाग्मिता का उद्देश्य अपने श्रोताओं के भावों को प्रभावित करना नहीं, प्रत्युत उनकी बुद्धि को विश्वास करा देना था। डीमास्थनीज़ की प्राप्य वक्तृताओं में से बक्कर ( Bekker ) का मूल-ग्रंथ आदर्श समझा जाता है। उसकी बहुत-सी वक्तृताओं का अँगरेज़ी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

इसका जन्म ३८५ ई० पू० में और देहांत ३२२ ई० पू० में हुआ।

सिसरो ( Cicero Marcus Tullius )—एक विद्वान् दार्श-निक और सबसे बड़ा रोमन वाग्मी था। इसका जन्म एक कुलीन घराने में हुआ था। यूनान के साहित्य तथा भाषा की शिक्षा इसने क्रेसस ( Crassus )-नामक वाग्मी से, दर्शन की फ़िलो ( Philo ) से, क़ानून की म्यूटियस सीवोला ( Mutius Scœvola ) से और

युद्ध-विद्या को सिल्ला ( Sylla ) से पाई थी । सोलह वर्ष की आयु में उसे नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गए थे । बचपन में ही उसने अराटस की यूनानी कविता 'फ़ीना मीना' का लैटिन में अनुवाद किया । छब्बीस वर्ष की आयु में वह प्लीडर बना । उसने क्विंकटियस ( Quinctius) और अमेरिका के रोसियस (Roscius) के मुक़द्दमे ऐसी उत्तम रीति से किए कि रोमन लोग उसकी प्रशंसा करने लगे । तब उसने यूनान तथा एशिया की यात्रा की, और एथेंस में कुछ समय अपने मित्र एटिकस के साथ यूनानी वाग्मिता का अध्ययन करने में बिताया । रोम में वापस आने पर वह सब प्लीडरों से बढ़ गया । एडिल ( Aedile ) तथा प्रीटर ( Prætor ) के पदों पर रहने के उपरांत वह कौंसिल के पद के लिये तैयार हुआ । यद्यपि इसका प्रबल विरोध हुआ, पर फिर भी वह कृतकार्य हुआ । कुछ काल के उपरांत वह राजनीति को छोड़कर साहित्य-सेवा में लग गया; परंतु डिक्टेटर के वध ने उसे एक बार फिर राजनीतिक रंग-मंच पर ला खड़ा किया । अंत को एक झगड़े में आक्टेवियस के मित्र-द्रोह से, एंटनी की आज्ञा से उसका वध हुआ । उसके सिर तथा हाथों को एंटनी ने फ़ोरम में रख दिया, जहाँ सिसरो ने अनेक बार रोमन लोगों की स्वतंत्रता, भाग्य और जीवनों की रक्षा की थी । इस महापुरुष की योग्यता की सार्वजनिक प्रशंसा हुई है । उसमें अनेक गुप्त और प्रकट गुण थे, यद्यपि वे इसके अति गर्व के कारण अंधकार में छिप जाते थे । उसमें शौर्य की भारी कमी थी, जिससे वह बहुधा बड़ी नीचता के काम कर बैठता था । उसने टरनशिया-नामक स्त्री से विवाह किया । उससे एक पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुई । परंतु पीछे से इसने उसका परित्याग कर दिया । उसकी दूसरी पुत्री एक युवती थी, जिसका वह अभिभावक था ।

इसका जन्म १०६ ई० पू० में और मृत्यु ४३ ई० पू० में हुई ।

हिपोक्रटीज़ ( Hippocrates )—एक यूनानी वैद्य । जन्म ४६० ई० पू० ।

जस्टिनियन ( Justinian )—एक रोमन स्मृतिकार । पूर्वी देशों का सम्राट् । यह अपने चचा प्रथम जस्टिनस के स्थान पर सन् ५२७ में राजा बना । यह ईसाई-धर्म का रक्षक था । इसने अपने सेनापति बेलीसेरियस की सहायता से अपने शत्रुओं को परास्त किया । इस सेनापति ने इसकी एक षड्यंत्र से भी रक्षा की । शांति स्थापित हो जाने पर जस्टिनियन ने सभी रोमन क़ानूनों को एक जगह इकट्ठा किया, और उस ग्रंथ का नाम डाईजेस्ट ( Digest ) अथवा पेंडक्ट्स ( Pandects ) रक्खा गया । इस ग्रंथ की समाप्ति पर नव्य काल के क़ानूनों का एक पुस्तक में संग्रह किया गया, और उसका नाम 'नावेली' ( Novellæ ) रक्खा गया । इसने बहुत-से गिरजे बनाए, विशेषतः कुस्तुनतुनिया में सेंट सोफ़िया का गिरजा, और 'कानसूलेट' को बंद कर दिया ।

इसका जन्म सन् ४८३ में और मृत्यु सन् ५६५ में हुई ।

पृष्ठ १२ यहूदिया—पेलस्टाइन ( Palestine ) ईसाइयों की पवित्र भूमि ।

ईकस ( Eacus ) ह्रदेमंत्थस, मिनर्वा, एथेनिया (Athenaia) नेपच्यून, बेलोना, पेलस, एंड्रोमेडा और एरियाने (Ariadne)—ये सब रोमन देवी-देवताओं के नाम हैं ।

पृष्ठ १३ अलेग्ज़ेंड्रिया ( सिकंदरिया ) का पुस्तकालय—सिकंदरिया मिस्र-देश का बंदरगाह है । किसी समय यह विद्या का एक बड़ा केंद्र था । यह गणित, खगोल और भूगोल-विद्या के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था । यहाँ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था । जितनी प्राचीन पुस्तकें इसमें थीं, उतनी और किसी भी दूसरे पुस्तकालय में न थीं । इनको अधिकतर टोल्मी सोटर ( Ptolemy Soter ) ने

इकट्ठा किया था। सब मिलाकर इसमें ७,००,००० पुस्तकें थीं। इनमें से ४,००,००० तो उस समय नष्ट कर दी गई थीं, जब जूलियस सीज़र नगर के यूनानी भाग में घिर गया था, और बाक़ी मुसलमानों के सेनापति उमर ने सन् ६४० ई० में जला डाली थीं।

पृष्ठ १३ मेनीस ( Menes )—प्रथम मिसरी-वंश का प्रथम राजा। काल-गणना-संबंधी खोज के अनुसार वह ईसा से २,७१७ वर्ष पूर्व सिंहासन पर बैठा था।

पृष्ठ १३ मूसा—प्रसिद्ध यहूदी स्मृतिकार और पैग़ंबर। यह यहूदी लोगों को मिसर-देश से बाहर निकाल ले गया था।

पृष्ठ १३ मिनोस (Minos I)—यह क्रीट ( Crete ) का राजा था। कहते हैं, यह १४३२ ई० पू० में राज्य करता था। इसने अनेक उत्तमोत्तम क़ानून और प्रथाएँ प्रचारित की थीं। मिनोस के क़ानून उसकी मृत्यु के एक सहस्र वर्ष बाद, अफ़लातूँ के समय में भी, प्रचलित थे।

पृष्ठ १८ ट्रोजन—एशिया माइनर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में एक प्रसिद्ध पुराना नगर था। इसका नाम ट्राय था। होमर कवि के इलियड-ग्रंथ की घटनाओं का संबंध इसी नगर से है। यहाँ के अधिवासियों को ट्रोजन कहते हैं।

पृष्ठ १९ हरक्यूलीस—यूनानी देवमाला का सबसे प्रसिद्ध वीर। यह एंफ़िटरियन की स्त्री अलीमोना के पेट से उत्पन्न जूपिटर ( ज़ोउस ) का पुत्र था। यह बहुत बलवान् था। द्वेष के कारण देवी जूनो ने इसे निगल जाने के लिये दो साँप भेजे; परंतु इसने उन्हें पंघरे में गला घोटकर मार डाला। इसने बचपन में ही शारीरिक बल और वीरता के अद्भुत कार्य दिखलाकर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इसने किथेरोन ( Citheron ) के सिंह को मारा, और थीब्स को आर्चोमीनोस के राजा अर्गिनस को कर देने से मुक्त कर दिया। जिन दिनों यह

माईसीन ( Mycenæ ) के राजा यूरिस्थिउस की सेवा में था, इसने बारह अद्भुत कर्म किए थे। हमारे यहाँ के भीम के सदृश यह अपने शारीरिक बल के लिये ही प्रसिद्ध है।

पृष्ठ १६ थीसियस ( Theseus )—एथेंस का राजा और उस राज्य का वीर। इसने क्रीट के राक्षस को वहाँ के राजा माईनोस की पुत्री की सहायता से मारा, अमेज़ोनों को हराकर उनकी रानी को पकड़ लिया, और कंटौरों के साथ युद्ध किए। यह लीडा की युवती पुत्री हेलन को उठाकर ले गया, परंतु बाद को इसे उसको लौटाना पड़ा। एथेंस वासियों से हताश होकर वह लाईकोमीड्स की राज-सभा में चला गया; परंतु उसने इसे किसी बहाने से एक ऊँची चट्टान पर ले जाकर नीचे ढकेल दिया। इसके शव को एथेंस में ले जाया गया, और उस पर एक सुंदर समाधि-मंदिर बनाया गया।

पृष्ठ १८ जेसन—यूनानी पुराण-कथा में यह आर्गोनाटों का मुखिया था। यह आइओल-चस के राजा ईसन का पुत्र था। राजा के मर जाने पर इसके चचा पेलियस ने थेसली के सिंहासन को दबा लिया; क्योंकि जेसन अभी बच्चा था। पेलियस ने जेसन को अपनी आँखों से दूर करने के लिये दूर एक गुरु के पास पढ़ने भेज दिया; फिर राजगद्दी के उत्तराधिकारी की समाप्ति करने के लिये उसने इस महत्त्वाकांक्षी युवक से कहा कि "कोलचस के राजा ईट्स ने हमारे संबंधी फ्रिक्सस ( Phryxus ) के साथ बहुत ही बुरा और अमानुषिक व्यवहार किया था, इसलिये उससे बदला लेना चाहिए।" उसने यह भी कहा कि इस अभियान से तुम्हें बड़ा यश मिलेगा, और तुम्हारे लौटने पर मैं तुम्हें राजगद्दी दे दूँगा। जेसन ने उसके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया, और बहुत-से युवक और वीर यूनानी उसकी सहायता के लिये उसके साथ हो लिए। वे आर्गो-नामक एक पोत पर सवार होकर चले। वहीं से उनका नाम

आर्गोनाट हुआ। वे कई विपत्तियों का सामना करते और बचते हुए कोलचस में जा पहुँचे। ईट्स ने सुनहली पोस्तीन, जिसके कारण फ्रिक्सस मारा गया था, वापस देने का वचन दिया, यदि जेसन उसकी शर्तों को पूरा करे। वे शर्तें ये थीं कि जेसन बैलों से हल चलावे, और उस भयंकर सर्प को मारे, जो सुनहली पोस्तीन की रक्षा कर रहा था। राजा की पुत्री, मीडिया, का जेसन के साथ प्रेम हो गया। वह जादू-मंत्र जानती थी। उसने जेसन से कहा कि यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लो, तो मैं तुम्हारी सभी विपत्तियों से रक्षा कर सकती हूँ। उसने मीडिया की बात मान ली, और मीडिया ने उसे वे बूटियाँ दे दीं, जिनसे वह अपनी रक्षा कर सका। वह सुनहली पोस्तीन ले आया, और मीडिया को साथ ले, जहाज़ में बैठ, योरप आ पहुँचा। परंतु जेसन का ग्लैस-नामक एक दूसरी स्त्री के प्रति प्रेम हो जाने से बाद को उनका वैवाहिक सुख नष्ट हो गया। मीडिया से विवाह-संबंध भंग कर दिया गया। मीडिया ने भी अपना बदला चुकाने के लिये अपने बच्चों को उनके पिता के सामने मार डाला। जेसन का अंतिम जीवन बड़ा शोकमय व्यतीत हुआ। एक दिन वह आर्गो जहाज़ के पास विश्राम ले रहा था कि जहाज़ का एक शहतीर टूटकर उसके सिर पर गिरा, और उसकी मृत्यु हो गई।

पृष्ठ १८ ओसिरिस—मिसर देश की देवमाला में एक बड़ा देवता था। मिसर का राजा बनकर इसने प्रजा को सभ्य बनाने के लिये बहुत श्रम किया, और उन्हें कृषि-कला सिखलाई। मिसर का सुधार करने के पश्चात् उसने अन्य भूभागों में भी सभ्यता का विस्तार करने का निश्चय किया। अपना राज-पाट, अपनी भार्या आईसिस को देकर उसने एशिया और योरप के बहुत बड़े भाग का पर्यटन किया। वहाँ के लोगों में देव-पूजा और ईश्वरोपासना काप्रचार करके

उनको ज्ञानालोक से आलोकित किया। कहते हैं, जब वह स्वदेश लौटा, तो उसके भाई टाईफ़न ने उसे किसी प्रकार बहकाकर एक संदूक़ में बंद कर दिया, और फिर उस संदूक़ को समुद्र में फेंक दिया। परंतु बाद को उसका शरीर आईसिस ने प्राप्त कर लिया। ओसिरिस हेडीज़ (Hades) का विचार-पति समझा जाता है।

पृष्ठ १६ ईकस, ह्रडेमन्सस इत्यादि—ये सब यूनानी और रोमन देवी-देवताओं के नाम हैं। ग्रंथकार ने बताया है कि अहक और राधा-मंत आदि हिंदू नाम ही रूपांतरित होकर ये ग्रीक और रोमन नाम बन गए हैं। परंतु इन हिंदू नामों का संस्कृत रूप मेरी समझ में नहीं आया। जैसा रोमन अक्षरों मे लिखा था, मैंने वैसे-का-वैसा उन्हें यहाँ लिख दिया है।

पृष्ठ २२ क्रेटी इत्यादि—ये सब प्राचीन योरपियन जातियों के नाम हैं।

पृष्ठ २४ आइओनियन—आईओनिया-देश के निवासी। आईओनिया एशिया माइनर के एक प्रदेश का प्राचीन नाम है। यह देश हर्मश-नदी से लेकर मीएंडर-नदी तक ईजियन सागर के किनारे के साथ-साथ फैला हुआ था।

पृष्ठ २४ डोरियन—यूनान की चार प्रधान जातियों में से एक। ये जातियाँ कोरिंथियन खाड़ी के उत्तरी किनारे के साथ मिलते हुए देश में बसती थीं।

पृष्ठ २५ ख ओलिंपस—प्राचीन यूनान का एक प्रदेश।

पृष्ठ २५ ख अचिलस ( Achilles )—होमर कवि-कृत इलियड काव्य का नायक। यह थिया (Phthia) के राजा पीलीउस (Peleus) के वीर्य से थीटिस-नामक एक सागर-देवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ट्राय के युद्ध में जितने यूनानी लड़े थे, उन सबमें यही अधिक बलवान् था। बाल्यावस्था में थीटिस ने इसे स्टाइक्स में डुबका

लगवाकर इसके शरीर को वज्र बना दिया था। इसकी प्रियतमा ब्रीसीसको अगेममनान उठा ले गया था। इसीसे ट्राय का युद्ध हुआ।

ईसप—ईसप की कहानियाँ संस्कृत के पंचतंत्र का रूपांतर हैं। इसी प्रकार लाफ़ोंटेन और बबरियस की भी कहानियाँ पंचतंत्र और हितोपदेश से मिलती हैं।

पृष्ठ २५ ङ हिंदू-धर्मशास्त्र के अनुसार—देखो मनु अध्याय ३, श्लोक १५१।

पृष्ठ २५ च वाग्दान...पहले होता है—देखो मनु अ०, ३, श्लोक १५२ और अध्याय १०, श्लोक ७१।

पृष्ठ २५ छ हिंदुओं में कुमारी—देखो मनु अ० ९, श्लोक ३।

पृष्ठ २५ छ मानव-धर्मशास्त्र के अनुसार—देखो मनु, अ० ३, श्लोक ५।

पृष्ठ २५ ञ घर में उत्पन्न होनेवाला बालक—देखो मनु, अ० ९, श्लोक ३२ तथा १७०।

पृष्ठ २५ ञ क्षेत्रज संतान—देखो मनु अध्याय १०९।

पृष्ठ २५ ड मैं, जो कि पुत्रहीन हूँ—देखो मनु अ० ९, श्लोक १४१, १४२, १५९, १६४।

पृष्ठ २६ संपत्ति पराबंध, निक्षेप इत्यादि—देखो मनु का आठवाँ अध्याय।

पृष्ठ २७ दुरुस्त किया हुआ खेत—देखो मनु अ० ९, श्लोक ४४।

पृष्ठ २९ मद्यमत्त, मूढ़, निरर्थक है—देखो मनु अ० ८, श्लोक १६३।

पृष्ठ ३० जो चीज़ हठ से—देखो मनु अ० ८, श्लोक १९८।

पृष्ठ ३१ स्मृति-चंद्रिका—यह पुस्तक मैसूर-सरकार की ओर से छप चुकी है।

पृष्ठ ३५ इसी विषय पर मनु और कहता है—देखो मनु अ० ८, श्लोक १६५, १८०, १८६, १८६, १६०, १६१, १६२, १८१।

पृष्ठ ४३ पिर्हो ( Pyrrho )—एक यूनानी दार्शनिक। यह संशयवाद का प्रथम प्रवर्तक था। इसने अनक्सरचस (Anaxarchus) से पढ़ा था। यह सिकंदर के साथ भारत में आया था। यहाँ इसने नग्न रहनेवाले भारतीय मुनियों से शिक्षा पाई, और ईरानी मजूसों के सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया। यूनान में लौटकर यह वानप्रस्थ हो गया; परंतु बहुत-से लोग इसके शिष्य हो गए। संशयवाद का प्रचारक होते हुए भी यह अपने नगर का बड़ा पुरोहित चुना गया। जन्म ईसा से कोई ३६० वर्ष पूर्व और मृत्यु कोई २७० ई० पू० हुई।

पृष्ठ ४४ मनु कहता है कि जब परमात्मारूपी राजा—देखो मनु अध्याय १, श्लोक ५१।

पृष्ठ ४४ अबोलर्ड ( Abeilard )—एक प्रसिद्ध तार्किक, गणितज्ञ और पुरोहित था। इसका हीलायस ( Helaise )-नामक एक सुंदरी युवती से प्रेम हो गया। इसी प्रेम के कारण इसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। हीलायस फ़ुलबर्ट-नामक एक धनाढ्य की भतीजी थी। फ़ुलबर्ट चाहता था कि अबीलार्ड उसकी भतीजी को दर्शन पढ़ावे; परंतु ज्ञान के पेचीदा रास्ते में से उसका पथप्रदर्शन करने के स्थान में अबीलार्ड उसे प्रेम का पाठ पढ़ाता रहा। वह स्वयं प्रेम-मद से इतना मतवाला हो गया कि उसके उपदेशों में कुछ भी आकर्षण न रहा। जहाँ लोगों के झुंड-के-झुंड उसके व्याख्यान सुनने आया करते थे, वहाँ अब कोई भी न आता था। फ़ुलबर्ट को जब इस बात का पता लगा, तो उसने इसे घर से निकाल दिया। हीलायस भी इसके पीछे ही भाग गई। अबीलार्ड उसे अपनी भगिनी के घर ले गया। वहाँ उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसको वह अस्ट-रोलाबियस नाम से पुकारा करती थी। अब अबीलार्ड ने फ़ुलबर्ट

से हीलायस के विवाह का प्रस्ताव किया। यद्यपि उसने तो स्वीकार कर लिया, परंतु रमणी ने स्वयं इनकार कर दिया। बाद को वह गुप्त विवाह पर सहमत हो गई। परंतु इस बात को उसने कभी माना नहीं। इससे फ़ुलबर्ट बहुत क्रुद्ध हो गया। फलतः अबोलार्ड ने उसे एक मठ में भेज दिया। फ़ुलबर्ट ने अबीलार्ड को बदमाशों से बुरी तरह पिटवाया। इसके बाद अबालार्ड ने व्याख्यान देना आरंभ किया, और इसमें उसकी अच्छी प्रसिद्धि हो गई। इसे अपने जीवन में अनेक दुर्विपाक देखने पड़े, यहाँ तक कि अंत को इसकी मृत्यु हो गई। जन्म नंटज़ के निकट पेलेस में १०७६ में और मृत्यु सेंट मार्सीलस के शासन-काल में, ११४२ में हुई।

पृष्ठ ४८ मोंटेन (Montaigne Miche Eyquem De)—एक फ़्रांसीसी निबंध-लेखक था। बाल्यकाल में ही इसने लैटिन भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी, और १० वर्ष की आयु में यह बोर्डो के कॉलेज में भरती हो गया था। इक्कीस वर्ष की आयु में यह बोर्डो की पार्लियामेंट का परामर्शदाता नियत हुआ। परंतु पिता की मृत्यु हो जाने से इसे बहुत बड़ी जायदाद मिल गई, इसलिये इसने इस काम को छोड़कर जर्मनी, स्विटजरलैंड और इटली में पर्यटन किया। इन पर्यटनों में इसने स्थानों और विचित्र वस्तुओं को छोड़कर मानव-प्रकृति का अध्ययन किया। सन् १५८१ में वह बोर्डो का मेयर ( नगराध्यक्ष ) चुना गया। कुछ देर संग्राम का जीवन व्यतीत करने के बाद वह एकांतवासी होकर दार्शनिक अध्ययन में लग गया। सेंट बार्थीलोमियो के वध ( सन् १५७२ ) से इस पर भारी असर पड़ा। इसके त्रास से वह गहरे विषाद में डूब गया। इसी विषाद-काल में उसके निबंध लिखे गए थे। यह अपने पर्यटन का एक विवरण-पत्र भी रक्खा करता था। इसका विचार उसे प्रकाशित करने का नहीं था। परंतु दो शताब्दियों बाद उसकी पारिवारिक मंजूषा

में यह मिल गया, और प्रकाशित कर दिया गया। इसके प्रसिद्ध निबंध इन विषयों पर हैं—मित्रता, बालकों की शिक्षा और न्याय-व्यवस्था।

इसका जन्म सन् १५३३ में और मृत्यु १५९२ में हुई।

पृष्ठ ४८ काँट ( Immanuel Kant )—प्रशिया का विश्रुत दार्शनिक। शिक्षा की समाप्ति पर यह एक पादरी के घर में शिक्षक हो गया। फिर यह विश्वविद्यालय में लौट आया, और सन् १७५५ में इसने एम्० ए० की उपाधि प्राप्त की। सन् १७७० में यह तर्क और वेदांत का महोपाध्याय नियत हुआ। यह बड़ा लिक्खाड़ था। इसने पदार्थ-विज्ञान पर कई ग्रंथ लिखे। परंतु इसने सबसे अधिक कीर्ति वेदांत में प्राप्त की। इस शास्त्र पर इसने अद्भुत ग्रंथ प्रकाशित किए। इसके तत्त्वज्ञान का प्रधान सिद्धांत इस बात की आलोचना है कि इनके विषयों की परीक्षा के लिये पहले जाननेवाली शक्ति या प्रत्यक्ष ज्ञान की शक्ति का होना आवश्यक है। 'शुद्ध तर्क की आलोचना'-नामक इसका ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसके सिद्धांतों को माननेवाले बहुत-से लोग हैं।

इसका जन्म कोनिग्सबर्ग में, सन् १७२४ में और मृत्यु १८०४ में हुई।

पृष्ठ ४९ ल्यूसिप्पस ( Leucippus )- एक यूनानी दार्शनिक था। यह परमाणुवाद (Atomistic Philosophy) का प्रवर्तक था। इस वाद को पीछे से डीमोक्राईटस ने बढ़ाया।

पृष्ठ ४९ लूक्रीशियस—यह एक रोमन कवि और तत्त्वज्ञानी था। इसकी "पदार्थों के स्वरूप पर" कविता बड़ी सारगर्भित और ज्ञानवर्धक है। इसकी पुस्तकों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो चुका है। कहते हैं, इसने आत्महत्या कर ली थी।

इसका जन्म ९५ ईसा से पूर्व; और मृत्यु ५२ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ ४९ एंपीडोक्लीस—सिसली के अंतर्गत अग्रीगंटम का एक दार्शनिक कवि और ऐतिहासिक था। यह पुनर्जन्म को मानता

था। इसकी एक कविता जो पीथागोरस के सिद्धांत पर लिखी गई थी, बड़ी पसंद की गई थी। इसकी कविताओं का होमर और हीसायड की कविताओं के साथ-साथ ओलिंपिक खेलों के अवसर पर गान किया जाता था।

यह ईसा से पूर्व ५वीं शताब्दी में था।

लूथर—मार्टिन लूथर का जन्म सन् १४८३ में, जेकसनी में हुआ था। यह ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट-संप्रदाय का प्रवर्तक था। इसके सिद्धांत के अनुसार ईसा और मरियम की मूर्तियों की पूजा अनुचित है। इसका देहांत सन् १५४६ में हुआ।

पृष्ठ ५८ लेविटिज़्म—याक़ूब और लियाह के तीसरे पुत्र का नाम लेवी था। इसने शचीमाइट ( Sheehemites ) लोगों का बड़ी निर्दयता से वध किया था; क्योंकि उनके एक राजा ने उसकी बहन दिनाह का सतीत्व-भंग कर दिया था। यह अपने पिता तथा भाइयों के साथ मिस्र देश में गया। इसके वंश को लैव्य कहते हैं। ये ईश्वर के पुजारी माने जाते हैं। लेविटिज़्म का अर्थ पुजारीपन है।

पृष्ठ ५८ पाखंड-शासन-सभा ( Inquisition )—रोमन कैथोलिक ईसाइयों की एक पंचायत थी, जो ईसा की १३वीं शताब्दी में नास्तिकता तथा अविश्वास का पता लगाने, उसे दमन करने तथा दंड देने के लिये बनाई गई थी।

पृष्ठ ५९ हरमोडियस तथा अरिस्टोगीटन—ये एथेंस के रहनेवाले दो मित्र थे। हरमोडियस की भगिनी का सतीत्व हिपरक्यू ने भंग कर दिया था। इन्होंने बदला चुकाने के लिये उसका वध कर डाला। इसलिये इन्हें भी मृत्यु-दंड मिला था। यूनानी इतिहास में ये धर्मवीर माने जाते हैं, और इनके स्मारक बने हुए हैं।

पृष्ठ ६० ब्रूटस ( Brutus Marcus Gunius )—यह केटो की बहन सर्विलिया और डेसीमस जूनियस ब्रूटस का पुत्र

था। फ़ारसेलिया के युद्ध में सीज़र ने न केवल ब्रूटस को प्राण-दान दिया, वरन् उसे अपना एक अतीव घनिष्ठ मित्र भी बनाकर गॉल में सिसलपाईन का शासक नियुक्त कर दिया। परंतु केसियस तथा अन्य रोमन नागरिकों की बहकावट में आकर उसने सीज़र के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा, और उसको पांपे के बेसीलिका में कटार से मार डाला। जब एंटनो ने उससे बदला लेने का ठानी, तो वह भागकर यूनान में चला गया। एंटनी भी उसके पीछे पहुँचा। फ़िलिप्पी में युद्ध हुआ। ब्रूटस ने हारकर आत्महत्या कर ली।

इसका जन्म ८५ ई० पू० में; और मृत्यु ४२ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ ६० रेबैलक—एक फ्रेंच राजहंता था। उसने पहले तो फ़ियूईलांटों ( Feuitlants ) का धार्मिक वेश ग्रहण किया, परंतु अपने धर्मोन्मत्त विचारों के कारण निकाल दिया गया। पीछे से इसकी बुद्धि भ्रांत हो गई, और यह मानकर कि फ्रांस का चौथा हेनरी सच्चा कैथोलिक नहीं, इसने उसे गाड़ी में कटार से मार डाला। फलतः इसको भी बड़ी निर्दयता से घोड़ों से चिरवाकर मार डाला गया।

इसका जन्म सन् १५७८ में; और मृत्यु १६१० में हुई।

पृष्ठ ६१ अट्टिला—यह हूणों ( Huns ) का राजा था, और सन् ४३३ में अपने भाई ब्लीडा के साथ सिंहासन पर बैठा था। पीछे से इसने उसे मरवा डाला। इसने पूर्वी साम्राज्य पर आक्रमण किया, और कुस्तुनतुनिया के इर्द-गिर्द के प्रदेश को तहस-नहस कर डाला। सन् ४५१ में यह एक बहुसंख्यक सेना लेकर गॉल देश में प्रविष्ट हुआ और खूब लूट-खसोट की। परंतु साम्राज्यवादियों ने चालोन के पास इसका मुँह फेर दिया। इटली के एक बड़े भाग को नष्ट करने के बाद वह इस शर्त पर लौटा कि वेलंटाइन के लोग उसे बहुत-सा धन दें। घर पहुँचने के बाद शीघ्र ही इसने हिलडा नाम

की एक सुंदरी से विवाह कर लिया। परंतु एक रक्त की नाड़ी के फट जाने से उसी रात इसकी मृत्यु हो गई, और इसके साथ ही हूणों के साम्राज्य का भी अंत हो गया। यह बड़ा अत्याचारी शासक था।

पृष्ठ ६३ आईसिस ( Isis )—ओसिरिस की बहन तथा पत्नी था। मिसर-निवासियों की यह एक बड़ी देवी है। कई लोग इसे आइओ ही समझते हैं, जिसको उसके प्रेमी जूपीटर ने रूपांतरित करके गाय बना दिया था, फिर मिसर में आकर वह पुनः स्त्री बन गई थी। यहाँ आकर इसने कृषि-कला का प्रचार किया, और मरने के पीछे उसकी पूजा होने लगी।

पृष्ठ ६३ इल्यूसिस—अब इसका नाम लसफ़ोना है। प्राचीन काल में यह यूनान का एक नगर था। यह सलेमिस-खाड़ी के उत्तरी तट पर अवस्थित था। सन् १३५६ ई० पू० में यहाँ एक बड़ा भारी धार्मिक मेला हुआ था। यह फिर हर पाँचवें वर्ष होने लगा। यूनान के धार्मिक मेलों में यह सबसे प्रसिद्ध है। इसका महत्त्व बतलाने के लिये इसे प्रायः 'रहस्य' कहा जाता है। यह सीरीस और प्रोसरपाईन देवियों के नाम पर होता है। इसमें प्रत्येक बात रहस्यमय होती है। इन देवियों की कथा लंबी है।

पृष्ठ ७५ जिन लोगों पर कलंक का टीका—देखो मनु अ० ६, श्लोक २३६।

पृष्ठ ७६ हमें उनके साथ रोटी—देखो मनु अ० ६, श्लोक २३८।

पृष्ठ ७७ जब वह ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखता है—मदरास, मालाबार और ट्रावनकोर आदि में यह अत्याचार अब तक भी है। थिया आदि दलित जाति के लोगों को सार्वजनिक सड़कों पर चलने की आज्ञा नहीं। उनकी छाया पड़ जाने पर वर्णधारी हिंदू स्नान करते हैं। भारत के अन्य किसी भाग में ऐसी कुप्रथा नहीं।

पृष्ठ ८० मेंफिस—मिसर के निचले भाग में एक उजड़ा हुआ

नगर। यह कैरो से १० मील दक्षिण को है । प्राचीन काल में यह मिस्र की राजधानी थी।

पृष्ठ ८४ फ़िरऔन—मिसर के राजाओं की सामान्य उपाधि। इनमें तीन फ़िरऔन विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वह राजा, जिसको यूसुफ़ ने अपना स्वप्न सुनाया था, और जिसने उसको खूब सम्मान दिया था; वह, जिसने यहूदियों को दुःख देना आरंभ किया और जिसने सभी नर-बच्चों को मरवा डाला; और वह, जिसको मूसा ने बुलाया था कि यहूदी लोगों को चले जाने की अनुमति दे, और जो बाद को अपनी सेना सहित लाल समुद्र में डूब गया था।

पृष्ठ ८८ बतलीमूस—मिस्र के यूनानी राजे।

पृष्ठ ८७ समेटिकस( Psammetichus )—प्रथम नीरो का पुत्र, मिसर का राजा। इसने ग्यारह दूसरे सहकारियों के साथ ६७१—६५६ ई॰ पू॰ तक राज्य किया। बाद को इसके सहकारियों ने इसे समुद्र-तट की ओर भगा दिया; परंतु आइयोनियन और केरियन लोगों की सहायता से इसने अपने शत्रुओं को मेंफ़िस पर हार दी। तब से वह मिस्र का सम्राट् हो गया।

इसकी मृत्यु लगभग ६१० ई॰ पू॰ में हुई।

पृष्ठ ९२ हेलास ( Hellas )—यूनान का प्राचीन नाम।

पृष्ठ ९२ सीरोस—यूनानियों की फ़सलों और नाजों की देवी।

क्रीट—भूमध्य सागर का एक द्वीप। यह यूनानी द्वीपसमूह के दक्षिण में है।

पृष्ठ १२९ बीलज़बुब—इसका दूसरा नाम बआल भी है। इसका अर्थ है 'स्वामी'। चैल्डियन लोगों की प्रधान देव-मूर्ति की उपाधि है। यह फ़ीनिशियन और सिरियन लोगों का 'सूर्य-देवता' भी है।

पृष्ठ १२७ वॅस्टा—रोमन देवमाला में अग्नि की देवी, राज्य की रक्षिका, और वॅस्टल कुमारियों की अभिभाविका है।

पृष्ठ १३४ यहूदिया—इसका दूसरा नाम पैलस्टाइन ( फ़िलिस्तीन ) है। यह ईसाइयों की पवित्र भूमि है।

पृष्ठ १६४ पेरिया—एक तामिल शब्द है। इसका अर्थ है अछूत जाति का मनुष्य।

पृष्ठ १९८ सिनाई पर्वत—ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल में उस पर्वत का नाम है, जिस पर मूसा को भगवान् ने अपना नियम दिया था। यह अबले मूसा का एक अंश है।

पृष्ठ १७९ सारी पवित्र वस्तुओं में से—देखो मनु अ० ५ श्लोक १०६-१०९।

पृष्ठ १९० स्त्री की अशुचिता—महर्षि मनु ने कहा है—देखो मनु अ० ३, श्लोक ४६-४७।

पृष्ठ २२४ पेरिक्लीस—यह एथेन्स का रहनेवाला एक बड़ा सेनापति, राजनीतिज्ञ और वाग्मी था। इसने प्रसिद्ध दार्शनिक अनेक्सेगोरस से शिक्षा पाई थी। इसने शासनपद्धति में भी फेर-फार किया था। और अपने प्रतिद्वंद्वियों को निर्वासित करके यह आप एथेंस का अधिपति बन बैठा था। इसने कई विजय भी प्राप्त किए। यह कला, विद्या और विलास तीनों का संरक्षक था। इसका देहांत प्लेग से हो गया।

इसका जन्म ४९५ ई० पू० में; और मृत्यु ४२९ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ २२४ आगस्टस (Augustus, Cairs Octavius)—यह रोम का द्वितीय सम्राट् था। यह जूलियस सीज़र की भतीजी, एलिया, के गर्भ से उत्पन्न आक्टवियस-नामक सेनेटर का पुत्र था।

इसका जन्म रोम में ६३ ई० पू० में हुआ था और देहांत सन् १४ ई० में।

पृष्ठ २२७ सोफ़ोक्लीस—दुःखांत नाटक लिखनेवाला एथेंस का एक प्रसिद्ध नाटककार। इसका पहला करुणा-रस-प्रधान नाटक

४६८ ई० पू० मे रंगमंच पर खेला गया। यद्यपि उस समय इसका प्रतियोगी अपने समय का सबसे बड़ा नाटककार ईस-चाईलस था, तो भी पारितोषिक इसी ने पाया। ४४० ई० पू० में इसका बत्तीसवाँ नाटक निकला। इसके बाद इसने सेनापति और राजनीतिज्ञ के रूप मे नाम पाया। कहते हैं, इसने १३० नाटक लिखे। मुक़ाबले पर ईसचाईलस और यूरीपिडी जैसे धुरंधर नाटक-कार होते हुए भी इसने बीस बार प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया।

इसका जन्म एथस के निकट ४६५ ई० पू० और मृत्यु ४०६ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ २२७ यूरीपीडीज़—यूनान का एक करुणा-रस-प्रधान नाटक लिखनेवाला। इसने प्रसिद्ध दार्शनिक अनेक्सेगोरस तथा अलंकारशास्त्री प्रोडिकस से शिक्षा पाई थी। इसने दो बार विवाह किया; परंतु दोनों बार इसे सुख नहीं प्राप्त हुआ। इसके ग्रंथों मे स्त्री-जाति की कड़ी निंदा भरी पड़ी है। इसका पहला नाटक 'पेलियाडस' ४५६ ई० पू० मे खेला गया था। ४४१ ई० पू० में दुःखांत नाटक के लिये इसे प्रथम पारितोषिक मिला। ४०८ ई० पू० में यह मकदूनिया के राजा के यहाँ चला गया। यहाँ इसे अच्छा सुख मिला; परंतु एक दिन यह सायंकाल को वन में जा रहा था कि कुत्तों ने इसे फाड़ डाला। एथेंसवालों ने इसके सम्मानार्थ शोक किया, और इसका शव माँगा। परंतु मकदूनियावालों ने देने से इनकार कर दिया, और पेला में उस पर एक बड़ा भव्य समाधि-भवन बना दिया।

इसका जन्म सन् ४८० ई० पू० में; और मृत्यु ४०७ ई० पू० में हुई।

कनफ्यूशस—चीनियों का एक बहुत बड़ा दार्शनिक था। यह भी तीन ही वर्ष का था कि इसके पिता का देहांत हो गया। परंतु इसका दादा एक विद्वान् मनुष्य था। उसने इसकी शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया। यह अभी छोटा ही था कि फ़सल की मंडियों,

रेवड़ों, और गोचर-भूमियों का निरीक्षक नियत हो गया। वहाँ इसने बड़ी चतुराई से अपना कर्तव्य पालन किया। २३ वर्ष की आयु में इसकी माता का देहांत हो गया। तब इसने नौकरी छोड़ दी, और अध्ययन में लग गया। इसने सारे राज्य में सुधार की एक योजना तैयार की। उस समय चीनी साम्राज्य अनेक छोटे-छोटे रजवाड़ों में बँटा हुआ था। कनफ़्यूशस इन सबको मिलाकर एक कर देना चाहता था। इसलिये राजा और प्रजा, इसके ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी, इसके विरोधी हो गए, और उन्होंने इसे समाज से बहिष्कृत करके देश से बाहर निकाल दिया। परंतु इसने अपना प्रचार न छोड़ा। यह एक रजवाड़े से दूसरे में घूम-घूमकर मनुष्यों को ज्ञान और सुख के सिद्धांत सिखलाता था। इस प्रकार इसके बहुत-से अनुयायी बन गए। उनमें से इसने दस को चुन लिया, और उन्हीं को अपने ज्ञान के ख़ज़ाने सिपुर्द कर दिए। इन शिष्यों ने इसके सिद्धांतों का ख़ूब प्रचार किया; यहाँ तक कि प्रजा ने उन्हें प्रायः सर्वत्र ग्रहण कर लिया, और वे चीनी राजनीति और आचार के बड़े प्रमाण बन गए। जब लू के राजा ने इस महान् दार्शनिक की मृत्यु का समाचार सुना, तब वह फूट-फूटकर रोने लगा, और बोला—भगवान् ने रुष्ट होकर कनफ़्यूशस को मुझसे छीन लिया। उसी समय से वह एक महात्मा माना जाने लगा, और उसके कई स्मारक चिह्न बनाए गए। उसका निज का नाम कानी ( kany ) था, परंतु उसके अनुयायियों ने सम्मानार्थ उसके साथ "फ़ू-त्से" और लगा दिया, जिसका अर्थ 'गुरु' है। चीनी लोग इसकी पुस्तकों को ज्ञान का स्रोत समझते हैं। शुद्ध नीति की दृष्टि से वे वस्तुतः प्रशंसनीय हैं।

इसका जन्म शंघाई में, ५५१ ई०पू० में; और मृत्यु ४७९ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ २४२ वह जो स्वयं प्रकट हुआ है—देखो मनु अध्याय १, श्लोक १—७ ।

पृष्ठ २५१ टाइटन और जूपीटर—दो यूनानी देवता ।

पृष्ठ २७६ जल-प्रलय इसका वर्णन ब्राह्मणग्रंथों और पुराणों में है।

पृष्ठ २८४ अजीगर्त ऋषि—इसकी कथा ऐतरेय ब्राह्मण में है ।

पृष्ठ २६६ पुरूरव—देखो शतपथ ब्राह्मण ।

पृष्ठ ३०२ कुमारी देवांगी की उत्पत्ति—मालूम नहीं; ग्रंथकार ने यह कथा कहाँ से ली है । भगवद्गीता में तो ऐसी कोई कथा नहीं । शायद भागवत पुराण की जगह भूल से भगवद्गीता लिखा गया है । कृष्ण की माता का नाम देवकी था, न कि देवांगी । संभव है, किसी तामिल ग्रंथ में ऐसी कथा हो ।

पृष्ठ ३१२ जेज़ूइस्ट—ईसाई-धर्म में 'आर्डर ऑफ़ जीसस' नाम का एक संप्रदाय है । इसे सन् १५३३ ई० में इग्नेशियस लोयोला नाम के एक उत्साही युवक ने स्थापित किया था । इस संप्रदाय के सदस्य जेज़ूइस्ट कहलाते हैं । ये लोग धर्म-प्रचार में धोके और झूठ को भी बुरा नहीं समझते । भारत में इन लोगों ने ब्राह्मणों का रूप बनाकर कई लोगों को धोके से ईसाई बनाया था ।

पृष्ठ ३२० दुर्गा धीवर—उत्तर भारत में दुर्गा धीवर की कोई ऐसी कथा नहीं मिलती ।

पृष्ठ ३३४ निचली और सरस्वती—मालूम नहीं, यह कथा कहाँ से ली गई है । भगवद्गीता में तो ऐसी कथाएँ नहीं हैं ।

पृष्ठ ३३६ मार्स, जूपीटर, जूनो, वीनस, मिनर्वा—यूनानी देवता और देवियाँ ।

पृष्ठ ३६२ कार्त्तिकेय ( Cartignay ) और कायमोगासुर ( Kayamougasaura )—ग्रंथकर्ता ने संस्कृत नामों को बहुत बुरे ढंग से लिखा है । उनके शुद्ध उच्चारण का पता नहीं

लगता । संभव है, दक्षिण में इनका इसी ढंग से उच्चारण किया जाता हो ।

मैंने अटकल से कार्त्तिकेय और तारकासुर कर दिया है ।

पृष्ठ ३६३ तिरंगी ( Tircangy )—इस नदी का भी पता नहीं लग सका । संभव है, दक्षिण में कोई बहुत छोटी नदी इस नाम की हो । कहीं यह कृष्णा तो नहीं ? मैं समझता हूँ, चेलांबम भी चिदंबरम् का अपभ्रंश है ।

पृष्ठ २०६ हैदरअली—मैसूर का अत्याचारी मुसलमान नवाब ।

पृष्ठ ३६१ उमर —अरब का प्रसिद्ध ख़लीफा, जिसने सिकंदरिया का प्रसिद्ध पुस्तकालय जलाया था ।

पृष्ठ ३६५ सिसरो —रोम का एक प्रसिद्ध दार्शनिक और सबसे बड़ा वाग्मी । इसने यूनानी साहित्य, दर्शन-शास्त्र, और युद्ध-विद्या की भिन्न-भिन्न अध्यापकों से शिक्षा पाई थी । १६ वर्ष की आयु ही में उसे नागरिकता के पूर्ण अधिकार मिल गए थे । बाल्यावस्था ही में इसने एक यूनानी कविता का लातानी भाषा में अनुवाद किया था । २६ वर्ष की आयु में यह वकील बन गया और इसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की । तब इसने यूनान और एशिया का पर्यटन किया, और कुछ काल तक एथेंस में रहकर अपने मित्र एटिकस के साथ यूनानी वाग्मिता के उत्कृष्ट नमूनों का अध्ययन किया । रोम में लौटने पर उसने सब वकीलों को मात कर दिया । फिर वह कौंसिल में चुना गया । कुछ काल के उपरांत इसने राजनीति के दंगल का परित्याग करके साहित्य के प्रशांत क्षेत्र में पदार्पण किया । परंतु अनेक घटनाएँ ऐसी हो गईं, जिनसे इसे फिर राजनीतिक क्षेत्र में कूदना पड़ा । यद्यपि यह अक्टेवियस का मित्र था, परंतु वह इसके शत्रु एंटनी के निमित्त इसका बलिदान करने पर उतारू हो गया । सिसरो को इस बात का पता लगा, तो वह प्राण-रक्षा के लिये एक बंद नालकी

में छिपकर भागा। परंतु मार्ग में पकड़ा जाकर मार डाला गया। उसका सिर और हाथ काटकर एंटनी के पास पहुँचाए गए। उसने नीचता से उनको नगर-सभा के उसी मंच पर रख दिया, जहाँ से सिसरो ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति के प्रताप से सैकड़ों लोगों के प्राणों, स्वतन्त्रता और संपत्ति की रक्षा की थी। इस महापुरुष की योग्यता की सारा संसार प्रशंसा करता था। इसमें अनेक सार्वजनिक और वैयक्तिक सद्गुण थे, परंतु वृथाभिमान और साहस तथा दृढ़ संकल्प के अभाव के कारण इससे कई नीच कर्म भी हो गए। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पहली स्त्री के मरने पर इसने दूसरा विवाह एक ऐसी युवती से किया जिसका यह अभिभावक था।

जन्म, अर्पिनम में, १०५ ईसा पूर्व; मृत्यु ४२ ई० पू०।

पृष्ठ ३९५—पिर्हो, सिमन, सेक्सटस एंपीरिकस, एनीसिडोमस—ये सब यूनान के बड़े आदमी थे।

सिमन ( Simon ) जादूगर—यह समारिया का अधिवासी था। फिलिप के लोकोत्तर चमत्कार देखकर इसने ईसाई धर्म की दीक्षा ली थी। परंतु इसने प्रेरितों को घूस देकर उनसे पवित्रात्मा, भाषाओं का दान, और चमत्कार दिखलाने की शक्ति प्राप्त करनी चाही। इस पर सेंट पीटर ने इसका बहिष्कार कर दिया। यह ईसा की पहली शताब्दी में था।

पृष्ठ ४०६ नीरो— छठा रोमन सम्राट्। यह सन् ५४ में सिंहासन पर बैठा। आरंभ में यह बड़ा न्यायकारी और दयालु था। यह उदार, सुशील, सभ्य, विनयशील भी था। इसके हृदय में उत्तमोत्तम गुणों का वास था। परंतु ये सब धोखे की टट्टी थे। इनके नीचे एक अतीव दुष्ट आत्मा भी छिपी हुई थी। इसने बड़े ही अमानुषिक अत्याचार किए। अपनी स्त्री का वध किया। कई नागरिकों को मरवा डाला। निरपराध लोगों के लहू से रोम की गलियाँ रँग

दीं। नीरो जितना निर्दय था उतना ही व्यभिचारी भी था। वह नाटकों में नट भी बनता था। दंगलों में कुश्ती लड़ता था। यद्यपि वह हार जाता था, तो भी लोग डर के मारे उसी की वाह-वाह करते थे। इसने ईसाइयों को भयंकर कष्ट दिए। इसने रोम के अनेक भागों में आग लगवा दी और आप एक ऊँचे मीनार पर चढ़कर तमाशा देखता और संगीत सुनता रहा। फिर इसने आग लगाने का दोष ईसाइयों पर लगाकर उनकी एक बड़ी संख्या को कुत्तों से फड़वा डाला, और रात को अपने राज-भवन के उद्यान में जला दिया। इसने नगर को दुबारा बनवाया और पेलेटाइन हिल पर एक "स्वर्ण-मंदिर" निर्माण किया। एंटोनिया नाम की एक स्त्री ने इसके साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। इस पर उसे मरवा डाला गया। फिर उसने स्टेटिलिया मेसेलीना नाम की एक दूसरी स्त्री के पति को मारकर उसके साथ विवाह कर लिया। ज्ञाना-सेनेका, जो इसका शिक्षक रह चुका था, और कवि लूकन उसकी आज्ञा से मार डाले गए। इसके दौरात्म्य से अंत को दुनिया तंग आ गई। पीसो ने इस दुरात्मा के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा, परंतु भेद खुल जाने से उसमें सफलता न हुई। किंतु गलवा का षड्यंत्र सफलीभूत हुआ। नीरो के खुशामदियों ने उसका साथ छोड़ दिया, और उसका अपनी प्रार्थना पर ही एक दरबारी ने उसे मार डाला।

जन्म, लेटियम के अंतर्गत एंटियम में, सन् ३७ ई०; मृत्यु ६८ ई०

पृष्ठ ४१० स्यूटोनियस—एक रोमन ऐतिहासिक था। यह छोटे प्लिनी का मित्र था। पीछे से यह सम्राट् एड्रियन का सेक्रेटरी बन गया था। पहले बारह सम्राटों के जीवन-चरित, प्रसिद्ध वैयाकरणों और अलंकार-शास्त्रियों पर दो प्रबंध, और कवियों की कई जीवनियाँ इसकी लिखी मिलती हैं। यह ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी में था।

पृष्ठ ४१० टेसिटस—एक रोमन ऐतिहासिक था। इसके बहुत-से ग्रंथ अब नहीं मिलते। उसके लिखे "जर्मनों के रीति-रवाज", और इसके ससुर अग्रिकोला का जीवन-चरित अब भी प्राप्य हैं, और बहुत अच्छी पुस्तकें हैं। परंतु 'टाइबरियस के शासन-काल का इतिहास' इसका सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ समझा जाता है। यह लातीनी भाषा बहुत अच्छी लिखता था।

जन्म लगभग सन् ५५ ई०; मृत्यु लगभग सन् १३० ई०

पृष्ठ ४१४ हीरोड—यह पहले गेलीली का शासक और फिर यहूदियों का राजा बनाया गया था। यह बड़ा क्रूर शासक था। इसने अपनी स्त्री, उसके दादा और भाई को मरवा दिया था। ईसा के जन्म पर इसी ने सभी पहलौठे बच्चों को मरवाया था ताकि ईसा भी उन्हीं में मारा जावे। इसने अपने पुत्रों को भी मार डाला था। इसने यरुसलेम का मंदिर दुबारा बनवाया। इसने दस स्त्रियों से विवाह किए थे।

जन्म, सन् ७० ई० पू०; मृत्यु उसी वर्ष जब ईसा का जन्म हुआ।

पृष्ठ ४१४ कोशियस—एक रोमन सेनापति। सीज़र के मारनेवालों में से एक यह भी था।

उर्मुज़्द—पारसी लोगों के परमेश्वर का नाम।

पृष्ठ४२७ संन्यासी को चाहिए—देखो मनु अ० ६, श्लोक १—२।

पृष्ठ ४३७ दैवज्ञ बनकर—देखो मनु अ० ६, श्लोक ५०।

पृष्ठ ४३८न मृत्यु की कामना करे—देखो मनु अ० ६, श्लोक ४५।

# हमारी कुछ उपयोगी पुस्तकें

## हिंदू-जीवन का रहस्य

लेखक, देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी एम्० ए० । हिंदू-संगठन की इस उदीयमान गति में भाईजी की सेवाएँ, त्याग और योजनाएँ अपना ख़ास स्थान रखती हैं । इस पुस्तक में आपके ऐसे ही अनुभव का निचोड़ है । पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी गई है । धार्मिक जड़ता के कारण हिंदू-शक्ति किस प्रकार छिन्न-भिन्न हुई, इसका इसमें अच्छा निरूपण है । साथ ही हिंदू जीवन का महत्त्व क्या है और क्या होना चाहिए, इसकी तर्क-पूर्ण विवेचना है । प्रत्येक हिंदू को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए । इसमें हिंदू-वैभव, एक देशीयता, जातीयता तथा सामाजिक संगठन आदि की पहेलियाँ स्वरैक्य के साथ हल की गई हैं । दार्शनिक तर्कों के साथ हिंदू-जीवन का रहस्य इतने अच्छे ढंग से अंकित किया गया है कि पाठक फड़क उठेंगे, और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे बिना न रहेंगे । अवश्य मँगाइए । मूल्य सादी ।||=), सजिल्द १|=)

## मदर-इंडिया का जवाब

[ लेखिका—श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए० ]

मिस मेयो ने अपना मदर-इंडिया में किस प्रकार भारत की दुरवस्था का भीषण किंतु अति रंजित चित्र खींचकर योरप और अमेरिका-वालों की नज़रों में भारतीयों को गिराने की कुचेष्टा की है, यह सभी जानते हैं । लेखिका ने इस पुस्तक के चार भाग करके मदर-इंडिया के क्रमशः एक-एक भाग का अध्याय-क्रम से संक्षेप दिया है । साथ ही पुस्तक के अंत में चार परिशिष्ट—अमेरिका में पाप की परा काष्ठा, सभ्य संसार में अछूत, सभ्यता या दुराचार, श्वेतांगों का भार—दिए गए हैं । साथ ही मिस मेयो के कितने ही असत्य और अर्ध-सत्य, अनर्गल और नीचता-पूर्ण आक्षेपों के ख़ूब धुर्रे उड़ाए हैं, और

इसके भद्दे उद्देश्य का अच्छा भंडाफोड़ किया है। उनकी दलीलों तथा वैदेशिक कुकृत्यों के नमूने पढ़कर आँखों के सामने योरप और अमेरिका के अधःपतन और योरपीय सभ्यता का नंगा रूप उपस्थित हो जाता है। एक भारतीय देवी अमेरिकन मिस मेयो को किस निर्भयता से लताड़ सकती है, यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह समझ में आ जायगी। पहला संस्करण हाथोंहाथ समाप्त हो जाने पर और माँगें अधिक होने के कारण नया परिवर्द्धित और संशोधित यह द्वितीय संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित किया जा रहा है। मूल्य लगभग १) होगा।

## एशिया में प्रभात

अनुवादक, ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०। यह पुस्तक योगिराज तपस्वी अरविंद घोष के सुहृद् और फ्रांस के अद्भुत त्यागी श्रीमान् पॉल रिचर्ड महोदय की "Dawn over Asia"-नामक पुस्तक का अतीव भावमय, सुंदर अनुवाद है। इसमें एशिया की प्राचीन सभ्यता की महिमा बड़े ओजस्वी शब्दों में व्यक्त की गई है, और अत्यंत उदारता-पूर्वक पाश्चात्य जगत् को एशिया का पवित्र संदेश सुनाया गया है। इसमें पाश्चात्य की वर्तमान उन्नति को घोर अवनति और सर्वनाश का द्वार बतलाया गया है। इसे पढ़कर प्रत्येक विचारशील का हृदय उन्नत, उदार और प्रसन्न हो सकता है। पुस्तक अतीव सुंदरता से छपी है। मूल्य ॥), सजिल्द १)

## कर्म-योग

अनुवादक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत संतरामजी बी० ए०। श्रीमती ओहष्णुहारा की Practical yoga नाम की पुस्तक का सुंदर और सरल भाषा में किया हुआ अनुवाद। इस विद्या के अनेक मर्मज्ञ अभ्यासियों द्वारा खूब प्रशंसित। योग-मार्ग के यात्रियों के लिये एक उत्तम पथप्रदर्शक। सुंदर ऐंटिक काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य ॥), स० १)

## गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ